बहुरि न ऐसो दांव

प्रवचन-क्रम

1. जीवित गुरु--जीवंत धर्म.....................................................................2
2. विज्ञान और धर्म का समन्वय..............................................................22
3. सारे धर्म मेरे हैं..........................................................................42
4. स्वस्थ हो जाना उपनिषद है...............................................................63
5. डूबने का आमंत्रण.............................................................................82
6. मैं तो एक चुनौती हूं.....................................................................103
7. संन्यास यानी ध्यान.......................................................................125
8. जिन खोजा तिन पाइयां......................................................................144
9. आओ, बैठो--शून्य की नाव में............................................................164 10...........................................................................नये सूर्य को नमस्कार ....................................................................................................... 184

बहुरि न ऐसो दांव
पहला प्रवचन

जीवित गुरु--जीवंत धर्म

पहला प्रश्नः ओशो, जीवित सदगुरु के पास होना इतना खतरनाक क्यों है? सब कुछ दांव पर लगा कर आपके बुद्ध-ऊर्जा क्षेत्र में डूबने के लिए इतने कम लोग क्यों आ पाते हैं? जब कि पलटू की तरह आपका आह्वान पूरे विश्व में गूंज उठा है--
बहुरि न ऐसा दांव, नहीं फिर मानुष होना।
क्या ताकै तू ठा.ढ़, हाथ से जाता सोना।।
ओशो, अनुकंपा करें, बोध दें।

॰योग चिन्मय! जीवन ही खतरनाक है। मृत्यु सुविधापूर्ण है। मृत्यु से ज्यादा और आरामदायक कुछ भी नहीं। इसलिए लोग मृत्यु को वरण करते हैं, जीवन का निषेध। लोग ऐसे जीते हैं, जिसमें कम से कम जीना पड़े, न्यूनतम--क्योंकि जितने कम जीएंगे उतना कम खतरा है; जितने ज्यादा जीएंगे उतना ज्यादा खतरा है। जितनी त्वरा होगी जीवन में उतनी ही आग होगी, उतनी ही तलवार में धार होगी। जीवन को गहनता से जीना, समग्रता से जीना--पहाड़ों की ऊंचाइयों पर चलना है। ऊंचाइयों से कोई गिर सकता है। जो गिरने से डरते हैं, वे समतल भूमि पर सरकते हैं; चलते भी नहीं, घिसटते हैं। उड़ने की तो बात दूर।
और सदगुरु के पास होना तो सूर्य की ओर उड़ान है। शिष्य तो ऐसे है जैसे सूर्यमुखी का फूल; जिस तरफ सूरज घूमता, उस तरफ शिष्य घूम जाता। सूर्य पर उसकी श्रद्धा अखंड है। सूर्य ही उसका जीवन है। सूर्य नहीं तो वह नहीं। जैसे ही सूरज डूबा, सूर्यमुखी का फूल बंद हो जाता है। जैसे ही सूरज ऊगा, सूर्यमुखी खिला, आह्लादित हुआ, नाचा हवाओं में, मस्त हुआ, पी धूप। उसके जीवन में तत्क्षण नृत्य आ जाता है।
फ्रेड्रिक नीत्शे का प्रसिद्ध वचन हैः "लिव डेंजरसली। खतरनाक ढंग से जीओ।" सच तो यह है, इसमें दो ही शब्द हैं--"खतरनाक ढंग" और "जीना।" एक ही शब्द काफी है। दोशब्दों में पुनरुक्ति है। जीना ही खतरनाक ढंग से जीना है। और तो कोई जीने का उपाय नहीं, और तो कोई विधि नहीं।
इसलिए सदियों-सदियों से धर्म ने जीवन-निषेध का रूप लिया। यह कायरों
का ढंग है। यह कायरों की जीवन-शैली है--भागो, जीओ मत; छिप रहो किसी दूर गुफा में, कहीं हिमालय में, जहां जीवन न के बराबर होगा। क्या होगा जीवन हिमालय की गुफा में? क्या जीवन हो सकता है जहां संबंध नहीं? जितने संबंध हैं उतना जीवन है--उतनी जीवन की गहनता है, सघनता है, विस्तार है। जी भर कर जीने का अर्थ होता हैः अनंत-अनंत संबंधों में जीओ।
इसलिए मैं अपने संन्यासी को कहता हूंः भागना मत, जागना! जाग कर जीओ--यह धर्म है। भाग कर जीए--यह तो धर्म भी नहीं, जीवन भी नहीं। इससे तो बेहोश होकर भी जो जी रहा है वह भी कम से कम जी तो रहा है! कम से कम उसके प्राणों में धड़कन तो है! लेकिन सदियों-सदियों से आदमी ने आत्मघाती धर्मों को चुना है। कसूर धर्मों का नहीं है। धर्म तो आत्मघाती हो ही नहीं सकता। लेकिन आदमी डरपोक है, भयभीत है, भीरु है। इसलिए उसने सारे धर्मों को अपनी भीरुता के वस्त्र पहना दिए।
महावीर भीरु नहीं हैं, लेकिन उनके पीछे चलने वालों की जमात, उनसे ज्यादा भीरु जमात तुम और कहां पाओगे? बुद्ध भीरु नहीं हैं। जीवन उनका संघर्ष है, क्रांति है। जीवन उनका आग्नेय है। एक-एक शब्द अंगार है। ज्वालामुखी हैं वे। लेकिन बौद्धों को देखोः पीले पत्ते हैं, मर चुके कभी के, झरने के करीब हैं, गिरने के करीब हैं। ठूंठ की तरह रह गए हैं। न वसंत आता, न फूल खिलते। और जितना ही वसंत का आगमन असंभव हो जाता है, उनकी पुरानी धारणा पुष्ट होती है कि जीवन में कुछ सार नहीं। अच्छा ही हुआ जो छोड़ दिया।
यह तर्काभास है। तुमने छोड़ा, इसलिए जीवन में कोई सार नहीं मिल रहा है।
जीते तो सार पाते; सार, सत्य, भगवत्ता--सब पाते।

जीवन का खजाना अकूत है, उसकी गहराई अथाह है। अगर कहीं कोई ईश्वर है तो
वह जीवन में व्याप्त है, रोएं-रोएं में, कण-कण में वही प्रतिध्वनित है। बाहर वह, भीतर वह। दसों दिशाओं में वह।
लेकिन कमजोर आदमी अपनी कमजोरी को छिपाने के लिए तर्क खोजता है। बीमार आदमी यह मानने को राजी नहीं होता कि मैं बीमार हूं; इससे अहंकार को धक्का लगता है। बीमार आदमी भी अपने को ही नहीं, औरों को भी समझाता है कि यह साधना है; यह जो मैं बीमार हूं, यह जीवन की व्यर्थता को देख कर बीमार हूं।
ईसप की प्रसिद्ध कथा, जो मैं बार-बार कहता हूं, क्योंकि वह आदमी के संबंध में इतनी सच है। एक लोमड़ी ने अंगूर के गुच्छे लटकते हुए देखे। छलांग मारी, बहुत छलांग मारी, बहुत तड़पी पहुंचने को अंगूरों तक, नहीं पहुंच सकी। छलांग छोटी पड़ती गई। सब ताकत लगा दी, मगर अंगूर के गुच्छे ऊंचे थे, छलांग ओछी थी। पसीना-पसीना, थकी-मांदी, हारी-पराजित। चारों तरफ उसने देखा कि किसी ने देखा तो नहीं। जैसे कोई आदमी गिर पड़ता है तो जल्दी से धूल झाड़ता है और चारों तरफ देखता है, किसी ने देखा तो नहीं! कंघी निकाल कर जल्दी से बाल संवार लेता है, चश्मा ठीक लगा लेता है, टोपी वगैरह ठीक करके चल पड़ता है-- किसी ने देखा तो नहीं! इसकी भी फिकर नहीं होती कि कहीं चोट लगी या नहीं; वह तो घर जाकर देख लेंगे। किसी ने देखा तो नहीं! घबड़ाहट कि कहीं मैं गिर गया, यह कोई देख न ले! मैं और पराजित हो गया!
लोमड़ी ने चारों तरफ देखा, कोई भी न था। धूल झाड़-झवांस कर चल पड़ी। लेकिन
एक खरगोश छिपा देखता था झाड़ी से। उसने कहाः चाची, क्या हुआ? लोमड़ी बहुत चकित हुई। उसने कहाः हुआ क्या! कुछ भी नहीं हुआ। अंगूर खट्टे हैं। अभी पके नहीं। जब छलांग लगा कर पास पहुंची तो देखा कच्चे हैं, अभी तोड़ने योग्य नहीं। थोड़े पक जाएं, फिर तोड़ेंगे।
ईसप की ये छोटी-छोटी कथाएं आदमी के संबंध में हैं। लोमड़ी यानी आदमी के भीतर छिपी हुई चालाकी, बेईमानी, पाखंड। जो भाग जाते हैं जीवन से, वे भी अपने भागने को फलसफा बनाते हैं, उसे भी दर्शन देते हैं, उसे भी सुंदर शास्त्रीय शब्दों में ढांकते हैं। वे यह नहीं कहते कि हम भगोड़े हैं, वे कहते हैं, हम संन्यासी हैं! हमने जीवन का त्याग किया है!
रामकृष्ण के पास एक आदमी आता था, जो हर उत्सव पर, धार्मिक समारोह पर, अवसर ही नहीं चूकता था, पूर्णिमा आ गई, कभी एकादशी आ गई, कभी कुछ उत्सव... हिंदुओं के उत्सवों की तो कोई कमी ही नहीं है... कोई भी बहाना मिल जाए, बकरे कटते थे उसके घर। धर्म का दिन आ गया तो बलि देनी होगी। काली का भक्त था। फिर एक दिन रामकृष्ण को पता चला कि अब उसने धार्मिक उत्सव वगैरह मनाना बंद कर दिए, अब बकरे नहीं कटते। क्या हुआ? क्या भक्ति छोड़ दी? बुलाया उसे और क्या हुआ, उससे पूछा। बुढ़ापे में, अब मरते वक्त भक्ति छोड़ दी? अब बकरे वगैरह नहीं कटते?
उसने कहाः अब आपसे क्या छिपाना! औरों को धोखा दे दूं, आपको कैसे धोखा दूं? इससे सदगुरु के पास होने में डर लगता है। औरों को धोखा दे दोगे, सदगुरु को कैसे दोगे! दोगे भी तो दे न पाओगे। उसकी पारदर्शी आंखें पकड़ ही लेंगी। तो उस आदमी ने कहाः अब सच बात आपसे कह दूं। औरों को तो मैंने कहा कि अरे इन सब बाह्य क्रियाकांडों में क्या रखा है! जवानी का अंधापन था, चलता रहा; अब प्रौढ़ हो गया, अब देख लिया सब करके, इसमें कुछ सार नहीं है। असली बात भीतर है। लेकिन अब आपसे कह दूं सच्ची बात कि मेरे दांत गिर गए; अब दांत ही न रहे तो बकरे क्या काटना!
मतलब यह हुआ कि दांत थे, इसलिए बकरे काटते थे। धर्म तो बहाना था। धर्म
तो सुंदर बहाना था। बकरे खाने थे।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी ने एक दिन सुबह-सुबह उससे कहा कि मियां, कुछ याद है, अपनी शादी को हुए पच्चीस वर्ष हो गए। कल पच्चीसवीं वर्षगांठ पड़ रही है विवाह की, जोर-शोर से मनाना है। जिस बकरे को हमने इतने दिन पाल-पोस कर तैयार किया है, हो इरादा तो कल कट जाए।
नसरुद्दीन ने कहाः फजलू की अम्मा, शादी हमने की, बेचारे बकरे का क्या कसूर? उसको क्यों सजा देती हो? अरे काटना है तो मुझे काट। और यूं भी पच्चीस साल में बचा क्या है, सब तो काट डाला। और बकरे का क्या कसूर? और उसको काटना

होगा तो बकरी जाने, तू क्यों पीछे पड़ी है? बकरे ने अपना क्या बिगाड़ा? भूल थी तो अपनी थी। भोगें तो अपन भोगें।
लेकिन लोग हमेशा बहानों से जीते हैं।
मनुष्य-जाति की छाती पर जीवन-निषेधात्मक धर्म हावी रहे हैं, क्योंकि मनुष्य भीरु है, इतना भीरु कि बाबा तुलसीदास कहते हैंः भय बिन होय न प्रीति। इससे ज्यादा व्यर्थ की बात शायद ही किसी आदमी ने कभी कही हो। इससे ज्यादा दो कौड़ी की बात कहनी कठिन है! इतनी अवैज्ञानिक, इतनी निरर्थक, इतनी असंगत--खोजना भी चाहो कोई बात तो न खोज पाओगे। लेकिन लाखों लोग तुलसीदास के इस वचन को दोहराते हैं और मानते हैं। सोचते हैंः क्या गजब के मनोविज्ञान को खोजा है--भय बिन होय न प्रीति! और भय से कभी प्रीति हुई है, सोचा, विचारा? कभी दो घड़ी विमर्श किया, चिंतन किया, मनन किया, ध्यान किया? भय और प्रीति, इनके बीच क्या संबंध है? जहर और अमृत के बीच क्या संबंध है? यह तो यूं हुआ कि जैसे कोई कहे कि जहर के बिना अमृत नहीं होता; सींचो जहर, तब अमृत होगा! यह तो यूं हुआ कि जैसे कोई कहे कि बोओ नीम के बीज, निबोलियां और तब आम लगेंगे।
भय और प्रेम बड़ी विपरीत अवस्थाएं है। भय में आदमी सिकुड़ता है, संकुचित होता है, छोटा होता है। प्रेम में फैलता है, विस्तीर्ण होता है। याद रखना ब्रह्म शब्द का अर्थ। ब्रह्म का अर्थ होता हैः जो फैलता ही चला जाए, फैलता ही चला जाए; जिसके फैलने का कोई अंत न आए, जिसके फैलाव की कोई सीमा न हो। कितना ही पीओ, चुका न सको। कितना ही जानो, फिर भी जानने कोशेष रह जाए। कभी ऐसा न कह सको कि सब जान लिया। स्वयं उसे खोजने में खो जाओगे, मगर उसे खोज न पाओगे। नहीं कि स्वाद न मिलेगा, भर जाओगे उससे लबालब, लेकिन वह बहुत है। हम गागर, वह सागर। हमसे ऊपर से बहेगा।
ऐसा ही प्रेम है। प्रेम तुमसे बड़ा है। प्रेम परमात्मा का ही मानवीय रूपांतरण है। इसलिए जीसस ने ठीक कहा कि परमात्मा प्रेम है। जीसस के वचन में सार है। बाबा तुलसीदास के वचन में सिवाय असार के और कुछ भी नहीं। परमात्मा प्रेम है। और प्रेम कहीं भय हो सकता है? तुम खुद ही सोचो, अपने जीवन में सोचो। जिससे तुम भयभीत हो, उसे तुम प्रेम कर सकते हो?
मैं छोटा था तो मेरे पिता ने मुझे सिर्फ एक बार सजा दी। बहुत मुश्किल
है ऐसा पिता पाना, जो सिर्फ एक बार सजा दिया हो। और एक चपत मुझे मारी, सिर्फ एक बार। मैंने उनसे कहा कि मारना आपको जितना हो आप मार सकते हैं, लेकिन फिर एक बात ख्याल रखना, कि मेरे आपके बीच प्रेम का रिश्ता न रह जाएगा। आप मुझे नहीं मार रहे, प्रेम को मार रहे हैं। मैं कैसे प्रेम कर सकूंगा उस व्यक्ति को जो मुझे दुख दे रहा है, पीड़ा दे रहा है, परेशान कर रहा है? निश्चित ही मैं निर्भर हूं अभी आप पर, अपने पैरों पर अभी खड़ा भी नहीं हो सकता, तो आपकी जो मर्जी। मारेंगे तो भी ठीक है, सहना होगा। लेकिन मुझे नहीं मार रहे हैं, ख्याल रखना, मेरे और आपके बीच जो प्रेम है उसे मार रहे हैं।
वे संवेदनशील व्यक्ति थे, बहुत संवेदनशील व्यक्ति थे। बस पहली और आखिरी सजा वही रही। उन्होंने फिर मुझे कभी दोशब्द भी नहीं कहे, मारना तो बहुत दूर। मैंने कुछ भी किया हो--ठीक किया हो, गलत किया हो--उन्होंने जैसे एक बात तो बहुत ही गहरे मन में ले ली कि प्रेम को नष्ट नहीं करना है। मुझे पैसों की जरूरत पड़े, तो कहीं मुझे चुराना न पड़े... किस बच्चे को नहीं चुराना पड़ता? इस ख्याल से कि मुझे कभी चोरी न करनी पड़े, वे एक डिब्बे में पैसे रख देते थे कि मुझे जब चाहिए हों मैं निकाल लूं, जितने चाहिए हों निकाल लूं, ताकि पूछना भी न पड़े। क्योंकि पूछो तो भी अड़चन होती है--किसलिए चाहिए, क्यों चाहिए, अभी कल ही तो लिए थे। मुझे पूछना न पड़े, उन्हें पूछना न पड़े-- इसलिए पैसे रख देते थे, जब डिब्बा खाली हो जाए तो भर देते। फिर उनके और मेरे बीच प्रेम की एक गहराई बढ़ती चली गई।
जिससे भी भय है उससे प्रेम नहीं हो सकता, उससे घृणा होती है। इसलिए हर बच्चा बड़ा होकर अपने मां-बाप से बदला लेता है। जिम्मेवारी मां-बाप की है, बच्चे की नहीं। बदला लेगा ही। तुम जब ताकतवर थे और बच्चा कमजोर था तो तुमने उसे सताया, अच्छे-अच्छे नामों से सताया। एक से एक तरकीबें ईजाद कीं सताने की। अपनी धारणाओं के आधार पर उसे सताया। और तुम्हारी धारणाएं सच

हैं, इसका तुम्हें आश्वासन है? फिर जब बच्चा बड़ा हो जाएगा, उसके हाथ में ताकत आएगी एक दिन। चाक घूम जाएगा। तुम बूढ़े हो जाओगे, कमजोर हो जाओगे।
तुमसे चलते न बनेगा, उठते न बनेगा। तब तुम्हें वह भी कचरे में फेंक देगा। तब मत रोओ। यह तुम अपने किए का फल भोग रहे हो।
लोग भी खूब अजीब हैं, पिछले जन्मों की तो बातें करते हैं कि पिछले जन्मों के कर्मों के फल मिल रहे हैं और इसी जन्म में जो उपद्रव करते रहते हैं उनका गणित बिठाते नहीं! पिछला जन्म था कि नहीं, यह भी तुम्हें पता नहीं है। मगर यह जन्म तो साफ है। इसी जन्म में हिसाब जरा देखो।
ईसाइयत ने दो हजार साल तक मनुष्य को समझाया कि ईश्वर से डरो, क्योंकि ईसाइयत ईसा के आधार से नहीं बनी। यह तो बड़े अचंभे की बात है। बुद्ध धर्म बुद्ध के आधार से नहीं बना, और न जैन धर्म महावीर के आधार से बना, और न हिंदू धर्म कृष्ण के आधार से बना। इस जगत में बहुत अचंभे हैं, लेकिन सबसे बड़ा अचंभा यह है।
कबीरदास बहुत बार कहते हैंः एक अचंभा मैंने देखा, नदिया लागी आगि! कि नदी में आग लग गई। कि मछली चढ़ गई रूख! कि मछली वृक्ष पर चढ़ गई। मगर ये कुछ भी नहीं अचंभे। कबीरदास मुझे मिल जाएं तो उनसे कहूं कि कबीरदास जी, ये कोई अचंभे नहीं। नदी में आग लग सकती है, इसमें क्या अड़चन? जरा पेट्रोल फेंक दो और लगा दो आग। अमरीका की झीलों में आग लगती है। अब बेचारे कबीरदास आ जाएं तो उन्हें अपना वचन बदलना पड़े, क्योंकि अमरीका की झीलों में इतना तेल होगया है! मोटरें चल रही हैं। मोटर-बोट चल रही हैं, जहाज चल रहे हैं। इतना तेल फैल गया है सतह पर कि आग लग जाती है। अभी कुछ दिन पहले अमरीका की प्रसिद्ध झील में आग लग गई। कबीरदास सुनते तो भौचक्के रह जाते कि मैंने तो कहाः एक अचंभा मैंने देखा, नदिया लागी आगि! अब वह अचंभा नहीं रहा।
लेकिन असली अचंभा यह है कि महावीर को मानने वाले महावीर के दुश्मन, बुद्ध को मानने वाले बुद्ध के दुश्मन, जीसस को मानने वाले जीसस के दुश्मन, कृष्ण को मानने वाले कृष्ण के दुश्मन। यह सबसे बड़ा अचंभा है। मानने वाले हैं, लगता है प्रेम करने वाले लोग होंगे। मगर कहीं कोई प्रेम नहीं, भय है। इसलिए घृणा।
ईसाइयों ने दो हजार साल तक पश्चिम को समझाया कि ईश्वर से डरो। जीसस ने कहा थाः "ईश्वर प्रेम है।" जो प्रेम है, उससे कहीं डरा जाता है? प्रेमी कहीं एक-दूसरे से डरते हैं? पति-पत्नी डरते हैं, क्योंकि प्रेमी नहीं हैं। पति डरता है कि कहीं पत्नी को पता न चल जाए। घर क्या आता है, रास्ते भर हिसाब लगाता आता है--क्या-क्या जवाब देना, यह बाई क्या-क्या पूछेगी आज-- कहां रहे, कहां गए! और इससे बचना मुश्किल है, क्योंकि वह निकाल ही लेगी कोई तरकीब। वह फांस ही लेगी किसी जाल में। सब बचाव का इंतजाम करके पति घर में प्रवेश करता है और फौरन फंस जाता है। देर नहीं लगती।
पत्नियां पतियों से डरी हुई हैं। बच्चे मां-बाप से डरे हुए हैं, मां- बाप बच्चों से डरे हुए हैं। शिक्षक बच्चों को डरा रहे हैं, बच्चे शिक्षकों को डरा रहे हैं। हर कोई हर कोई को डरा रहा है। क्या समाज हमने बनाया है--भय पर खड़ा हुआ!
दो हजार साल में ईसाइयत ने ईसा से बिल्कुल उलटी बात लोगों को समझाई। अंग्रेजी में शब्द है--गॉड-फीयरिंग। हिंदी में भी हमारे पास शब्द है-- ईश्वर-भीरु। कैसे बेहूदे शब्द! धार्मिक व्यक्ति को कहते हैं ईश्वर-भीरु, गॉड-फीयरिंग। धार्मिक व्यक्ति को कहना चाहिए--ईश्वर-प्रेमी, गॉड-लविंग। लेकिन दो हजार साल तक जब बार-बार यह कहा गया कि ईश्वर से डरो, वह तुम्हें सजा देगा, वह तुम्हें नरकों में सड़ाएगा, अगर उसकी बात नहीं मानी तो बहुत कष्ट पाओगे, ऐसे कष्ट पाओगे कि जिनकी कल्पना भी नहीं कर सकते। और दुनिया के दूसरे धर्मों ने तो सावधिक नरक की व्यवस्था की है। एक अवधि है कि कुछ सालों तक नरक रहोगे। स्वाभाविक, कोई कितना ही बड़ा जुर्म करे, तो भी सजा की कोई सीमा होती है। मगर ईसाइयत ने तो गजब कर दिया--अनंतकाल तक नरक में रहना होगा! जुर्म क्या किए हैं? और बड़ा मजा यह है कि हिंदू अनंत जीवनों में मानते हैं, जैन और बौद्ध अनंत जीवनों में मानते हैं। अनंत जीवनों में भी इतने पाप नहीं होते कि अनंतकाल तक नरक में रहना पड़े। और ईसाइयत केवल एक

जीवन में मानती है, और एक ही जीवन में इतने पाप कर लोगे! गजब कर दिया कि अनंतकाल तक नरक में रहना पड़े! कैसे-कैसे पाप करोगे? क्या पाप करोगे आखिर? अगर चौबीस घंटे सतत पाप ही करते रहो--न सोओ, न खाओ, न पीओ; दूसरा कोई काम ही न करो, बस पाप ही पाप करो--तो भी साठ-सत्तर साल की जिंदगी में कितने पाप करोगे? अनंतकाल की कोई सीमा नहीं है। अनंतकाल तक कैसे सजा भोगोगे? बर्ट्रेंड रसल ने किताब लिखी हैः वॉय आई एम नॉट ए क्रिश्चियन? मैं ईसाई क्यों नहीं हूं? उसमें बहुत सी दलीलों में एक दलील यह भी है कि यह बात बेहूदी है, असंगत है, अन्यायपूर्ण है। एक जीवन, उसमें कितने पाप?
रसल ने लिखा है कि मैं अगर अपने सारे पाप गिनती करता हूं, जो मैंने किए, तो मुझे कोई कठोर से कठोर न्यायाधीश चार साल की सजा दे सकता है। और अगर उन पापों को भी गिन ले जो मैंने किए नहीं, सिर्फ सोचे, हालांकि जो सोचे उनके लिए सजा देने का कोई सवाल नहीं, तुम भी सोच लेना सजा, देने की कोई बात नहीं। न मैंने किसी को कुछ किया, न तुम मुझे कुछ करो। या बहुत से बहुत चूंकि मैंने सोचे, इसलिए सपने में मुझे जितने भी दुख-स्वप्न दे देना हो दे देना।
मगर रसल कहता है कि वह भी गिनती कर लो, चलो वह भी मत छोड़ो, तो जो मैंने किए और जो मैंने सोचे, सब जोड़ लो, तो भी मुझे आठ साल से ज्यादा की कोई सजा नहीं दे सकता। और अनंतकाल की सजा!
तो उसने अपने ईसाई न होने के कारणों में एक कारण यह भी गिनाया है कि यह बात बेहूदी है, असंगत है। और सिर्फ धर्म के नाम पर सताए जाने का आयोजन है। लोगों को डरवाया जा रहा है, भयभीत किया जा रहा है। और भय के आधार पर धर्म खड़ा किया जा रहा है। इसका अंतिम परिणाम हुआ कि एक दिन पश्चिम के बहुत बड़े मनीषी फ्रेड्रिक नीत्शे ने कहाः ईश्वर मर चुका है, दफनाओ उसे और मुक्त हो जाओ।
यह जो नीत्शे का वचन है, यह दो हजार साल की ईसाइयत ने जो भय का आरोपण किया, उसका परिणाम है। उसका अनिवार्य परिणाम है, तर्कगत निष्कर्ष है। ऐसे ईश्वर को मार ही डालना होगा। ऐसे दुष्ट ईश्वर को बचाने की कोई जरूरत नहीं। पूजा की तो बात और, इसकी हत्या कर दो। इसे दफना दो, ताकि आदमी मुक्त तो हो जाए!
और तुम कहते हो भय के बिना प्रीति नहीं होगी। भय के बिना नीत्शे नहीं होगा, यह पक्का है। भय के बिना घृणा नहीं होगी, यह पक्का है। भय के बिना ईश्वर को खत्म कर देने की आयोजना नहीं होगी, यह पक्का है। भय के बिना नास्तिकता नहीं होगी, यह पक्का है। लेकिन प्रीति नहीं होगी! यह बात तो निपट मूढ़ता की--एकदम मूढ़ता की।
प्रेम और भय भिन्न बातें हैं। लेकिन आदमी अपनी हर चीज के लिए सुंदर तर्क खोजना चाहता है। आदमी भीरु है, भयभीत है। वह इसी को कहता है कि यह प्रेम है, प्रार्थना है, पूजा है। तुम क्यों मंदिर में झुकते हो--प्रेम से? तुम कभी प्रेम से झुके हो? तुम क्यों मस्जिद जाते हो--प्रेम से? तुमने कभी प्रेम से भर कर नमाज पढ़ी, प्रार्थना की? सब भय है, सब घबड़ाहट है। कंपे हुए हो। इसलिए जवान आदमी धार्मिक नहीं होता, क्योंकि जवान में जरा ताकत होती है, जूझने का बल होता है। जैसे-जैसे बूढ़ा होने लगता है वैसे-वैसे धार्मिक होने लगता है। सब बूढ़े धीरे-धीरे धार्मिक हो जाते हैं। कारण? भय बढ़ने लगा और भय हमारा धर्म है।
जीवन को जीने की हिम्मत जिनमें नहीं है, इन भगोड़ों ने, इन कायरों ने धर्म के ऊपर बड़ा अत्याचार किया है। इन्होंने धर्म को परिभाषा दे दी, व्याख्या दे दी। ये रुग्णचित्त लोग; ये विक्षिप्त लोग, ये मुर्दा लोग धर्म पर हावी हो गए। इनकी लाशों की सड़ांध धर्म को भी सड़ा गई।
इसलिए जीवंत सदगुरु के पास होना हमेशा खतरनाक है। उसके पास होने का अर्थ हैः जीवन के पास होना। उसके पास होने का अर्थ हैः आग के पास होना।
जलने की तैयारी चाहिए। मिटने की हिम्मत चाहिए। शून्य होने का साहस चाहिए।
अहंकार को राख कर देने के लिए चुनौती जो स्वीकार कर सकता है, वही केवल जीवित सदगुरु के पास हो सकता है।

इसलिए बुद्ध जब जिंदा होते हैं तो बहुत लोग उनके साथ नहीं होते, न जीसस के साथ होते हैं। लेकिन जब मर जाते हैं तो बहुत लोग, करोड़ों लोग साथ हो जाते हैं। मुर्दा गुरु में कोई अड़चन नहीं। लोग मृत्यु के पूजक हैं, जीवन के नहीं। फिर तुम मूर्ति बनाओगे, मंदिर बनाओगे, क्या-क्या नहीं करोगे! मोहम्मद को जिंदगी भर सताया। एक गांव में टिक कर रहने न दिया। मोहम्मद को पूरी जिंदगी जूझना पड़ा। और अब सारी दुनिया में मोहम्मद का गुणगान हो रहा है। कैसे अजीब लोग हैं! कैसा चमत्कार है!
तुम पूछते हो योग चिन्मयः "जीवित सदगुरु के पास होना इतना खतरनाक क्यों है?"
जीवन के पास होना खतरनाक है, क्योंकि जीवन है असुरक्षा। मृत्यु में बड़ी सुरक्षा है। एक बार मर गए सो मर गए, फिर न कोई बीमारी लगती, फिर न कोई दुबारा मृत्यु हो सकती, न दिवाला निकलता, न चोरी होती, न डाका पड़ता। फिर तो विश्राम करो कब्रों में, विश्राम ही विश्राम है।
कनफ्यूशियस से उसके एक शिष्य ने पूछा कि जीवन में सुरक्षा कैसे मिले? कनफ्यूशियस ने उसकी तरफ देखा। कनफ्यूशियस कोई बुद्धपुरुष नहीं है। कनफ्यूशियस फिर भी एक सुलझा हुआ विचारक है, बहुत सुलझा हुआ। कनफ्यूशियस के जमाने में बुद्ध पुरुष तो था लाओत्सु। कनफ्यूशियस उससे मिलने भी गया था। इतना सुलझा हुआ तो था कि पहचान सका, कि जाए लाओत्सु के पास। इतना साफ-सुथरा चिंतन तो था, नहीं तो लाओत्सु को इनकार करता। तो एकदम गंवार पंडित नहीं था, एकदम भोंदू पंडित नहीं था, पोंगा पंडित नहीं था। सोच-विचार था, चिंतन की एक स्पष्ट रूप-रेखा थी। तो इतना तो उसे समझ में आया कि जो मेरे पास नहीं वह लाओत्सु के पास है। जिसे अभी मैं टटोल रहा हूं; इस आदमी ने उसे, लगता है, पा लिया। तो गया था मिलने, सैकड़ों मील की यात्रा करके मिलने गया था। और लाओत्सु बैठा था एक वृक्ष के नीचे और जब कनफ्यूशियस पहुंचा, तो कनफ्यूशियस तो बहुत ज्यादा नीति-नियम, शिष्टाचार का मानने वाले था। इस पृथ्वी पर जिन लोगों ने शिष्टाचार को सर्वाधिक मूल्य दिया, उनमें कनफ्यूशियस सर्वप्रथम है। आदमी को कैसे व्यवहार करना, कैसे उठना, कैसे बैठना... । उसने झुक-झुक कर लाओत्सु को नमस्कार किया। लाओत्सु ने कहाः व्यर्थ परेशान न होओ। क्यों शरीर को कष्ट देते हो? बैठो! यह क्या झुक-झुक कर कोरनिस बजा रहे हो? यह कोई राजाओं का दरबार नहीं। यह क्या तुम खुशामद कर रहे हो? बैठो! बैठ जाओ चुपचाप!
वह तो चीनी ढंग था... और चीनी ढंग बड़ा विस्तारपूर्ण था, सात बार झुकना, स्तुति करना। जब किसी महापुरुष के पास जाओ तो क्या-क्या कहना, कैसे-कैसे शब्दों में कहना। और लाओत्सु ने तो उसको तत्क्षण रोक दिया कि बकवास बंद कर, बैठ जा चुपचाप! घबड़ा कर कनफ्यूशियस बैठ गया। वह इतना घबड़ा गया जैसा कभी न घबड़ाया था। बड़े-बड़े सम्राटों के पास गया था, सब जगह उसको प्रशंसा मिली थी, क्योंकि सम्राट तो खुशामद पसंद होते हैं। लेकिन लाओत्सु ने कहाः यह तू क्या दरबारी बातें यहां लगा रखी हैं? यह कोई दरबार है?
तो कनफ्यूशियस ने जो भी पूछा, लाओत्सु ने उसका सीधा-सीधा जवाब दिया। पूछाः ईश्वर है? लाओत्सु ने कहाः सब बकवास। एक धक्का लगा। तो फिर धर्म क्या है? लाओत्सु ने कहाः स्वयं को जानना और जिसने स्वयं को जान लिया उसने ईश्वर को जान लिया। उसके पहले सब बकवास।
तो हम नैतिक जीवन कैसे जीएं--कनफ्यूशियस ने पूछा। लाओत्सु ने कहाः नैतिक जीवन जीने की कोई जरूरत नहीं। ध्यान से नीति वैसे ही बहती है जैसे हिमालय से सरिताएं बहती हैं। ध्यान में उतरो।
ध्यान का क्या अर्थ है?
तो लाओत्सु ने कहाः मिटो! शून्य हो जाओ! यह दंभ छोड़ो। ऐसे झटके दिए उसको, ऐसा झकझोरा! जब वह बाहर आया तो सर्द सुबह थी, लेकिन पसीना-पसीना हो रहा था। उसके शिष्यों ने पूछाः आप इतने बेचैन, उद्विग्न, पसीना-पसीना हो रहे हैं, क्या बात है?
उसने कहाः यह आदमी नहीं है, यह तो सिंह है। और यह बोलता नहीं, गरजता है। यह जलती आग है। अभी मैं इसके योग्य नहीं। अभी इसे पचा सकूं, यह मेरी सामर्थ्य नहीं।

मगर इतनी स्पष्टता थी। इसलिए कनफ्यूशियस का भी मेरे मन में आदर है।
कम से कम इतनी स्पष्टता थी कि यह आदमी आग है; अभी मैं पचा सकूं, यह मेरी सामर्थ्य नहीं!
लेकिन लोग तो बेईमान हैं। लोग यह नहीं कहेंगे। लोग यह कहेंगेः यह बात
ही गलत है। इसलिए हम इसे सुनें भी क्यों? लेकिन कनफ्यूशियस ने कहाः बात तो सुनने जैसी थी। शब्द-शब्द सुनने जैसा था। मगर मैं कमजोर। यह तो बिल्कुल तलवार की धार है। इसके पास रहे कि गर्दन कटी। ज्यादा देर इसके पास टिकना खतरे से खाली नहीं है।
जब कनफ्यूशियस के शिष्य ने पूछा कि सुरक्षा कैसे मिले? जीवन में सुरक्षा कैसे मिले? तो कनफ्यूशियस ने कहा कि फिर कब्र में क्या करोगे? कब्र में सुरक्षा मिलेगी, सुरक्षा ही सुरक्षा भोगना खूब। अभी तो जी लो। और अगर त्वरा से जीना है तो जाओ लाओत्सु के पास--उस खतरनाक आदमी के पास! मैं तो बूढ़ा हो गया, तुम अभी जवान हो, शायद तुम्हारे जीवन में अभी सामर्थ्य हो कि तुम उसे पी लो, पचा लो। और लाओत्सु तो ऐसे है जैसे शमा। बनो परवाने, चले जाओ! मैं तुम्हें नीति सिखा सकता हूं। लाओत्सु तुम्हें जीवन दे सकता है। इसलिए कनफ्यूशियस को ईमानदार आदमी तो मानना ही होगा।
सदगुरु के पास होना खतरनाक है, क्योंकि वह जीवन सिखाएगा, पलायन नहीं; जीवन-निषेध नहीं, जीवन-स्वीकार, जीवन का अहोभाव।
तुम पूछते हो योग चिन्मयः "सब कुछ दांव पर लगा कर आपके बुद्ध-ऊर्जा क्षेत्र में डूबने के लिए इतने कम लोग क्यों आ पाते हैं?"
सब कुछ दांव पर लगाना है, वही तो अड़चन है। यहां समझौता नहीं है। यहां मैं तुमसे यह नहीं कहता कि चलो महाव्रत नहीं सधते तो अणुव्रत साधो। अणुव्रत यानी समझौता। व्रत तो महाव्रत होते हैं। अणुव्रत भी कोई व्रत होते हैं? व्रत भी कहीं छोटे और बड़े होते हैं? व्रतों में भी कहीं कोई साइज... कि अपने-अपने हिसाब से साध लो, जितना बने उतना साध लो, कि जब सुविधा हो सत्य बोल लेना, जब सुविधा न हो तो असत्य बोल देना--यह अणुव्रत। और सुविधा जब होती है तब तो कोई भी सत्य बोलता है, इसमें साधना क्या है? सच तो यह कि कभी-कभी लोग सत्य ही इसलिए बोलते हैं कि सत्य बोल कर ही नुकसान पहुंचाया जा सकता है। जैसे किसी आदमी को तुम्हें सजा करवानी हो और तुम अदालत में जाकर सच बोल दो, तो तुम यह मत सोचना कि तुम सत्यवादी हो। तुम्हारे इरादे नेक नहीं थे। तुम बदमाश हो। तुम बेईमान हो। तुम चोर हो। तुम सत्य बोलने अदालत में नहीं गए थे। तुम गए थे कि इस आदमी को सजा हो जाए, कि ऐसा मौका तुम न चूक सके। दोहरे हाथ। अरे एक पत्थर से दो चिड़ियां मार लीं। सत्य भी बोल लिया, सो ईश्वर के खाते में भी लिखवा लिया कि देखो सत्य बोला और इसको भी पांच साल की सजा करवा दी।
एक छोटे से बच्चे को अदालत में गवाही के लिए लाया गया। मजिस्ट्रेट ने उसे कहा कि कसम खा कि सत्य ही बोलेगा। उसने कहा कि ठीक है, आप कहते हैं तो कसम खाता हूं कि सत्य ही बोलूंगा। फिर मजिस्ट्रेट ने कहा कि बोल, तुझे क्या कहना है?
उसने कहाः मुझे अब कुछ नहीं कहना। आपने पहले ही मेरा मुंह बंद कर दिया। छोटा बच्चा था, सीधा-साफ। आपने मेरा मुंह पहले ही बंद कर दिया। अगर बोलूं तो असत्य बोल सकता हूं, क्योंकि वही मैं सिखा-पढ़ा कर भेजा गया हूं। और वह आपने कसम खिला दी। और सत्य मैं बोल नहीं सकता। और सत्य ही बोलना है। इसलिए अब बोलने को कुछ बचा नहीं। जयराम जी! मैं यह चला। आपने पहले ही बाधा ऐसी लगा दी।
लोग सत्य बोलते हैं--चोट पहुंचाने के लिए। कभी-कभी सत्य को ऐसा उपयोग करते हैं, जैसे गालियों का उपयोग किया जाता है। गर्दनें काटने के लिए। वही तुम झूठ का उपयोग करते हो, वही तुम सत्य का उपयोग करते हो। सवाल उपयोग का है; सवाल इसका नहीं कि तुमने क्या बोला। तुम धर्म का उपयोग भी गर्दनें काटने के लिए करते हो। और तुम अधर्म का उपयोग भी उसी के लिए करते हो। तुम्हारी दुनिया में धर्म और अधर्म में भेद क्या है? तुम्हें आग लगानी है, आदमी मारने हैं। तुम्हें लोगों की जितनी ज्यादा हानि संभव हो सके उतनी हानि करनी है; जितना शोषण बन सके उतना शोषण करना है--अधर्म से हो तो अधर्म

से और धर्म से हो जाए तो कहना ही क्या! दोनों दुनियाएं साधनी हैं। रात पी भी ली, सुबह तौबा भी कर ली। न दुनिया हाथ से गई, न जन्नत हाथ से गई। तुम चालबाज हो! और इन चालबाजों से धर्म बुरी तरह क्षत-विक्षत हुआ है।
तुम पूछ रहे हो कि "सब कुछ दांव पर लगा कर... ।"
योग चिन्मय, तुमने भी सब कुछ दांव पर लगाया है? "सब कुछ"--सोचना इस शब्द पर। सब कुछ कौन दांव पर लगा रहा है? लोगों के दांव भी सशर्त होते हैं, उनके दांव में भी शर्त होती है--चाहे उन्हें पता न भी हो, चाहे अचेतन शर्त हो। अगर मैं उनकी मन की कह रहा हूं तो वे राजी हैं, बिल्कुल राजी हैं। और जरा उनके बेमन की कही कि बात बिगड़ी। इसलिए जो होशियार चालबाज लोग हैं, वे तुम्हारे बेमन की कहते ही नहीं। इसलिए उनसे कोई नाराज नहीं होता। इधर मैं एक दोस्त बनाता हूं, दस दुश्मन बनते हैं। बड़ा महंगा सौदा है यह। यहां एक दोस्त बनाना मुश्किल हो जाता है। और दुश्मन, एक दोस्त को बनाने में, कितने बना लेता हूं!
लेकिन चालबाज लोग ऐसा नहीं करते। चालबाज लोग होशियारी से चलते हैं;
वे किसी को दुश्मन नहीं बनाते।
एक महात्मा से सेठ चंदूलाल ने पूछाः मेरा इंटरव्यू-लेटर आया है। जाऊं
या नहीं महाराज? आपकी क्या राय है?
महात्मा ने कहाः भई, मेरी तो यही राय है कि अगर आपको जाना हो तो जरूर जाएं। अगर नहीं जाना हो तो हरगिज न जाएं।
ऐसे लोगों के दुश्मन नहीं बन सकते। क्या गजब की राय दी, कि अगर जाना हो
तो जरूर जाएं; अगर न जाना हो तो हरगिज न जाएं! ऐसे लोगों से लोग प्रसन्न होते हैं, आनंदित होते हैं, आह्लादित होते हैं।
सब कुछ दांव पर लगाना बड़ी हिम्मत की बात है, दुस्साहस की बात है। सब कुछ दांव पर लगाने का अर्थ हैः पीछे लौटने की सीढ़ी ही तोड़ दी, सेतु ही गिरा दिया। "हां" जो कही तो उसमें कहीं भी कोई "नहीं" की गुंजाइश न रखी। फिर गर्दन कटे तो गर्दन कटे, जीवन रहे तो जीवन रहे, न रहे तो न रहे।
योग चिन्मय को अपने से पूछना चाहिए, प्रत्येक को अपने से पूछना चाहिए
कि सब दांव पर लगाया है? या मन को भाती है जो बात, रुचती है जो बात, उसमें मुझसे राजी हो जाते हो? जो नहीं रुचती या उसको सुनते ही नहीं, या सुन भी ली तो अनसुनी कर जाते हो। और जो करते भी हो, उसमें भी कितनी होशियारियां करते हो!
मुझे लोग पत्र लिखते हैं कि अगर आपकी आज्ञा हो तो मैं एक-दो महीने के लिए घर हो आऊं। अगर मैं कह दूं हो आओ, तो वे बड़े प्रसन्न। अगर मैं कह दूं नहीं, तो वे बड़े दुखी। मगर तुम्हारे दुख ने सब कह दिया। क्यों मांगी थी आज्ञा? आज्ञा मांगने की कोई जरूरत न थी। आज्ञा मांगी इसीलिए थी कि मैं वही कहूं जो तुम चाहते हो। तो फिर मुझसे बिना ही आज्ञा मांगे कर लेना था, जरूरत क्या थी? मुझे किसलिए परेशान किया? और फिर उदास बैठे हैं, फिर दुखी बैठे हैं। फिर जगह-जगह अपनी उदासी की चर्चा करते फिर रहे हैं कि मुझे आज्ञा नहीं मिली जाने की, फलाने को आज्ञा मिल गई जाने की; उसको हां भर दिया, मुझे हां नहीं भरा। फिर लाख शिकायतें कर रहे हैं।
और तुमसे पूछा किसने था कि तुम आज्ञा मांगो? तुम चले जाते। जिसको जाना
है वह जाए, मजे से जाए। लेकिन बेईमानी देखते हो? जाना भी चाहते हो और यह भी बताना चाहते हो कि आज्ञा के अनुसार जा रहे हो; चूंकि मैंने कहा, इसलिए जा रहे हो। अगर मैं मना कर देता तो कभी न जाते। मगर तब तुम इस तरह का चारों तरफ उदास चेहरा लिए घूमते कि सारे आश्रम को पता चल जाए कि तुम्हारी शिकायत क्या है।
लोग जो काम... मुझसे कहते हैं कि जो आप काम कहें, वही हम करेंगे। मगर उन्हें जो काम दिया जाता है, वह नहीं जमता। इसमें यह तकलीफ आती है, इसमें यह तकलीफ आती है, इसमें यह तकलीफ आती है। जब तक उनको वह काम नहीं मिल जाता जो वे करना चाहते हैं... इतना समय क्यों खराब करवाया? पहले ही कह देते कि मैं यह काम करना चाहता हूं। मगर यह मजा भी लेना था कि समर्पण हमारा पूरा है; जो आज्ञा दी जाएगी, वह हम करेंगे।

योग चिन्मय की हालत तो पक्की ऐसी है। यहां आश्रम में थे--अब तो वे सासवड़ में हैं--उनके पास ही एक नल को आठ बजे बंद करना होता था। उनको कहा गया कि आठ बजे नल बंद कर दिया करें।... कि वह मैं नहीं कर सकता हूं, क्योंकि मुझे रोज याद नहीं रह सकता। इतनी सी बात रोज याद नहीं रह सकती कि आठ बजे उसको बंद कर देना है नल को? उन्हें जो भी काम दिया जाता है--"इतना ही मैं करूंगा, इतना ही हो सकता है।" क्षमता उनकी बहुत है। और मैं चाहता हूं कि तुम्हें तुम्हारी क्षमताओं से पार ले चलूं। तुम चढ़ सकते हो पहाड़, तुम जा सकते हो गौरीशंकर पर। लेकिन तुम कहते होः "हम तो पूना की पहाड़ी चढ़ेंगे, बस इतना ही। इतने में भी थक जाते हैं।"
मैं चाहता हूं कि तुम्हारी क्षमताओं को उनकी आत्यंतिक स्थिति तक खींचा जाए, क्योंकि वहीं से रूपांतरण होता है। लेकिन तुम कंजूसी कर जाते हो। तुम आलस्य कर जाते हो। तुम अपने को रोक लेते हो। "इतना ही मैं कर सकूंगा... ।" और अपना हिसाब-किताब बताने को तैयार होते हैं कि सुबह का समय तो प्रवचन में चला गया; फिर भोजन में समय चला जाता है; फिर मुझे दोपहर को विश्राम भी करने में समय चाहिए; फिर कोई सत्संगी आ जाते हैं तो उनको भी समय देना पड़ता है; फिर शाम को घूमने जाना पड़ता है; फिर संध्या के भोजन का वक्त आ गया। फिर दिन भर में बचता ही नहीं उनके पास कुछ समय। जो थोड़ा-बहुत बचता है, उसमें काम करते हैं।
समग्र समर्पण, सब कुछ दांव पर लगा कर, जो लोग यहां मेरे पास हैं वे ही मेरे पास हैं! और जोलोग यहां भी हिसाब-किताब बिठा रहे हैं, वे समझ लें कि वे मेरे पास होने के भ्रम में हैं, मेरे पास नहीं हैं।
तुम कहते होः "सब कुछ दांव पर लगा कर आपके बुद्ध-ऊर्जा क्षेत्र में डूबने के लिए इतने कम लोग क्यों आ पाते हैं?"
और तुमसे किसने कहा कि इतने कम लोग आ रहे हैं? तुम क्या सोचते हो इससे ज्यादा लोग कभी भी आए हैं किसी के पास? बुद्ध के पास कितने लोग थे या महावीर के पास कितने लोग थे और जीसस के पास कितने लोग थे? और जितने थे उनमें से भी कितने सच में पास थे? आज जिस विराट पैमाने पर मेरे पास लोग आए हैं, संभवतः पृथ्वी पर कभी किसी के पास नहीं आए। आज सारी पृथ्वी पर डेढ़ लाख संन्यासी हैं। बुद्ध और महावीर के ऊर्जा-क्षेत्र तो बहुत सीमित थे, बिहार के बाहर नहीं। बिहार शब्द ही इसलिए पड़ गया उस प्रांत का, क्योंकि वहां बुद्ध और महावीर घूमते थे, विहार करते थे। इसलिए बिहार नाम पड़ गया। जिस सीमा को उन्होंने भ्रमण किया था, वही बिहार की सीमा है। बिहार के बाहर से तो कोई आना-जाना बहुत हुआ नहीं।
जीसस तो जेरुसलम के आस-पास सीमित रहे। बारह शिष्य थे खास। उनमें से भी
एक ने उन्हें तीस रुपये में बेच दिया। और बाकी ग्यारह भी, जब जीसस को सूली लगी, भाग खड़े हुए। जो लोग जीसस के पास सूली के बाद भी मौजूद रहे, जो उनको सूली से उतारने गए... । तुम चकित होओगे कि यह दुनिया कैसी अदभुत है! तीन स्त्रियां जीसस को उतारने गई थीं सूली से। इसलिए मेरा स्त्रियों पर भरोसा ज्यादा है पुरुषों की बजाय।
मुझसे लोग बार-बार पूछते हैं कि आपने इस आश्रम में स्त्रियों को सर्वाधिक कार्य क्यों दे रखा है? मेरा उन पर ज्यादा भरोसा है। स्त्रियां ज्यादा सरल, ज्यादा सौम्य, ज्यादा प्रीतिपूर्ण। पुरुष--चालबाज, बेईमान, होशियार, हर तरह के शड्यंत्र करने में कुशल। अपने हिसाब से चलें और दूसरों को भी अपने हिसाब से चलाएं--ऐसी आकांक्षा से भरे हुए। और जब जैसा मौका देखें, अवसरवादी।
ग्यारह ही शिष्य भाग गए। यद्यपि बड़े मजे की बात है कि जिन तीन स्त्रियों ने जीसस को सूली से उतारा, ईसाई उनमें से तीनों में से किसी की पूजा नहीं करते। पूजा उन ग्यारह की होती है अब भी, जो भाग गए थे। क्या मजा है! अब भी उन ग्यारह भगोड़ों को, जीसस का गणधर, अपॉसल्स कहा जाता है। अब भी वे ही उनके खास शिष्य हैं। मजबूरी थी पीछे आने वाले लोगों की, क्योंकि उन तीन स्त्रियों में एक वेश्या थी--मेरी मेग्दलीन। अब वेश्या को कैसे वे आदर दें?

इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, यह दुनिया इतनी आसान और सीधी नहीं है, जैसा
कि तुम सोचते हो। यहां सतियां धोखा दे जाएं और वेश्याएं निष्ठावान सिद्ध हो जाएं--यह दुनिया बहुत अदभुत है! यहां ऊपर से ही तय मत कर लेना।
जब गर्दन कटने का वक्त था तो मेरी मेग्दलीन पहुंच गई। उसने फिकर नहीं
की जीसस के साथ खड़े होने में, जीसस की लाश को सूली से उतारने में। और यह वही वेश्या है, जिसने एक दिन जीसस के पैरों पर आकर इत्र की बोतल उंड़ेल दी थी-- धोने के लिए पैर। और अपने बालों से पैरों को पोंछा था। तो जुदास ने जिसने कि तीस रुपये में बाद में जीसस को बेचा, उसने एतराज किया था। यह जरा मजे की बात है! यह घटना सोचने जैसी है। जुदास ने, जिसने कि जीसस को मरवाया, उसने ही एतराज किया था कि आपकोशर्म नहीं आती कि वेश्या को पैर छूने देते हैं? और यह भी तो सोचिए कि इसने कितना कीमती इत्र पैरों में उंड़ेल दिया! यह इतना कीमती इत्र था कि इसको बेच कर पूरे गांव को एक दिन भोजन कराया जा सकता था। गांव में कितनी गरीबी है!
बड़ा समाजवादी था, साम्यवादी कहना चाहिए--जुदास। तर्क तो उसका सही मालूम पड़ता है। और जीसस से उसने कहाः यह उचित नहीं है। लोग देख रहे हैं, लोग क्या कहेंगे कि आप जैसा सदगुरु और वेश्या को पैर छूने दे रहा है! अरे वेश्याओं को तो पत्थर मार-मार कर मार डालना चाहिए।
तुम भी राजी होओगे कि ठीक तो बात है, इत्र की बोतल उंड़ेलने से क्या फायदा? अरे पैर तो पानी से भी धोए जा सकते थे। और इत्र को बेच कर गांव के गरीबों के काम आ जाता। सर्वोदय के अनुकूल पड़ती है बात। और फिर जीसस को इतना तो ख्याल होना चाहिए कि वेश्या को पैर न छूने दें, क्योंकि वेश्या को पैर छूने देना खुद भी अपवित्र होना है।
लेकिन जीसस ने कहा कि जुदास, तू फिकर न कर। इस इत्र को बेच कर भी उनकी कुछ गरीबी न मिट जाएगी। और फिर, हम इस इत्र के मालिक नहीं; इस इत्र की मालकिन पैरों में डालना चाहती है, यह उसकी मर्जी है। फिर मैं ज्यादा देर यहां नहीं रहूंगा। मेरे जाने के बाद तुम्हें गरीबों को जो-जो बांटना हो बांट देना।
बड़ा प्यारा वचन जीसस ने कहा कि जब दूल्हा मौजूद हो, तब तो उत्सव मना लो! "दूल्हा" शब्द का उपयोग किया है... कि जब दूल्हा मौजूद हो तब तो उत्सव मना लो, तब तो ये बेहूदी बातें और ये तर्क न लाओ! और गरीब तो मेरे मरने के बाद भी रहेंगे, उनकी सेवा पीछे कर लेना। फिर जिसने इतने प्रेम से मेरे चरणों में इत्र डाला है और इतने अहोभाव से अपने बालों से मेरे पैरों को पोंछा है, कौन कहता है वह अपवित्र है? पवित्रता-अपवित्रता भाव की बात है। उसकी भावना मैं देख रहा हूं।
और मजे की बात यह है कि जुदास ने तीस रुपये में बेच दिया जीसस को-- सिर्फ तीस रुपये में! दुश्मनों से केवल तीस रुपये की रिश्वत मिली थी और जीसस को पकड़वा दिया। और वे तीस रुपये भी गरीबों में बांटे नहीं! कम से कम वे तीस रुपये तो गरीबों में बांट देता, कि चलो कोई बात नहीं, तीस रुपये में एक दिन का कम से कम गांव भर का भोजन तो हो जाएगा। उन दिनों हो भी जाता, तीस रुपये, चांदी के शुद्ध सिक्के थे। वे तीस रुपये तो जेब में डाल लिए। और जोस्त्री जीसस के पास खड़ी रही आखिरी क्षण तक, वह यही वेश्या थी--यही मेग्दलीन थी। मगर ईसाइयों ने मेग्दलीन को कोई प्रतिष्ठा नहीं दी। वेश्या को कैसे प्रतिष्ठा दें!
इसलिए मैं कहता हूंः ईसाई कोई ईसा के दोस्त नहीं, दुश्मन हैं। दूसरी स्त्री इसी मेग्दलीन की बहन थी। और तीसरी स्त्री थी जीसस की मां। ये तीन स्त्रियों ने जीसस को उतारा था। चलो छोड़ दो मेग्दलीन को और उसकी बहन को, क्योंकि उनके चरित्र का कुछ ठिकाना न था। लेकिन मेरी के चरित्र का तो ईसाइयों को ठिकाना है। लेकिन भीतर से उनकोशक है। यूं ऊपर से तो वे कहते हैं कि जीसस का कुंआरा जन्म हुआ, लेकिन ये ऊपर-ऊपर की बातें हैं, भीतर-भीतर उनके भी सरकता है कि कुंआरे में जन्म हो कैसे जाएगा? कहीं न कहीं डर भीतर छिपा है कि लगता है यह स्त्री, जीसस की मां भी विवाह के पहले किसी से संबंधित रही होगी। मगर इसको कोई कहता नहीं, क्योंकि कौन कहे! कौनझंझट मोल

ले! इसको लीप-पोत दिया है। यह बिना पुरुष के संसर्ग के जीसस के जन्म की कहानी गढ़ ली।
चलो ठीक है, तुम्हारी अगर कहानी सही है, तो कम से कम जीसस की मां के साथ
तो सदव्यवहार करते। तुमने परमात्मा के तीन रूप बताए हैं--पिता, बेटा और दोनों के मध्य में पवित्र आत्मा। कम से कम एक स्त्री को भी स्थान दे देते। उसमें मेरी को भी गिन लेते, तो क्या हर्जा हो जाता? मगर मेरी को भी उसमें न गिन सके। जीसस की मां को भी उसमें न गिन सके! एक तोस्त्री, स्त्री को कैसे गिनें! स्त्री तो पाप, स्त्री तो नरक का द्वार! स्त्री को वहां रख दें ईश्वर के साथ, वह ईश्वर तक को भ्रष्ट कर दे और पवित्र आत्मा को ले भागे या क्या गड़बड़ हो जाए, कुछ कहा नहीं जा सकता! स्त्री को घुसने ही नहीं देना। वह पूरी ईसाइयों की जो त्रिमूर्ति है, तीनों ही पुरुष हैं। अब बड़ा
मजा यह है कि पिता हैं तो मां कहां है? ये पिता बिना ही मां के पिता हैं! मगर यह मजा चलता है। तुम ईसाई पादरी को पिता कहते हो--फादर! उससे कभी पूछो भी तो कि मदर कहां है? तुम फादर हो कैसे गए! न पत्नी है, न बेटा है--और पिता हो गए? पिताश्री! गजब कर रहे बापजी! चमत्कार कर रहे।
मेरे पास एक ईसाई पादरी मिलने आते थे। मैं जबलपुर में जहां रहता था, उसके पास ही चर्च था। मैंने उनसे पूछा कि तुम्हें कभी इस पर विचार नहीं उठता कि तुम्हें लोग फादर कहते हैं, पिता कहते हैं, बापजी कहते हैं, तुम रोकते नहीं? मैं राजस्थान जाता था तो कुछ लोग मुझको बापजी कहने लगे। राजस्थान में गजब के लोग हैं। मैंने उनको कहाः रुको भई। कैसे तुम मुझे बापजी कह रहे हो? मैं बापजी नहीं हूं; क्योंकि न तो कोई माताराम हैं मेरे साथ, न कोई बेटाराम हैं, कोई बाल-बच्चे भी नहीं। अरे अपने न हों, गोद लिए हों, वे भी नहीं। तुम मुझे बापजी न कहो।
मगर लोग तो अजीब, वे कहेंः अरे नहीं बापजी, आप कैसी बातें कर रहे हैं! मैंने उस पादरी को कहा कि तुम्हें जब लोग फादर कहते हैं तो तुम्हें संकोच नहीं होता सोच कर कि यह क्या बात हुई! फादर का मतलब क्या होता है? मगर वह बोलाः मैंने कभी इस पर सोचा नहीं।
मैंने कहाः तुम क्यों सोचोगे! ऊपर तुम्हारे जो फादर बैठा है, वह तक नहीं सोचता, तुम क्यों सोचोगे!
यह चल रहा है मूर्खतापूर्ण सिलसिला। लेकिन स्त्री को कैसे जगह दें,
यह अड़चन रही। तुम्हारी भी जो त्रिमूर्ति है परमात्मा की, उसमें एक भी स्त्री रूप नहीं है--ब्रह्मा, विष्णु, महेश। एकाध स्त्री को भी जगह दे देते तो कुछ बिगड़ जाता? मगर स्त्री को तो कहीं जगह नहीं मिल सकती।
मुझे तोस्त्री के जीवन में ज्यादा स्वास्थ्य और ज्यादा प्रेम दिखाई पड़ता है। इसलिए बहुत सी स्त्रियां तुम्हारे महात्मा और संत और महंत नहीं हो सकीं, क्योंकि वे इतनी जीवन-विरोधी नहीं हो सकीं। वे हो नहीं सकतीं इतनी जीवन-विरोधी। पुरुष में यह जीवन-विरोध बड़े जल्दी पैदा होता है; वह भगोड़ा हो जाता है। इसलिए अगर मेरे पास स्त्रियों का एक बहुत बड़ा वर्ग इकट्ठा हो रहा है तो आश्चर्य नहीं है, क्योंकि जीवन का समर्थन कभी किसी ने इस प्रगाढ़ता से नहीं किया जिस प्रगाढ़ता से मैं कर रहा हूं। और स्त्री का सम्मान मेरे मन में जितना है, संभवतः तुम्हारे किसी तीर्थंकर, किसी अवतार के मन में नहीं था। कहीं न कहीं निंदा के वचन हैं। कहीं न कहीं स्त्री को नीचा दिखाने की चेष्टा है। कहीं न कहीं पुरुष का अहंकार स्थापित हो जाता है।
अब तुम देखो, तुम्हारे हिंदू अवतारों में क्या-क्या अवतार नहीं हुए! मछली, कछुआ, सिंह, सुअर--हद हो गई! किसी को सुअर कह दो तो फौरन तलवारें खिंच जाएं। मगर एकाध स्त्री को भी अवतार बन जाने देते। नहीं। सुअर चल सकता है; वह भी सुअरनी नहीं, सुअर, ख्याल रहे। कछुवी नहीं, कछुआ। मछली नहीं, मछला। वह ही होना चाहिए पुरुष। सिंहनी नहीं, सिंह। यह पुरुषों के द्वारा अपने ही अहंकार को आरोपित करने की चेष्टा की गई है।
मेरी मौलिक जीवन-दृष्टि जगत को प्रेम से भरने की है। प्रेम मेरे लिए धर्म है। सार रूप में, निचोड़ रूप में धर्म प्रेम है।
और यह तुमसे किसने कहा कि... "इतने कम लोग क्यों आ पाते हैं?"

इतने कम लोग नहीं हैं। किसी जीवित सदगुरु के पास इतने लोग कभी इकट्ठे नहीं हुए। और फिर जितना खतरनाक मेरा जीवन-दृष्टिकोण है, उतने खतरनाक जीवन-दृष्टिकोण को देखते हुए इतने लोगों का आना भी परम आश्चर्य है। मैं परंपरावादी नहीं, किसी रीति-रिवाज, पुरानी धारणा, संस्कार, इनसे मेरा कुछ नाता नहीं। मैं तुम्हें सारी प्राचीनता से मुक्ति दिलाना चाहता हूं। मैं तुम्हें चाहता हूं कि तुम नित-नूतन होते रहो, रोज-रोज अतीत के प्रति मरते रहो। इतनी आमूल क्रांति की बात के लिए जितने लोग इकट्ठे हो गए हैं, उसको योग चिन्मय, तुम कहते होः "इतने कम लोग क्यों आ पाते हैं?" तुम्हें गिनती आती है?
लेकिन हमारे सोचने के ढंग ही भीड़-भाड़ के होते हैं। तुम चाहते हो कि जिस तरह रामलीला में लाखों लोग बैठ कर रामलीला देखते हैं, इस तरह लोग यहां आएं; या यज्ञ होता है और लाखों लोग यज्ञ में जाते हैं; या कुंभ का मेला भरता और करोड़ों मूढ़ इकट्ठे होते हैं--ऐसे ही यहां इकट्ठे हों। मैं होने नहीं दूंगा, अगर होना भी चाहें तो। मुझे भीड़-भाड़ में रस नहीं है।
भीड़ तो भेड़ों से बनती है, आदमियों से नहीं। भीड़ की चाल तो भेड़चाल होती है। मुझे तो उत्सुकता है उन थोड़े से हिम्मतवर लोगों में, जो अपनी जान हथेली पर लेकर खड़े हो सकते हों, जो अपने अहंकार को गिरा देने का बल रखते हों और जो उन महत्वपूर्ण प्रक्रियाओं से गुजरने को राजी हों जो यहां चल रही हैं। और यह अभी केवल प्रारंभ है। यह केवल अभी तैयारी है। यह अभी छलांग की तैयारी है। जैसे ही यह तैयारी पूरी हो जाएगी, तुम्हें उस अगम सागर में ले जाना है, जिसका कोई कूल-किनारा नहीं है, न कोई नक्शा है; जिसमें डूबना ही उबरना है।
तो स्वभावतः चुने हुए लोग आएंगे। मगर वे ही चुने हुए लोग तो पृथ्वी के नमक हैं! उनके कारण ही तो जीवन में सौष्ठव है, सौंदर्य है, सुवास है, मिठास है। उनके कारण ही तो जीवन में कभी-कभी फूल खिलते हैं, वसंत आता है। उन थोड़े से लोगों के कारण ही मनुष्य मनुष्य है, नहीं तो मनुष्य अभी भी पशु होता, अभी भी झाड़ों पर बंदरों की तरह उछल-कूद मचा रहा होता।
तुम पूछते होः "... जब कि पलटू की तरह आपका आह्वान पूरे विश्व में गूंज उठा है।"
पलटू का आह्वान कभी भी विश्व में नहीं गूंजा। पलटू को तो बहुत ही कम लोग जानते रहे। पलटू तो सीधा-सादा आदमी है, ग्रामीण। उसकी तो भाषा भी गांव की। मगर बातें उसने पते की कहीं। और यह सूत्र उसका पते का है। गूंजना चाहिए था विश्व में, लेकिन नहीं गूंजा। विश्व में किसी बात को गुंजाने के लिए भी बड़ी व्यवस्था, बड़ी दृष्टि और सूझ-बूझ चाहिए। विश्व में किसी बात को गुंजाना आसान मामला नहीं है। और धर्म की बात को गुंजाना तो बहुत मुश्किल बात है। धर्म कोई जासूसी उपन्यास तो नहीं कि हर कोई पढ़ना चाहेगा। धर्म कोई हत्याओं, बलात्कारों से भरी हुई फिल्म तो नहीं कि हर कोई देखना चाहेगा। धर्म कोई सनसनीखेज घटना तो नहीं कि हर अखबार उसे सुर्खियां देना चाहेगा। धर्म तो बड़ी नाजुक बात है, न उसमें कुछ सनसनीखेज है, न हत्या है, न बलात्कार है, न आगजनी है। धर्म तो ध्यान है। ध्यान में किसको रस? ध्यान से किसको प्रयोजन? लोगों को धन से प्रयोजन है, ध्यान से नहीं; पद से प्रयोजन है, परमात्मा से नहीं। और-और तरह की बातों से प्रयोजन है, हर तरह के कूड़ा- करकट को इकट्ठा करने को वे राजी हैं; लेकिन मोक्ष, निर्वाण, ये शब्द ही उनके हृदय में कोई गूंज पैदा नहीं करते। इन शब्दों को सुन कर वे खिसक जाते हैं कि अभी तो मुझे जीना है, अभी तो मुझे हजार काम करने हैं।
बुद्ध जिस दिन मरे, एक आदमी भागा हुआ आया और उसने कहा कि मुझे आना तो बहुत पहले से था, तीस साल से सोच रहा था आऊं, लेकिन नहीं आ सका। और आप मेरे गांव से कितनी बार नहीं गुजरे! लेकिन कभी कोई मेहमान आ गया, कभी मैं दुकान बंद करके आपके दर्शन को आ ही रहा था कि कोई ग्राहक आ गया। बस कभी मैंने बिल्कुल तैयारी ही की थी कि पत्नी बीमार पड़ गई, कि चिकित्सक को बुलाने जाना पड़ा, कि मेरे खुद ही सिर में दर्द हो गया।
हजार बहाने हैं। सब बहाने हैं, क्योंकि जिसे जाना हो वह सिरदर्द हो तो
भी जा सकता है और पत्नी बीमार हो तो भी जा सकता है। और जिसे जाना हो, आज

नहीं सही एक ग्राहक, जिंदगी भर तो ग्राहक आए। और जिसे जाना हो, वह मेहमान को भी साथ ले जाएगा, क्यों रुकेगा? और मेहमान को नहींजाना हो तो मेहमान आराम करे। लेकिन ये सब बहाने हैं। और लोग चूकते चले जाते हैं।
अब जब उसको खबर मिली कि बुद्ध मर रहे हैं, अपनी अंतिम श्वास ले रहे हैं, तब भागा हुआ आया। बुद्ध ने कहाः "तूने बहुत देर कर दी। अब तू क्या समझ पाएगा? मैं तुझे क्या समझाऊं अब? यह बात इतनी आसान तो नहीं। यह कुछ ऐसा मामला तो नहीं कि मैं तुझे दे दूं, कि यह ले जा, घुटी बना कर पी लेना। धर्म कुछ ऐसी चीज तो नहीं कि मैं एक किताब पकड़ा दूं कि ले, पढ़ते रहना।"
धर्म तो जीवन-साधना है। समग्र जीवन, श्वास-श्वास जब अनुप्राणित होते हैं, तब कहीं क्रांति घटती है।
मगर यह सूत्र कीमती है--
बहुरि न ऐसा दांव, नहीं फिर मानुष होना।
क्या ताकै तू ठा.ढ़, हाथ से जाता सोना।।
पलटू कह रहे हैंः चूको मत, दुबारा मौका मिले न मिले। संभावना तो यही
है कि शायद ही मिले। बहुरि न ऐसा दांव! अगर सदगुरु मिल जाए तो लुट जाओ। अगर सत्य के मिलने की कोई संभावना हो तो सब गंवाने को राजी हो जाओ। तुम्हारे पास है भी क्या गंवाने को? क्या बचा रहे हो?
बहुरि न ऐसा दांव! कौन जाने फिर तुम मनुष्य हो सको दुबारा, न हो सको। कौन जाने मनुष्य भी हो जाओ तो कोई बुद्ध, कोई कृष्ण, कोई क्राइस्ट मिले न मिले। कौन जाने क्राइस्ट, बुद्ध, कृष्ण मिल भी जाएं तो तुम समझ पाओ, न समझ पाओ, बात मन को आकर्षित करे न करे। क्या पता! आज चूक रहे हो, कल का भरोसा क्या? जैसे आज चूक रहे हो वैसे ही कल भी चूकोगे, क्योंकि चूकने की आदत बन जाएगी।
लोगों की आदतें बन जाती हैं, भाषाएं बन जाती हैं, देखने-सोचने के ढंग सुनिश्चित हो जाते हैं।
एक पुलिस इंस्पेक्टर एक जेबकतरे से कह रहा थाः जेब काटते हुए तुम्हें कभी शर्म नहीं आती?
जेबकतरे ने कहाः आती है साहब, जरूर आती है। जब किसी यात्री की जेब में
एक रुपया भी नहीं मिलता तो बहुत शर्म आती है।
अलग भाषाएं हैं, अलग सोचने के ढंग हैं। अब जेबकतरे कोशर्म कब आती है? जेब काटने में नहीं, मगर जब एक पैसा भी नहीं मिलता। घंटों इसके पीछे चले, न मालूम कितने उपाय से इसकी जेब काटी। खोपड़ी ठोंक लेता है--क्या किस्मत! किस मूरख के पीछे समय गंवाया!
एक चोर मुल्ला नसरुद्दीन के घर में घुसा। आधी रात, अंधेरे में। जैसे
ही वह उसके घर के भीतर गया, अकेला नसरुद्दीन बिस्तर पर सोया था। वह तो भीतर गया नसरुद्दीन भी चुपचाप उठा और जाकर उसके कंधे पर हाथ रख कर बोला कि भाई साहब, घबड़ाओ न। मैं जरा मोमबत्ती जला लूं!
चोर बहुत घबड़ाया। उसने कहाः मोमबत्ती किसलिए जलाते हो?
नसरुद्दीन ने कहाः तुम बिल्कुल चिंता न करो। मैं तीस साल से इस घर में रहता हूं, खोज-खोज मर गया, कुछ नहीं मिला; हो सकता है तुम्हारे भाग्य से कुछ मिल जाए। आधा-आधा कर लेंगे।
अब उस दिन जरूर इस चोर ने अपना सिर पीट लिया होगा कि कहां फंस गए! यह और कुछ झटक न ले!
ऐसी ही एक कहानी और है कि एक रात दूसरा चोर उसके घर में घुसा! कुछ नहीं मिला। लेकिन नसरुद्दीन कंबल ओढ़े पड़ा था, जब अंदर गया चोर। जब बाहर आया तो उसने कंबल फर्श पर डाल दिया था। चोर ने कहा, चलो कुछ नहीं तो दूसरे घर से जो सामान चुरा कर लाया था वह उसने कंबल में बांध लिया और चल पड़ा। नसरुद्दीन उसके पीछे हो लिया। उसके पैरों की आवाज सुन कर थोड़ी देर बाद उस चोर ने कहाः आप कौन हैं, मेरे पीछे क्यों आ रहे हैं?
उसने कहाः भई, मैं कोई भी नहीं; दुश्मन नहीं, दोस्त हूं। अपना वाला समझो। अभी-अभी तुम जिसके घर से आ रहे हो, वही हूं। उसी घर का मालिक हूं। तुम किसलिए आ रहे हो? चोर घबड़ाया।

कहाः मैं इसलिए आ रहा हूं, मैं मकान बदलने की बहुत दिन से सोच रहा था।
अब यह एक ही कंबल था, तुम वह ले चले, तो मैंने सोचा चलो मकान ही बदल लो। अब तुम्हारे साथ ही मैं भी चल रहा हूं। जहां कंबल रहेगा वहीं हम भी रहेंगे। चोर तो बहुत घबड़ाया। उसने कहाः भैया तू अपना कंबल ले जा।
नसरुद्दीन ने कहाः अरे क्या बात है जी? मैं आ रहा हूं साथ। साथ ही साथ रहेंगे। यहीं कौन से सुख भोग रहा हूं? सो जो दुख यहां भोग रहा हूं, वहां भोगूंगा। और तुम कमा कर लाओगे, करोगे तो कुछ न कुछ, भोजन वगैरह का भी इंतजाम रहेगा ही।
चोर तोइतना घबड़ाया। उसने कहाः तू अपना कंबल सम्हाल। उसने कंबल तो सम्हाला ही सम्हाला। चोर ने कहाः कम से कम वह सामान तो निकाल लेने दे भैया, जो दूसरे के घर का है। वह उसका सामान भी ले चला जो दूसरे के घर का था। नसरुद्दीन ने कहाः अगर ज्यादा तीन-पांच की तो वह शोरगुल मचाऊंगा कि छठी का दूध याद आ जाएगा।
चोर बोलाः जा भैया, ले जा। जो तुझे करना हो कर।
कभी ऐसी हालतों में जरूर दिक्कत हो जाती है, कठिनाई हो जाती है। नहीं
तो चोरों की अपनी एक भाषा है!
एक महिला दूसरी महिला से कह रही थी कि बहन, जब मैं बोलते-बोलते थक जाती हूं, तब मेरे पति सेठ चंदूलाल को रेडियो सुनने बैठा देती हूं, ताकि उनकी सुनने की आदत बनी रहे।
न्यायाधीश ने पूछाः आप मियां-बीबी के झगड़े को देखते हुए मेरी आपको यही सलाह है कि आप अपने पति को तलाक दे दीजिए।
पत्नी ने कहाः यह क्या कह रहे हैं आप? मैं और तलाक! मैं इसके बारे में कभी सोच भी नहीं सकती। साहब, आपको मालूम है मैंने अपने पति के साथ पच्चीस वर्ष बिताए हैं और अब आप यह चाहते हैं कि यह कमबख्त मेरे बिना सुख-चैन और आराम से जीए! हरगिज नहीं!
लोग सुन भी लें तो भी समझ कहां पाते हैं! समझेंगे तो वही जो वे समझ सकते हैं। शब्द सुन लेंगे, लेकिन अर्थ कहां से आएंगे। चिल्लाते रहे पलटू--"बहुरि न ऐसा दांव!" फिर नहीं ऐसा दांव है। मत चूको। "नहीं फिर मानुष होना। क्या ताकै तू ठाढ़।" लेकिन कितने लोग हैं जिनका कुल धंधा इतना ही है तमाशबीनी! जिनका कुल काम इतना है कुतूहल! जिनके जीवन में कुतूहल से गहरी कभी कोई चीज नहीं होती। जिज्ञासा भी नहीं, मुमुक्षा की तो बात ही मत पूछो। ये तीन तल हैं--कुतूहल, जिज्ञासा, मुमुक्षा। दुनिया में सौ में से निन्यानबे प्रतिशत लोग कुतूहल से जीते हैं। रास्ते पर झगड़ा हो रहा है, फौरन भीड़ लग जाएगी। तुम किसलिए वहां खड़े हो? तुम वहां क्या कर रहे हो? दो आदमी लड़ रहे हैं, लड़ने दो। अगर कोई खड़ा न हो तोशायद वे लड़ें भी नहीं। मजा ही क्या आएगा लड़ने का, कोई देखने वाला तक नहीं! कौन हारा, कौन जीता; कौन पिटा, कौन कुटा--कुछ पता भी नहीं चलेगा। थोड़ा शोरगुल करके देख कर कोई नहीं आता, अपने आप चले जाएंगे। लेकिन भीड़ खड़ी है और भीड़ बड़ी उत्सुकता से देख रही है कि अब हुआ कुछ, अब हुआ कुछ, अब होता ही है कुछ, मुफ्त का तमाशा कौन नहीं देखना चाहता! दुख तो तब होता है जब कुछ नहीं होता, कि दोनों चले जाते हैं बिना लड़ाई-झगड़ा किए।
लुई फिशर ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि मैं जब पहली दफा चीन गया,
तो मैंने चीन के एक गांव में एक अजीब तमाशा देखा। स्टेशन पर उतरा, दो आदमियों में बड़ी तीन-पांच हो रही थी, बड़ी गाली-गलौज हो रही थी। ऐसा कि दौड़-दौड़ पड़ते थे एक-दूसरे के ऊपर कि अब गर्दन दबा देंगे, कि खोपड़ी खोल देंगे, लट्ठ उठ गए। और भीड़ खड़ी देख रही। यह इतनी देर चलता रहा कि लुई फिशर ने अपने दुभाषिए से पूछा कि माजरा क्या है, यह झगड़ा शुरू कब होगा? शोरगुल तो बड़ा मच रहा है, चिल्ल-पों तो बड़ी जोर से हो रही है, डंडा भी उठ जाता है, डंडा घूम भी जाता है; मगर न तो कोई किसी को मारता, न कोई किसी को चोट पहुंचाता। उस दुभाषिए ने कहा कि आपको मालूम नहीं है यहां का रिवाज। चीनी रिवाज यह है कि जो आदमी पहले मारेगा, वह हार गया। मतलब उसने अपना धैर्य खो दिया। सो ये एक-दूसरे को उकसा रहे हैं और भीड़ खड़ी यह देख रही है कि कौन हारता है। हारने का मतलब चीन में बिल्कुल उलटा। हारने का मतलब यह कि कौन पहले अपना धीरज खोता

है। जैसे ही एक आदमी अपना धीरज खो देगा और दूसरे को मार बैठेगा, लोग कहेंगेः "गया काम से।" बस भीड़ छंट जाएगी कि हार गया।
मगर कुछ भी हो, चीन हो कि भारत हो, रिवाज कुछ भी हो, भीड़ इसलिए खड़ी होती
है कि देख लें और जब कभी कुछ नहीं होता तो लोग इस उदासी में जाते हैं कि अरे बेकार समय गंवाया, नाहक खड़े रहे, कुछ भी न हुआ! हो जाते दो-दो हाथ, खिंच जाते लट्ठ, थोड़ा जिंदगी में मजा आ जाता! खून में थोड़ी गति आ जाती। थोड़ी हृदय में धड़कन आ जाती। थोड़ा मुर्दापन कम हो जाता। कुतूहल, सिर्फ कुतूहल। यहां भी लोग आ जाते हैं बहुत कुतूहल से कि क्या हो रहा है, क्या माजरा है, क्या मामला है? कुछ लोग, निन्यानबे प्रतिशत है उनकी संख्या, कुतूहल से जीते हैं। ऐसे व्यक्तियों को तो पलटू की बात समझ में नहीं आएगी। दांव वगैरह उन्हें लगाना नहीं।
तुमने देखा, कहीं लोग शतरंज खेल रहे हों, चार आदमी शतरंज खेलते हैं और दस-पंद्रह का घेरा खड़े होकर देखता है। शतरंज के नकली घोड़ा-हाथी, शतरंज सब नकली खेल है, राजा, वजीर सब नकली हैं। खेल कोई और रहा है और ये दस-पंद्रह आदमी अपना हजार काम छोड़ कर खड़े हैं, देख रहे हैं कि क्या हो रहा है!
एक आदमी मछली मार रहा था। तीन घंटे से मुल्ला नसरुद्दीन उसके पीछे खड़ा देख रहा था। आखिर मुल्ला उससे बोला कि तीन घंटे खराब किए, तुमने एक मछली न पकड़ी। उसने कहाः भैया, मैंने मछली पकड़ी या नहीं पकड़ी, तुम क्या कर रहे हो यहां? तीन घंटे मेरे खराब गए, मैंने मछली नहीं पकड़ी। और तुम सिर्फ मुझको देख रहे हो! तुम घर क्यों नहीं जाते?
नसरुद्दीन ने कहा कि मैं इस कुतूहल में खड़ा हूं कि देखूं यह आदमी पकड़ पाता है कि नहीं! अब यह पकड़ भी लेगा तो तुम्हें क्या सार है? और नहीं भी पकड़ा तो तुम्हारा क्या बिगड़ता है? मगर उस आदमी को दोष दे रहा है कि तीन घंटे तेरे बेकार गए, एक मछली नहीं पकड़ी। और तीन घंटे से खुद खड़ा देख रहा है। अपने तीन घंटे बेकार गए, इसकी उसको फिकर नहीं है।
दुनिया में तमाशबीनी बढ़ती चली गई। इतनी बढ़ गई है कि अब हर चीज में तमाशबीनी है। तुम प्रेम नहीं करते; जब प्रेम वगैरह का ख्याल उठता है, फिल्म देख आए। अरे जब दूसरे पेशेवर प्रेम करने वाले मौजूद हैं, जो तुमसे अच्छे ढंग से कर सकते हैं, क्या-क्या लहजे से करते हैं, तो तुम काहे को मेहनत करो अलग से! फिल्म ही देख आए, मामला खत्म हो गया। कुश्ती लड़नी है, क्या अपने हाथ से लड़नी, क्यों डंड-बैठक लगाना सालों, और मुसीबत करो और पसीना झेलो और परेशानी उठाओ। अरे नागपंचमी के दिन लड़ने वाले लड़ेंगे, तुम जाकर देख आना!
तुमको पूजा भी करनी तो तुम खुद नहीं करते। पुजारी पूजा करता है, तुम देख लेते हो। तुम्हें कुछ नहीं करना। तुम सिर्फ तमाशबीन हो। रेडियो सुन लेते हो, टेलीविजन देख लेते हो। लोगों का कुल धंधा इतना है कि दूसरे करें और वे देखते रहें। हर चीज में पेशेवर करने वाले हैं। और बाकी लोगों का काम सिर्फ देखना है। जैसे तुम इसीलिए पैदा हुए हो--तमाशबीनी के लिए।
जिंदगी में कुछ और गहरी खोज भी करो। कुतूहल को जिज्ञासा बनाओ। लेकिन जिज्ञासा बनते ही खतरा शुरू होता है। उसका मतलब, तुम्हें थोड़ा गहरे उतरना पड़ेगा, किनारे से नीचे उतरना पड़ेगा, पानी में उतरना पड़ेगा। कम से कम पैर भिगाने पड़ेंगे, कपड़े भी भीग सकते हैं।
और जो जिज्ञासा करेगा, वह आज नहीं कल मुमुक्षा भी करेगा। जिज्ञासा का अर्थ हैः मैं सत्य को जानूं। और मुमुक्षा का अर्थ हैः मैं सत्य हो जाऊं। क्योंकि जो जानने चलेगा, उसे एक दिन पता चलता है कि बिना हुए जाना ही नहीं जा सकता। जिज्ञासु को यह पता चलना शुरू हो जाता है धीरे-धीरे कि यह मामला तो होने का है, सिर्फ जानने का नहीं है। प्रेम को जानना है, प्रेम हो जाओ। और सत्य को जानना है, सत्य हो जाओ। ईश्वर को जानना है, ईश्वर हो जाओ। इसके सिवा कोई जानने का उपाय नहीं।
मुमुक्षा तक तो कभी कोई लाख में एक आदमी पहुंचता है। जो मुमुक्षा तक पहुंचता है उसी के लिए पलटू के वचन समझ में आएंगे। या कम से कम जो जिज्ञासा तक पहुंचा हो, उसे थोड़ी सी पलटू की झलक मिलेगी।
बहुरि न ऐसा दांव, नहीं फिर मानुष होना।

क्या ताकै तू ठाढ़, हाथ से जाता सोना।।
जीवन कितना बहुमूल्य है! हाथ से सोना निकला जा रहा है और तुम खड़े देख रहे हो। बहुत देख चुके, अब कुछ जीओ, अनुभव करो। लोग रामायण पढ़ रहे हैं और रामलीला देख रहे हैं। राम कब बनोगे? कृष्णलीला देख रहे हैं। कृष्ण कब बनोगे? बुद्ध की मूर्ति की पूजा कर रहे हैं, बुद्ध नहीं होना? बुद्धू ही रहना है?
क्या ताकै तू ठाढ़, हाथ से जाता सोना।
यह जीवन का एक-एक क्षण बहुमूल्य है, क्योंकि इस एक-एक क्षण में तुम्हारे जीवन में क्रांति घट सकती है, तुम्हारे भीतर बुद्धत्व का अवतरण हो सकता है। तुम्हारे भीतर वही फूल खिल सकते हैं, जो बुद्ध की चेतना में खिले। वही बांसुरी तुमसे बज सकती है, जो कृष्ण के ओंठों पर बजी। वही घूंघर तुम्हारे पैरों में रुनझुन कर सकते हैं, जो मीरा के पैरों में बंधे। जहां इतना अभूतपूर्व कुछ हो सकता है, वहां तुम क्या कर रहे हो? ठीकरे जोड़ रहे हो! व्यर्थ के कचरे में उलझे हुए हो! राख छान रहे हो! जहां जीवन ज्योति बन सकता है--ऐसी ज्योति जो कभी न बुझे; ऐसी ज्योति कि जिस ज्योति से औरों की ज्योति भी जल जाए--वहां तुम क्या कर रहे हो?
पलटू का वचन प्यारा है--
बहुरि न ऐसा दांव, नहीं फिर मानुष होना।
क्या ताकै तू ठाढ़, हाथ से जाता सोना।।
लेकिन लोग मूर्च्छित हैं। लोग यूं जीए जा रहे हैं कि उन्हें होश ही नहीं है।
चंदूलाल ने अपनी पत्नी से कहाः अरी सुनती हो, आज तो मैं अपना छाता ले जाना ही भूल गया था।
पत्नी ने पूछाः आपको कब पता चला?
चंदूलाल ने सिर खुजाते हुए कहाः अरे वह तो जब बारिश रुक गई और छाता बंद करने के लिए मैंने अपना हाथ ऊपर उठाया, तब पता चला कि छाता तो है ही नहीं।
तुम अपनी जिंदगी में ऐसे हजार मौके पाओगे, जब छाता नहीं है इसका पता
ही तब चलता है जब छाता बंद करने लिए हाथ उठाते हो। नहीं तो चले जा रहे हो, जैसे शराब पी रखी हो। होश में नहीं हो। होश में आओ!
बहुरि न ऐसा दांव, हाथ से जाता सोना।

दूसरा प्रश्नः ओशो, साधु-महात्माओं व मुनि-महाराजों को आप गधों की उपाधि से विभूषित क्यों करते हैं? गधा शब्द से आपका क्या तात्पर्य है? समझाने की कृपा करें।

प्रश्नकर्ता ने अपना नाम नहीं लिखा है। पता नहीं किस गधे ने यह प्रश्न पूछा है। मालूम पड़ता है जरूर कोई गधा नाराज हो गया है। नाराज होना भी चाहिए, क्योंकि गधे इतने गए-बीते नहीं। मुझसे भूल तो हो गई।
गधे तो बड़े शालीन होते हैं। गधों का मौन देखो। यूं कभी-कभी रेंक देते हैं, मगर रेंकने में भी बड़ी अटपटी वाणी है, जिसको सधुक्कड़ी भाषा कहते हैं, कि कोई समझने वाला ही समझे तो समझे। कुछ ऐसी गहरी पते की बात कहते हैं कि जोशब्दों में आती ही नहीं; शास्त्र जिसको कह-कह कर थक गए... । ऐसा कभी-कभी। नहीं तो यूं मौन रहते हैं।
और गधों के चेहरे देखो--कैसे उदासीन, कैसे विरक्त! न कोई लाग, न कोई लगाव। अनासक्त भाव से चले जा रहे हैं। और कुछ भी बोझा लाद दो--कुरान लाद दो, गीता लाद दो, वेद लाद दो--कोई किसी तरह की धार्मिक मतांधता नहीं। कुरान लादोतो ठीक, वेद लादो तो ठीक, गीता रख दो तो ठीक, ऐसा सर्व-धर्म-समन्वय... अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान! कुछ भेद-भाव नहीं करते, अद्वैतवादी हैं।
और गधे इतने गधे नहीं होते जितना कि आमतौर से लोग सोचते हैं। पता नहीं क्यों गधे बदनाम हो गए! कैसे बदनाम हो गए!

मुझे बचपन से ही गधों में रुचि रही। मेरे गांव में बहुत गधे थे--सभी जगह होते हैं। अब गधों की कहां कमी है? घोड़े तो मेरे गांव में बहुत कम थे; बस जितने तांगे थे, थोड़े से... । और वे बिल्कुल मरियल घोड़े, गरीब गांव, गरीब तांगे, उनके गरीब घोड़े। किसी के ऊपर घाव बन गए हैं, हड्डी-हड्डी हो रहे हैं। खच्चर तो बिल्कुल ही नहीं थे, क्योंकि खच्चर तो पहाड़ी इलाकों में काम आते हैं। वह कोई पहाड़ी इलाका न था। मगर गधे काफी थे। अच्छे मस्त गधे थे! और मुझे बचपन से ही गधों पर चढ़ने की धुन थी। शाम हुई कि मैं गधों की तलाश में निकला। और तभी मुझे पता चला कि गधे इतने गधे नहीं, जितना लोग समझते हैं। गधे मुझे पहचानने लगे। मुझे दूर से ही देख कर एकदम रेंकने लगते, भागने लगते। मैं भी चकित हुआ। मैं पहले यही सोचता था कि गधे सच में गधे होते हैं। रात के अंधेरे में, जैसे मेरी बास भी उन्हें समझ में आने लगी। मैं कितना ही धीमे-धीमे उनके पास जाऊं... । दूसरे लोग निकल जाएं उनके बगल से, वे बराबर खड़े रहें। मैं उनके पास गया नहीं कि वे भागे। तब मुझे पता चला कि इतने गधे नहीं हैं। बड़े पहुंचे हुए सिद्ध हैं! अपनी मतलब की बात पहचान लेते थे, अब बाकी ऐरे-गैरे-नत्थू-खैरे निकल रहे हैं तो निकलने दो। इनसे क्या लेना-देना? जैसे ही उनको दिखा कि यह आ रहा है खतरनाक आदमी और उन्होंने रेंकना शुरू किया।
इसलिए मैंने कहा कि अभी गुजरात के गधों की मैं जनगणना कर रहा हूं। अब मेरे हाथ तो एक सूत्र लग गया। अब मैं सारे भारत के गधों की जनगणना कर लूंगा यहीं बैठे-बैठे, न कहीं गए, न कहीं उठे। जब गुजरात के सब गधे रेंक चुके होंगे, तब मैं जाऊंगा कटक। फिर उड़ीसा के गधों की रेंक शुरू होगी। फिर चले कलकत्ता। अपना बिगड़ता क्या है? फिर बंगाली गधों की जांच-पड़ताल कर लेंगे। जितने भी गधा बाबू होंगे उनका पता लगा लेंगे। फिर चले बिहार। अरे न कहीं आना, न जाना! मगर यूं बैठे-बैठे गधों की जनगणना तो हो ही जाएगी। अपने आप गधे बोल देंगे। यह बचपन से मेरा उनसे नाता है। वे मुझे देख कर एकदम छड़कते हैं, एकदम भागते हैं।
तो गधे इतने तो गधे नहीं होते। इसलिए एक लिहाज से तो ठीक ही है। जिस गधे ने भी यह पूछा है, उससे मैं माफी मांगता हूं कि मुझे साधु-संतों को, मुनि-महात्माओं को गधा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि गधों ने बेचारों ने किसी का कभी कुछ नहीं बिगाड़ा। गधे बिल्कुल निर्दोष हैं। इनके ऊपर कोई हिंदू- मुसलमान दंगे-फसाद का, मस्जिद-मंदिर को जलाने का कोई आरोप नहीं कर सकता। मगर गधा शब्द का मेरा अर्थ भी समझ लो। उससे तुम्हें आसानी होगी। कम से
कम मेरे संन्यासियों को आसानी होगी; कोई गधा पूछ ही बैठे तो तुमको आसानी रहेगी। कोई गधा पूछ बैठे तो उसको कहना कि हे गधाराम जी... । राम तो लगा ही देना पीछे। राम लगाने से बड़ी बचत हो जाती है। जैसे ही किसी के नाम के पीछे राम लगा दो वह चित्त प्रसन्न हो जाता है उसका। तो कहनाः हे गधाराम जी, आपको नाराज वगैरह होने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि मेरा जो गधा शब्द का प्रयोग है, वह तोशार्ट फार्म है। ग अर्थात गंभीर और धा अर्थात धार्मिक। जो बहुत गंभीर रूप से धार्मिक है, उसको मैं गधा कहता हूं।
और गधों को बिगाड़ना मेरा धंधा है। धा को तो रहने देता हूं, ग को मिटाता हूं। गंभीरता मिटानी है। मस्ती लानी है। नृत्य लाना है। धार्मिकता तो अच्छी है। धा यानी मेधा, प्रतिभा। ग को मिटा देना है।
अगर कच्छ गए ही और गधे अपना नाम तो जाहिर किए ही दे रहे हैं, फिर इनका ग मिटाने की कोशिश करेंगे, ताकि सिर्फ धा बचे, धार्मिकता बचे, मेधा बचे। अपने से जो भी सेवा बन सकेगी, करेंगे।
इसलिए गधों से मेरी प्रार्थना है, नाराज न होना। जिसकी सूरत पर सदा बारह बजे रहते हों और जो धर्म की बकवास करता फिरे--भावार्थ पंडित-पुरोहित, साधु-महात्मा, संयमी-तपस्वी, मुनि-मौलवी, इत्यादि-इत्यादि। मेरा तात्पर्य कोई चौपाये गधे से नहीं था। उस बेचारे ने तो किसी का कुछ भी नहीं बिगाड़ा। ये जो दोपाये गधे हैं, इन्होंने मनुष्य-जाति का बहुत अहित किया है। इनसे छुटकारे की आवश्यकता है।

अंतिम प्रश्नः ओशो, इसे आप सामान्य अर्थों में स्तुति अथवा प्रशंसा न समझें। सच में ही यह मेरा भाव है कि आपकी अनुकंपा अपार है। जीवन में मैं पहली बार इस योग्य हुआ कि आपके निकट बैठ सकूं और सुन सकूं। आपने कहा कि मेरी आधी यात्रा पूरी हो गई है। सदगुरु साहिब, मेरी शेष आधी यात्रा को पूरा होने में क्या अब और आठ वर्ष लगेंगे?

संत महाराज! यह कहना कठिन है, क्योंकि तुमने पंजाबी ढंग की होशियारी की। अब जैसे "स्वभाव" हैं, वे भी पंजाबी हैं। सो हाथी तो निकल गया, पूंछ रह गई। पूंछ नहीं निकल रही है। संत तो हैं ही अंट-शंट, इसलिए तो मैंने उनको संत नाम दिया है। पहुंचे हुए अंट-शंट हैं। इन्होंने देखा कि कई पंजाबी फंस गए हैं; हाथी तो निकल जाता है, पूंछ अटक जाती है। सो इन्होंने पूंछ तो पहले निकाल दी, अब हाथी अटक गया है। अब पूंछ निकालने में आठ साल लगे, हाथी निकालने में कितने लगेंगे, यह मैं भी कैसे कहूं?
पर संत महाराज, तुम निकलने-विकलने की फिकर छोड़ो। निकलना-विकलना कहां है? जहां हैं, वहीं काबा, वहीं काशी, कहां निकलना? पूंछ को भी भीतर कर लो। वैसे ही बरसात हो रही है बाहर। "स्वभाव" वगैरह को भीगने दो, तुम तो पूंछ भी भीतर कर लो। तुम तो बिल्कुल फिकर ही छोड़ो। अरे जब मैं चल पडूंगा बैकुंठ तो मुझे कोई सवारी की जरूरत तो पड़ेगी ही। और वहां कोई रॉल्स रॉयस तो जा नहीं सकती। संत की ही सवारी करने वाला हूं!
आज इतना ही।

बहुरि न ऐसो दांव
दूसरा प्रवचन

विज्ञान और धर्म का समन्वय

पहला प्रश्नः ओशो, आप गांधीवादी विचारधारा के विरोधी और आधुनिक प्रविधि और यंत्र के समर्थक मालूम पड़ते हैं। लेकिन आपको मालूम है कि प्रविधि और यंत्र के कारण पश्चिम का जीवन कितना अशांत और तनावग्रस्त एवं क्षुब्ध हो चला है। वह सामूहिक विक्षिप्तता के कगार पर खड़ा है। तब क्यों आप उसका अंध-समर्थन करते हैं?

चिमनभाई देसाई! मैं विचारधाराओं मात्र का विरोधी हूं, गांधीवादी विचारधारा का ही नहीं। विचार के पार जाना है, तो किस वाद को मान कर तुम उलझे हो, इससे भेद नहीं पड़ता। किस झाड़ी के कांटों में उलझे हो, इससे मुझे बहुत प्रयोजन नहीं है। कांटों से मुक्त होना है। और समस्त विचार कांटों से ज्यादा नहीं हैं; उलझा सकते हैं, सुलझा नहीं सकते।
चूंकि मैं विचारधाराओं मात्र का विरोधी हूं, इसलिए स्वभावतः गांधीवादी विचार की झाड़ी भी उसमें एक झाड़ी है। और चूंकि नई है, इसलिए बहुत लोगों को उलझा लेती है। विशेषकर भारतीय मन के लिए उसमें बड़ा आकर्षण है। वह आकर्षण रुग्ण है। उस आकर्षण के आंतरिक और अचेतन कारण बहुत हैरान करने वाले हैं। पहला तो कारण यह है कि गांधीवादी विचारधारा दरिद्र को गौरीशंकर पर बिठा देती है। उससे हमारी आत्महीनता की भावना को बड़ा सहारा मिलता है। हमारे घाव फूलों से ढंक जाते हैं। हम दरिद्र हैं और यह बात कचोटती है। और गांधीवादी विचारधारा हमें दरिद्रनारायण बना देती है--शब्दों में ही! सब जाल शब्दों का है। दरिद्र को दरिद्रनारायण कह देने से कुछ भेद नहीं पड़ता। कैंसर को कैंसरनारायण कह देने से क्या भेद पड़ेगा?
पुराने आयुर्वेदिक शास्त्रों में ट्यूबरक्यूलोसिस को राजरोग कहा है। इससे क्या कुछ मजा आ जाएगा कि टी.बी. हो गई--राजरोग हो गया! चलो इस बहाने सही, राजा हो गए! टी.बी. तो फिर भी मारेगी। राजरोग कह देने से कुछ बचाव नहीं है। लेकिन फिर भी मन सांत्वनाएं खोजता है। और ये सांत्वनाएं सदियों तक भटकाए रख सकती हैं, भरमाए रख सकती हैं।
दरिद्रता महारोग है। और दरिद्र को नारायण कहना उसके महारोग को ओट देना है। दरिद्रता मिटनी चाहिए, दरिद्र मिटने चाहिए। और दरिद्रता के मिटाने के लिए अब एक ही उपाय है--वह वैज्ञानिक तकनीकों का अधिकतम उपयोग है।
मैं वैज्ञानिक तकनीकों का समर्थन जो कर रहा हूं, वह इसीलिए कि तुम्हारे घाव सिवाय उसके और किसी तरह भरेंगे नहीं। छिप सकते हैं। छिपे हुए घाव उघड़े घावों से ज्यादा खतरनाक हो जाते हैं, क्योंकि तुम उन्हें भूलने लगते हो और भीतर ही भीतर उनकी मवाद फैलने लगती है। जो छोटी सी फुंसी थी, वह भी अगर छिपा ली जाए तो नासूर हो सकती है। और अगर उसकी चिकित्सा की ही न जाए, तो कैंसर भी बन सकती है।
भारत का रोग बहुत पुराना हो गया है। भारत सदियों से दरिद्र है। उन दिनों भी भारत दरिद्र था, जब सारी दुनिया उसे सोने की चिड़िया कहती थी। था सोने की चिड़िया कुछ थोड़े से लोगों के लिए, सो उन कुछ थोड़े से लोगों के लिए अब भी सोने की चिड़िया है। दरिद्रता की एक अनिवार्य प्रक्रिया है। सौ लोगों में से निन्यानबे लोग जब दरिद्र होते हैं तो एक व्यक्ति के हाथ में सोने की चिड़िया लग जाती है। स्वभावतः निन्यानबे व्यक्तियों की दरिद्रता, उनके गड्ढे, एक व्यक्ति के जीवन को धन के शिखर पर बिठा देते हैं। तो जरूर राजा थे, महाराजा थे, नगरसेठ थे, और उनके लिए जीवन सोने की चिड़िया था। इतिहास और पुराण उनकी ही स्तुति गाते हैं। और इससे एक भ्रांति पैदा होती है जैसे कि सारा देश अमीर था। यह बात बिल्कुल ही झूठ है। यह देश कभी भी देश की तरह अमीर नहीं रहा। एक छोटा सा वर्ग इस सारे देश का शोषण करके छाती पर बैठा रहा है।

राम-राज्य लाना चाहते थे महात्मा गांधी। लेकिन राम-राज्य की अगर पूरी अंतर-व्यवस्था हम समझें तो बिल्कुल सड़ी-गली थी, रुग्ण थी। राम-राज्य में आदमी बाजारों में बिकते थे--गुलामों की तरह। और क्या होगी दरिद्रता, जहां आदमी बिकने को मजबूर होते हों? ऐसी दरिद्रता तो आज भी नहीं है। कौन बिकने को राजी है? बाजार में जैसे ढोरों के बाजार भरते हैं, मवेशियों के बाजार भरते हैं, और बोली लगती है--ऐसे आदमियों के बाजार भरते थे, जहां आदमी बिकते थे। आदमी तो कम, औरतें ज्यादा बिकती थीं। साधु-संतों का देश है! सती- साध्वियों का देश है! सीता, पार्वती, द्रौपदी का देश है! स्त्रियां बाजारों में यूं बिकती थीं जैसे सामान बिकता है। बोली लगती थी। इस राम-राज्य को भारत में गांधी फिर लाना चाहते थे! निश्चित, मैं विरोध में हूं। अतीत में लौटने की कोई भी आवश्यकता नहीं। और कोई लौटना भी चाहे तो नहीं लौट सकता है। समय में पीछे जाया ही नहीं जा सकता। समय की घड़ी को पीछे की तरफ घुमाया ही नहीं जा सकता! लेकिन पीछे की सुंदर-सुंदर कहानियां गढ़ी जा सकती हैं, सपने संजोए जा सकते हैं, लोगों को भरमाया जा सकता है।
कार्ल मार्क्स ने कहा हैः धर्म अफीम का नशा है। वह तो महात्मा गांधी
के पहले उसने कहा था। अगर वह महात्मा गांधी के बाद पैदा होता तो महात्मा गांधी को एक प्रमाण की तरह उपस्थित करता कि यह देखो धर्म अफीम का नशा है! पूरा देश गरीब है, और अफीम पिलाई जा रही है--दरिद्रनारायण की! पूरा देश सदियों से गरीब है और राम-राज्य की झूठी, काल्पनिक कहानियां गढ़ी जा रही हैं। और यह हवा फैलाई जा रही है कि राम-राज्य फिर आना चाहिए।
बुद्ध के समय में भारत की कुल आबादी दो करोड़ थी। आज भारत की आबादी सत्तर करोड़ के करीब पहुंच रही है। इस भारत में से बंगलादेश अलग हो गया, पाकिस्तान अलग हो गया, ब्रह्मदेश अलग हो गया। अगर उन तीनों को भी जोड़ लें तो इस देश की आबादी अब एक अरब के ऊपर जा चुकी है। कहां दो करोड़ और कहां एक अरब! पचास गुनी आबादी हो गई। और तुम चरखों की बातें करते हो? होश की कुछ बात करो! चरखे चला कर तुम एक अरब लोगों के तन ढंक सकोगे? तो तन ढंक लेना, पेट खाली रह जाएगा। पेट भरोगे, तो तन नंगा रह जाएगा। और तुम इन एक अरब लोगों के लिए हल-बक्खर से खेती करोगे? जमीन कहां है इतनी? और हल-बक्खर से खेती कितनी हो सकती है? और क्या पैदा हो सकता है?
नई प्रविधियों का उपयोग करना होगा, और ऐसी क्या घबड़ाहट है नई प्रविधि से? रूस में ऐसे मौके आए हैं पिछले वर्षों में जब इतना गेहूं पैदा हो गया कि उन्हें गेहूं को रेल के इंजनों में कोयले की तरह जलाना पड़ा, क्योंकि कोयला महंगा और गेहूं सस्ता। अमरीका और कनाडा इतना उत्पादन कर लेते हैं कि सारी दुनिया को सहायता देने को तत्पर होते हैं। इतना दूध इकट्ठा कर लेते हैं कि सारी दुनिया को दूध का पाउडर बांटते रहते हैं। और तुम्हारी गऊ-माताओं की हालत देखो! उनसे दूध निचोड़ना भी पाप मालूम पड़ता है। हड्डी- हड्डी हो रही हैं। तुम खून निचोड़ रहे हो। उनके प्राण सूखे जा रहे हैं-- अस्थि-पंजर! और कितनी गऊ-माताएं हैं! जितनी भारत में हैं, उतनी कहीं भी नहीं--अठारह करोड़! और दूध के नाम पर पानी पी रहे हो। और फिर भी वही मूर्खतापूर्ण बातों को दोहराए चले जाते हो।
महात्मा गांधी न तो कोई बड़े विचारक थे और न ही कोई बड़ी विचारधारा छोड़
गए हैं। बहुत साधारण सी बातें हैं जिसको गांधीवादी विचारधारा के नाम से तुम शोरगुल मचाते हो। मगर अंधे के हाथ में तो कुछ भी लग जाए तो लगता है बहुत बड़ी चीज लग गई। सोच-विचार की क्षमता भी तुमने खो दी है। मैं तो तुम्हें सोच-विचार के पार ले जाना चाहता हूं, तुम सोच-विचार से भी नीचे गिरे जा रहे हो।
थोड़ा सोचो तो सही, महात्मा गांधी रेलगाड़ी के विरोध में थे और जिंदगी
भर रेलगाड़ी में चले! तार, टेलीफोन के खिलाफ थे, पोस्ट-आफिस के खिलाफ थे। और जिंदगी भर जितने तार, टेलीग्राम और चिट्ठी-पत्री उन्होंने लिखी, शायद ही किसी ने लिखी हो। पाखाने में बैठे-बैठे भी चिट्ठी लिखवाते थे। संडास पर बैठे हैं और सेक्रेटरी पाखाने के बाहर बैठा है। वे बोलते जा रहे हैं और सेक्रेटरी चिट्ठी लिख रहा है।

तुम किस दुनिया की बातें कर रहे हो? बिजली न हो आज, रेलगाड़ी न हो आज, हवाई जहाज न हो, कार न हो, टेलीग्राफ न हो, टेलीफोन न हो, रेडियो न हो--तो तुम एक आदिम अंधकार में गिर जाओगे। चलाते रहना अपनी तकली और चरखा। और चरखा चलाने वालों की हालत तो देखो; चक्रम हो जाते हैं! और जो बहुत ज्यादा चलाते हैं, वे तो घनचक्कर हो जाते हैं। अब जैसे मोरारजी देसाई को देखो! चरखा चलाते-चलाते ऐसे घनचक्कर हो गए कि स्वमूत्र पीने लगे। ये महागांधीवादी विचारक हैं।
तुम पूछते होः "आप गांधीवादी विचारधारा के विरोधी और आधुनिक प्रविधि
और यंत्र के समर्थक मालूम पड़ते हैं।"
निश्चित ही मैं विज्ञान का समर्थक हूं। समग्ररूपेण मेरा विज्ञान को समर्थन है, बेशर्त समर्पण है और समर्थन है। क्योंकि मुझे सिर्फ एक ही आशा दिखाई पड़ती है अब मनुष्य को बचने की--और वह विज्ञान है।
लेकिन इस देश के मूढ़ एक से एक बातें खोज लेते हैं। और वे यह भी नहीं देखते कि उनके तर्क कितने भ्रांत हैं!
तुम कहते हो कि "लेकिन आपको मालूम है कि प्रविधि और यंत्र के कारण पश्चिम का जीवन कितना अशांत, तनावग्रस्त और क्षुब्ध हो चला है।"
वह प्रविधि और यंत्र के कारण नहीं है। उसका कारण हैः धर्म का अभाव, ध्यान का अभाव।
ये गांधीवादी, ये मूर्खता फैला रहे हैं इस देश में। और गांधीवादी ही नहीं, इस देश में और भी विज्ञान-विरोधी लोग हैं। और उनके वैज्ञानिक विरोध का एकमात्र कारण है कि अगर विज्ञान सही है, तो हमारे पांच हजार वर्षों के सारे ऋषि-मुनि थोथे सिद्ध होते हैं। उन्होंने हमें विज्ञान से वंचित रखा। उन्होंने संसार को माया कह कर हमें संसार को समझने का मौका नहीं दिया। उसमें तुम्हारे अवतार, तीर्थंकर और तुम्हारे शंकराचार्य सब फसेंगे उस जाल में। क्योंकि उन सबका ही जिम्मा है, जिन्होंने भी कहा यह संसार माया है। कहते ही रहे माया, फिर चाहे वे महावीर हों, और चाहे बुद्ध हों, और चाहे शंकराचार्य हों। माया कहते ही रहे, लेकिन भोजन तो मांगने जाना ही पड़ता था। अब संसार ही माया है तो क्या भिक्षा मांगते हो? बुद्ध ने सब तो छोड़ दिया था, लेकिन भिक्षापात्र तो रखते थे। अब क्या भिक्षापात्र रखते हो जब संसार माया ही है, तो किससे मांगना, क्या मांगना, क्या जरूरत?
बुद्ध के साथ निरंतर "जीवक" नाम का उस समय का सर्वाधिक प्रसिद्ध चिकित्सक चलता था। वह एक सम्राट ने--बिंबिसार ने--बुद्ध को भेंट किया था। वह सम्राट का निजी चिकित्सक था। जब संसार माया है--तो क्या दवा, क्या औषधि? और जब संसार माया ही है, तो किसको समझा रहे हो? यह भी बड़े मजे की बात है! शंकराचार्य से अगर मेरा कहीं मिलना हो जाए, तो पहली बात तो मैं उनसे यह पूछूं कि जब सब झूठ ही है, तो तुम क्यों सिर पचा रहे हो झूठ के साथ!
अगर तुम यहां हो ही नहीं, तो मेरा बोलना पागलपन होगा। तुम हो तो मेरे बोलने में कोई सार्थकता है। तुम नहीं हो, तो मैं विक्षिप्त हूं; कोई नहीं है और बोल रहा हूं! संसार है ही नहीं, तो संसार में लोग कहां? सब माया है, तो तुम किसको समझा रहे हो? रस्सी ही है, सांप दिखाई पड़ रहा है। मगर शंकराचार्य पीट रहे हैं रस्सी को डंडों से, और फिर भी कहते हैंः अरे रस्सी है, सांप थोड़े ही! फिर डंडे से पीट किसलिए रहे हो? जिंदगी भर माया के खंडन में लगे हैं! जो है ही नहीं, उसका खंडन करना पड़ता है? कोई गधे के सींग नहीं हैं, यह सिद्ध करने के लिए शास्त्र लिखता है? गधे भी नहीं लिखते कि गधे के सींग सब माया है। आकाशकुसुम नहीं है, इसको सिद्ध करने के लिए कोई तर्क, विवाद खड़ा करना पड़ता है?
लेकिन शंकराचार्य पूरे जीवन एक ही बात सिद्ध करने में लगे रहे कि जगत माया है। और उनके बाद इन हजार सालों में तथाकथित शंकर के अद्वैत को मानने वाले, दंडीधारी, साधु-महात्मा बस एक ही काम कर रहे हैं कि संसार माया है। इसका परिणाम यह हुआ कि हम संसार को समझने से वंचित रह गए। जो है ही नहीं, उसको समझना क्या? उसके रहस्यों को क्या समझना? इसलिए विज्ञान से वंचित हुए। अब विज्ञान से वंचित हो गए हैं तो अब एक ही सहारा खोजा है कि अरे विज्ञान में कोई सार नहीं! अंगूर खट्टे हैं!

"और देखते नहीं पश्चिम में क्या हालत हो रही है कि विज्ञान के कारण ही जीवन अशांत और तनावग्रस्त व क्षुब्ध हो चला है।"
यह सरासर झूठी बात है।
मैं तो वैज्ञानिक ढंग से ही रहता हूं। मैं तो विज्ञान की सारी प्रविधि का उपयोग करता हूं। न तो विक्षिप्त हूं, न तनावग्रस्त हूं। विज्ञान ने जो भी खोजा है, उसका मैं उपयोग करता हूं। मैं तो परम रूप से विज्ञान का उपभोक्ता हूं। मेरी दरिद्रता में कोई आस्था नहीं है और संसार को मैं माया नहीं कहता। संसार उतना ही सत्य है जितना ब्रह्म; थोड़ा ज्यादा ही भला, कम नहीं। क्योंकि ब्रह्म को भी जानना हो तो संसार के ही मार्ग से जाना होगा। ब्रह्म भी जाना जाता है तो संसार से ही। संसार में ही छिपा है ब्रह्म। संसार प्रकट है, ब्रह्म छिपा हुआ है, गुप्त है। संसार ठोस है, ब्रह्म वायवीय है। संसार पत्थर जैसा है, ब्रह्म हवा जैसा है; दिखता नहीं, अनुभव होता है।
मैं तो विक्षिप्त नहीं हूं। मैं तो पागल नहीं हूं। तुम मेरी जीवन-प्रक्रिया देखो, बिल्कुल वैज्ञानिक है। जो भी विज्ञान ने खोजा है, जो भी श्रेष्ठतम विज्ञान ने खोजा है, उसका मैं उपयोग करता हूं--उसका ही उपयोग करता हूं!
पश्चिम की तकलीफ यह नहीं है कि उन्होंने विज्ञान के कारण अपनी विक्षिप्तता पैदा कर ली; उनकी तकलीफ अतिवाद है, जैसी तुम्हारी तकलीफ अतिवाद है। तुम ब्रह्मवादी होकर मरे, वे संसारवादी होकर मर रहे हैं। लेकिन अति न तुम देखोगे, न वे देखेंगे। तुम इसलिए सड़ रहे हो, गल रहे हो, भूखे हो, दरिद्र हो, दीन हो, रुग्ण हो क्योंकि तुमने विज्ञान का उपयोग करके संपदा पैदा न की। और तुम्हारे थोथे साधु-संन्यासी तुम्हें समझाते रहे, संसार-त्याग। अब जब संसार का त्याग ही करना है, तो क्या संपदा पैदा करनी? अरे संपदा तो हाथ का मैल है, मिट्टी है! छोड़ो, भागो! जितनी जल्दी भाग जाओ उतने होशियार और कुशल हो!
लेकिन बड़े आश्चर्य हमें ये दिखाई पड़ते हैं कि आंखें रहते भी हम देखते नहीं गौर से। जैनों ने, उनके मुनियों ने संसार छोड़ा, लेकिन जैनों के मंदिर जितने समृद्ध हैं उतने किसी के नहीं। तुम्हें विरोधाभास नहीं दिखाई पड़ता? संसार तो माया है। सोना तो मिट्टी है, मगर महावीर की प्रतिमाएं बनाई हैं स्वर्ण की--शुद्ध सोने की! मिट्टी की नहीं बनाईं? मंदिर पर कलश चढ़ाते हैं, स्वर्ण का चढ़ाते हैं। मिट्टी का नहीं चढ़ा देते! और दौड़ लगी रहती है, होड़ लगी रहती है हर धर्म में कि किसका मंदिर कितना समृद्ध, कितनी चढ़ोतरी होती है, कितनी हुंडियां आती हैं, मंदिर की कितनी जायदाद है, कितना धन है मंदिर के पास? यह मंदिर की प्रतिष्ठा होती है। और ये वे ही लोग हैं जो कहते हैं कि संपदा तो कुछ है ही नहीं, अरे सपना है! कहां उलझे हो?
यह बड़े मजे की बात है। ये सारे शास्त्र जैनों के, बौद्धों के, हिंदुओं
के संपदा को गाली देते हैं और दान की महिमा गाते हैं। मैं कभी-कभी चौंकता हूं कि हम कब सोचेंगे, हमारे भीतर बुद्धि कब पैदा होगी? अगर धन मिथ्या है तो दान में क्या रहा फिर? यूं समझाते हैं कि धन में कुछ सार नहीं, मगर दान में बड़ा पुण्य है! असार का पुण्य करोगे, असार का दान करोगे? असार से पुण्य अर्जित करोगे? किसको धोखा दे रहे हो? मगर ऐसा जहर पिलाया है, ऐसी अफीम पिलाई है सदियों से कि लोगों को विरोधाभास दिखाई नहीं पड़ता।
एक स्त्री अपनी पड़ोसन से कह रही थी कि तुमने मेरे बेटे को क्यों मारा?
उस स्त्री ने कहाः उसने मुझे मोटी भैंस कहा।
तो पहली स्त्री ने कहाः बहन, तुम्हें मेरे बेटे को मारने के बजाय अपनी खुराक में कमी करनी चाहिए। बेटे ने कुछ गलत तो नहीं कहा।
बच्चों को तो सीधा दिखाई पड़ता है। रही होगी कोई टुनटुन।
मैंने सुना है कि टुनटुन एक बस में सफर कर रही थी। एक तरफ अमिताभ बच्चन और दूसरी तरफ विनोद खन्ना बैठे थे। आखिर विनोद तो मेरे संन्यासी हैं, थोड़ी देर तो उन्होंने बरदाश्त किया। लेकिन बरदाश्त करना मेरे संन्यासियों की कोई साधना नहीं है। आखिर उन्होंने कहाः बहन जी, आप क्यों मुझे हुद्दे मार रही हैं?

टुनटुन ने कहाः हद हो गई, मैं हुद्दे मार रही हूं? अरे! क्या श्वास लेना जुर्म है?
अब टुनटुन के पास बैठोगे, तो वह श्वास लेगी तो हुद्दे तो लगेंगे ही! ज्वार-भाटा आ रहा है, उसमें हुद्दे तो लगने ही वाले हैं! वह बेचारी श्वास ही ले रही है।
बजाय इसके कि तुम अपनी मूर्खताएं देखो... चिमनभाई देसाई पोरबंदर निवासी हैं। सो उन्हें बहुत दुख हो गया मालूम होता है। पोरबंदर निवासी हैं। गांधी जी की जन्मभूमि! और मैं गांधीवादी विचारधारा का विरोधी। सो उनको बेचैनी हो गई होगी।... तुम जरा आंखें तो खोलो।
तुम एक काम करो। पोरबंदर रहते हो, बंदर-छाप काला दंतमंजन आंखों में सुरमे की तरह लगाओ। और बुढ़िया का काजल दांतों में घिसो, क्योंकि दांत जितने मजबूत होते हैं, आंख उतनी मजबूत होती है। सो बुढ़िया का काजल दांतों में घिसना और बंदर-छाप काला दंतमंजन! यह बंदर-छाप काला दंतमंजन सबसे पहले बजरंगबली ने खोजा होगा। उन्होंने सबसे पहले आंखों में आंजा था। यह बड़ी गजब की चीज है। यह राज तुम्हें बताता हूं, दांतों पर मत घिसते रहना, आंखों में आंजना। तभी तो संजीवनी बूटी लेने गए थे, तो सारे पहाड़ पर संजीवनी बूटी दिखाई पड़ने लगी, सो पहाड़ ही ले आए। ऐसी आंखें देखने लगीं कि सारी बूटियां संजीवनी बूटियां दिखाई पड़ें।
थोड़ी आंख खोलो। थोड़ी होशियारी की बात करो। थोड़ी समझ का उपयोग करो। पश्चिम इसलिए पागल नहीं हो रहा है कि विज्ञान ने उसे नई आधुनिक संपदा
दे दी है। वैभव दे दिया है। पश्चिम इसलिए विक्षिप्त हो रहा है कि विज्ञान ने तो अभूतपूर्व साधन जुटा दिए, लेकिन ध्यान की क्षमता नहीं पैदा हुई। जैसे बच्चे के हाथ में तलवार लग जाए, तो तलवार का कोई कसूर है? तलवार तो मार भी सकती है, बचा भी सकती है। लेकिन बच्चे के हाथ में लग जाए तो खतरा ही है। या तो किसी को मारेगा या खुद को मार लेगा। लहू बहेगा--या तो किसी और का या खुद का। तलवार जैसी चीज बच्चे के हाथ में पड़ जाए तो खतरा है। मगर इससे तलवार को गाली मत देना। तलवार का क्या कसूर है? बच्चे को प्रौढ़ करो!
तो पश्चिम उस कोशिश में लगा हुआ है। मुझसे लोग पूछते हैं कि आपके पास पश्चिम से इतने लोग आ रहे हैं, भारतीय क्यों नहीं आते?
भारतीय क्या करें! वे तो बंदर-छाप काला दंतमंजन आंखों में लगा रहे हैं। बुढ़िया का काजल दांतों में घिस रहे हैं। और चरखा चला रहे हैं। उनको फुरसत कहां है ध्यान वगैरह की? लेकिन पश्चिम में एक तीव्र क्रांति उठी है, एक तूफान उठा है, ध्यान के प्रति आकर्षण उठा है। एक प्रबल अभीप्सा जगी है। साफ हो गई है पश्चिम के विचारशील व्यक्ति को यह बात कि विज्ञान अकेला हमें साधन तो दे देगा, लेकिन साधन का उपयोग करने वाला कहां है? और जितने सूक्ष्म साधन होंगे, उतनी ही सूक्ष्म चेतना चाहिए। जितने जटिल साधन होंगे, उतनी ही शांत चेतना चाहिए। नहीं तो साधनों की जटिलता की छाप चेतना की जटिलता बन जाएगी। इतने धन का अंबार लगेगा और तुम्हारे भीतर वही पुरानी बचकानी वृत्तियां रहीं, तो इस धन का तुम करोगे क्या? इससे कुछ न कुछ खतरा होने वाला है। वेश्यागमन करोगे, शराब पीओगे, जुआ खेलोगे, कुछ उलटा-सीधा करोगे। लेकिन अगर भीतर ध्यान भी हो, तो धन का अदभुत उपयोग हो सकता है।
मैं धन-विरोधी नहीं हूं। न धन-विरोधी हूं, न ध्यान-विरोधी हूं। मैं मानता हूं कि ध्यानी के हाथ में धन हो तो धन भी अभूतपूर्व रूप से उपयोगी हो जाता है। और धनी के हाथ में ध्यान लगे, तो ध्यान भी सुगमता से सधता है। दरिद्र ध्यान नहीं साध सकता; अभी धन ही नहीं साध सका, अभी बाहर का ही नहीं सधा, भीतर का क्या खाक सधेगा! और अगर किसी तरह खींचतान करके भीतर का साध ले, तो बाहर से हमेशा व्याघात खड़े होते रहते हैं। कभी भूख सताती, कभी रोग सताता। छप्पर नहीं है, वर्षा हो रही है। कपड़े नहीं हैं, सर्दी पड़ रही है। तो हम एक से एक मूर्खता की बातें खोजते हैं। हम कहते हैं कि कपड़े उतार दो, नग्न रहो, तपश्चर्या करो। अगर कपड़े नहीं हैं, तो भभूत रमा लो। बजाय इसके कि कपड़े खोजो, भभूत रमाना हम सिखाते हैं।
अब भभूत रमाना--तुम शायद चकित होओगे जान कर--है तो कपड़े का ही परिपूरक, मगर अवैज्ञानिक। जब कोई व्यक्ति शरीर पर राख मल लेता है तो तुम जानते हो

उसका वैज्ञानिक अर्थ क्या होता है? उसका अर्थ होता है उसने अपने सारे रोओं के जो छिद्र हैं, वे राख से भर लिए। वहां से हवा शरीर में भीतर जाती है। हर रोआं श्वास लेता है। तुम सिर्फ नाक से ही श्वास नहीं लेते। तुम सिर्फ नाक के ही श्वास के बल पर ठीक से जीवित भी नहीं रह सकते।
वैज्ञानिक कहते हैं कि अगर तुम्हारे पूरे शरीर के सारे रंध्र वैज्ञानिक विधि से बंद कर दिए जाएं, जैसे कोलतार पोत दिया जाए पूरे शरीर पर, मोटी पर्त कोलतार की तुम्हारे पूरे शरीर पर चढ़ा दी जाए, नाक खुली छोड़ दी जाए, मुंह खुला छोड़ दिया जाए--तो तुम तीन घंटे के भीतर मर जाओगे। सिर्फ तीन घंटे जी सकते हो। तुम्हारी नाक श्वास लेती है, वह तो ठीक; लेकिन तुम्हारे प्रत्येक जीवकोष्ठ को श्वास की जरूरत है। और तुम्हारे शरीर में सात करोड़ जीवकोष्ठ हैं। सात करोड़ जीवित अणु हैं। उनको श्वास चाहिए।
भभूत रमा कर बैठ गए, तो तुम सोचते हो त्याग-तपश्चर्या कर ली तुमने? भभूत रमाए हुए कोई ठंड में बैठा है, तो तुम सोचते होः अहा, क्या तपस्वी है! हम गरम ऊन का कोट पहने बैठे हैं, अंदर स्वेटर भी डाटे हुए हैं, कपड़ों पर कपड़े पहने हुए हैं, रजाई ओढ़े हुए हैं और फिर भी कंप रहे हैं। और एक यह आदमी है, क्या तपश्चर्या है! तपश्चर्या वगैरह कुछ भी नहीं, इसने सिर्फ शरीर के रंध्र बंद कर लिए हैं, तो श्वास बंद हो गई, हवा भीतर नहीं जाती, तो उसे ठंड नहीं लग रही है।
गर्मी में लोग अपने चारों तरफ अंगीठी जला लेते हैं। उसको हम तपश्चर्या कहते हैं। वह भी तपश्चर्या नहीं है। तुम्हारा प्रत्येक जीवकोष्ठ जब तुम गर्म होने लगते हो तो पसीना छोड़ता है। पसीना छोड़ना गर्मी से बचने की एक प्राकृतिक व्यवस्था है। वह तुम्हें वातानुकूलित रखने का एक आयोजन है। जब तुम्हारे शरीर से, रोएं-रोएं से पसीने की बूंदें झलकने लगती हैं, तो उसका अर्थ तुम समझे? ये पसीने की बूंदें तुम्हारे शरीर की गर्मी से उत्तप्त होकर वाष्पीभूत हो जाएंगी। शरीर की गर्मी, जो तुम्हें परेशान कर रही थी, इस पानी को, जो पसीने की तरह आया है, भाप की तरह बनाने के काम आ जाएगी। गर्मी पसीने को भाप बनाने में लग जाएगी, तुम्हारा शरीर शीतल हो जाएगा।
लेकिन जो व्यक्ति अंगीठी जला कर गर्मी के दिनों में बैठ जाता है, उसका परिणाम यह होता है कि उसके जीवकोष्ठों में जितना पानी होता है, सब बह जाता है। जब सब पानी बह जाता है तो जीवकोष्ठ सूख जाते हैं, करीब-करीब मुर्दा हो जाते हैं। उस मुर्दगी से भरी हुई पर्तों के भीतर गर्मी नहीं पहुंचती फिर, न शीत पहुंचती, न गर्मी पहुंचती। उस आदमी ने अपनी चमड़ी को संवेदनशून्य कर लिया। उस आदमी ने अपनी चमड़ी को मार डाला। उस आदमी की चमड़ी में अब जीवन नहीं है। और उतना ही जीवन उसका कम हो गया। चमड़ी तुम्हारी पांचवीं इंद्रिय है, वह आदमी एक बटा पांच मर गया।
तुम्हारे रोएं-रोएं को जीवित होना चाहिए। विज्ञान ने सारी सुविधाएं जुटा दी हैं। तुम्हें यह पता है भलीभांति कि सदियों से तुम्हारे साधु- संन्यासी हिमालय जाते रहे। किसलिए? हिमालय पर शांति है, सन्नाटा है, शीतलता है। उस शीतलता और सन्नाटे की तलाश में हिमालय जाते रहे। मगर आज विज्ञान ने यह उपाय कर दिया है कि तुम्हारे घर में ही साउंडप्रूफ वातानुकूलित कक्ष हो सकता है। हर घर में होना चाहिए। उसको ही मंदिर बनाना चाहिए। हिमालय, इतनी दूर जाने की क्या जरूरत, जब हिमालय घर में लाया जा सकता है। और कितने लोग हिमालय जाएंगे? समझो कि सभी लोग चल पड़ें... । पश्चिम के बहुत बड़े विचारक इमैनुअल कांट ने कहा हैः उस नियम को ही नीति मानो, जिसको सब लोग पूरा करें तो पूरी हो सके। उस नीति को नियम मत मान लेना, जिसको कुछ लोग पूरा करते हों और काम चल जाता हो। जब तक सब लोग उसे पूरा न कर सकें, तब तक वह नीति नहीं है, नियम नहीं है, अपवाद है। यह उसकी कसौटी थी नीति को कसने की। और मैं मानता हूं कि उसकी कसौटी उपयोगी है। जैसे उसने ब्रह्मचर्य को नैतिक नहीं माना, मैं भी नहीं मानता। कारण? क्योंकि इमैनुअल कांट कहता हैः अगर सारे लोग ब्रह्मचर्य धारण कर लें, तो उसका परिणाम पृथ्वी पर आत्मघात होगा। आत्मघात, पूरी मनुष्य-जाति का, नैतिक नहीं हो सकता।

तो ब्रह्मचर्य में कहीं अनीति है। हां, कुछ लोग करते हों तो पता नहीं चलता; क्योंकि कुछ लोगों से कुछ फर्क नहीं पड़ता। खुद इमैनुअल कांट ने विवाह नहीं किया। मैंने नहीं किया। लेकिन इसको मैं नैतिक नियम नहीं बना सकता। यह मेरी मौज, यह मेरी मर्जी। मैं अपवाद होकर जीना चाहता हूं। यह मेरी शैली। मगर मैं यह नहीं कह सकता कि इसको मैं सबके ऊपर थोप दूं और प्रत्येक व्यक्ति से कहूं कि ब्रह्मचारी हो जाओ। हालांकि मनुष्य का अहंकार ऐसा है कि जो वह करता है, वह चाहता है सब पर थोप दे। और इन्हीं अहंकारियों की वजह से बहुत सी मूर्खतापूर्ण बातें तुम्हारे ऊपर थोप दी गई हैं। जो वे करते हैं वही तुमसे करवाएंगे।
इमैनुअल कांट से मैं राजी हूं। इसका अर्थ यह हुआ कि संन्यास की जो पुरानी धारणा है, वह नैतिक नहीं है। क्योंकि अगर सारे लोग संन्यासी हो जाएं, तो क्या परिणाम होगा? भीख कौन देगा इन्हें, भोजन कौन देगा, कपड़े कौन देगा? ये जीएंगे कैसे? कुछ लोग संन्यासी हो जाते हैं, तो करोड़ों लोगों के बीच कुछ पता नहीं चलता। ठीक है, चल जाता है।
उसी बात को नैतिक कहा जा सकता है जिसको सब लोग मानें और तो भी जीवन को हानि न हो।
महात्मा गांधी की विचारधारा बिल्कुल अनैतिक है, क्योंकि अगर सारे लोग उनकी बात को मान कर जीएं तो हिंदुस्तान की आबादी पुनः दो करोड़ रह जाएगी; अस्सी करोड़ आदमियों को मरना पड़ेगा। हालांकि वे कहते हैं कि अहिंसक हैं, लेकिन अस्सी करोड़ लोगों की हिंसा का जिम्मा उनको उठाना पड़ेगा। और इतनी बड़ी हिंसा दुनिया में किसी ने भी नहीं की--न एडोल्फ हिटलर ने, न जोसेफ स्टैलिन ने, न माओत्से तुंग ने, न चंगीज खान ने, न तैमूरलंग ने, न नादिरशाह ने। सच तो यह है कि जितने दुनिया में हिंसक हुए हैं आज तक--तैमूर से लेकर माओत्से तुंग तक--सबने भी मिल कर जितनी हत्या की है, वह भी इतनी बड़ी हत्या नहीं है जितनी बड़ी हत्या महात्मा गांधी के सिर पर लगेगी। अगर महात्मा गांधी की बात मान कर तुम चलते हो समग्ररूपेण, तो दो करोड़ आदमी भारत में जिंदा रहते हैं, वे भी न्यूनतम ढंग से जिंदा रहेंगे। बस किसी तरह जिंदा रहेंगे। अस्सी करोड़ आदमियों को मरना होगा। मर ही रहे हैं, ऐसे ही मर रहे हैं। क्या खाक जी रहे हैं? सड़ रहे हैं, सरक रहे हैं, घिसट रहे हैं। मगर फिर भी हमारी मूढ़ता है कि हम अपनी दलीलों को दोहराए चले जाते हैं। और हम ऐसे- ऐसे उपाय खोजते हैं, जिनकी मूढ़ता बिल्कुल स्पष्ट होती है, मगर फिर भी अंधी आंखें देख नहीं पातीं।
एक मरीज डाक्टर के पास गया। डाक्टर ने पूछाः आपको रोग क्या है?
मरीज ने कहाः सबेरे उठने के बाद एक घंटे तक सिर चकराता रहता है।
डाक्टर ने कहाः उसमें क्या है! अरे एक घंटे बाद उठा करो।
क्या सरल तरकीब बताई! क्या सीधा नुस्खा बता दिया! मगर मूर्खता देखते हो? वह एक घंटे बाद उठेगा तो फिर चकराएगा। उसका उठने के बाद चकराता है, इससे एक घंटे बाद उठे कि दो घंटे बाद, क्या फर्क पड़ता है?
पश्चिम क्षुब्ध है निश्चित, लेकिन क्षुब्ध होने का कारण विज्ञान नहीं है; क्षुब्ध होने का कारण धर्म का अभाव है। तुम भी क्षुब्ध हो और तुम्हारे क्षुब्ध होने का कारण विज्ञान का अभाव है।
मैं एक ऐसी मनुष्यता चाहता हूं जहां धर्म और विज्ञान संयुक्त हो जाएं। विज्ञान बाहर का धर्म है; धर्म भीतर का विज्ञान है। इन दोनों में कोई विरोध बनाए रखने की जरूरत नहीं है। और महात्मा गांधी की विचारधारा इनमें विरोध खड़ा करती है। महात्मा गांधी बातें तो समन्वय की करते हैं, लेकिन समन्वय को समझते भी हैं या नहीं, यह भी संदिग्ध है। समन्वय का एक ही अर्थ हो सकता है कि जो-जो हमें बातें विरोधी दिखाई पड़ती हैं उनके भीतर हम कोई सेतु खोजें। मनुष्य के शरीर और आत्मा के बीच सेतु, पृथ्वी और आकाश के बीच सेतु, पश्चिम और पूरब के बीच सेतु। अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम, इसमें कुछ सेतु नहीं है। क्योंकि ये अल्लाह को मानने वाले वैसे ही मूढ़ हैं जैसे ये ईश्वर को मानने वाले मूढ़ हैं। इन दोनों मूढ़ताओं में कोई सेतु मिलाने की जरूरत नहीं है। ये तो मिले ही हुए हैं। इसमें कुछ खास मामला नहीं है। ये एक

तरह के मूढ़ हैं, वे एक तरह के मूढ़ हैं। एक-दूसरे की तरफ पीठ किए खड़े हैं माना, मगर हैं दोनों परम बुद्धू।
विज्ञान और धर्म के बीच असली समन्वय सिद्ध होना है। और उसी दिन पृथ्वी पर मनुष्य अपनी समग्र गरिमा में, गौरव में, महिमा में, सौंदर्य में प्रकट होगा।
लेकिन चिमनभाई देसाई कहते हैं कि "पश्चिम सामूहिक विक्षिप्तता के कगार पर खड़ा है।"
निश्चित खड़ा है। और तुम कहां खड़े हो? तुम... सामूहिक आत्महत्या के कगार
पर तुम भी खड़े हो। और अगर इन दोनों में से ही चुनना हो, तो भी मैं कहूंगा पश्चिम को चुनो। अगर इन दो ही में से चुनना हो, अगर यही विकल्प हो, तो मैं कहूंगा कि सारी समृद्धि का उपभोग करते हुए पागल होना बेहतर है--बजाय भूखे मर कर, सड़ते हुए, भीख मांगते हुए, रोते गिड़गिड़ाते हुए जीने के। यह कोई जीना है?
मुल्ला नसरुद्दीन का बाप जब मर रहा था तो उसने अपने बेटे को पास बुलाया और कहा कि नसरुद्दीन, तुझे मुझे एक सीख देनी है। आखिरी सीख है, बेटा भूलना मत। जीवन भर के अनुभव का मेरा निचोड़ है, तुझे कहे जाता हूं, कि धन से सुख नहीं खरीदा जा सकता।
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि पिताजी, आप कहते हैं तो मानता हूं आपकी बात कि धन से सुख नहीं खरीदा जा सकता। लेकिन एक बात मैं भी निवेदन कर देना चाहता हूं--क्योंकि फिर मिलना हो कि न हो--कि धन से कम से कम अपना मनपसंद दुख तो खरीदा जा सकता है!
जरा सोचो गौर से। मुल्ला ने बात पते की कही। मनपसंद दुख! माना कि धन से सुख नहीं खरीदा जा सकता, सो कोई निर्धन होने से भी नहीं खरीदा जा सकता। इसलिए वह बात तो छोड़ो; उसका कोई मतलब न रहा। मगर धन से मनपसंद दुख खरीदा जा सकता है। यह भी क्या कम है? झोपड़े में भी दुखी रहोगे, महल में भी दुखी रहोगे--तो फिर महल में ही दुखी क्यों न रहो? कम से कम महल में रहने का तो मजा ले ही लो; दुख तो भोगना ही है, झोपड़े में भोगा कि महल में भोगा। रेगिस्तान में भी दुखी रहोगे और बगीचे में भी, तो बगीचे में ही दुखी रहना बेहतर है, कम से कम कोयल तो पुकारेगी कभी, पपीहा तो पी-पी करेगा, फूल तो खिलेंगे! भूले-चूके कभी कोई गंध भी उड़ती आ जाएगी! कभी मोर तो नाचेगा! माना कि दुखी रहोगे, मगर रेगिस्तान में दुखी रहने की बजाय बगीचे में दुखी रहना बेहतर है।
मैं तुमसे कहता हूं कि अगर पूरब और पश्चिम ही विकल्प हों, अगर इनके बीच कोई समन्वय बन ही न सकता है, तो पश्चिम को चुनना, पूरब को नहीं। लेकिन समन्वय बन सकता है, इसलिए चुनाव का कोई सवाल नहीं है। वही मैं कोशिश कर रहा हूं। इसलिए मुझसे पूरब भी नाराज होगा और पश्चिम भी नाराज होगा। मैं जिस काम में लगा हूं उसमें लाखों-करोड़ों लोग मुझसे नाराज होने वाले हैं। और मजा यह कि उनके लिए ही मैं काम में लगा हूं। मगर यही इस काम का मजा है। मजा ही कहना चाहिए। यही इस काम की रौनक है। यही इस काम का चमत्कार है कि तुम जिनके लिए करोगे वही तुम्हें गालियां देंगे। पूरब गाली देगा कि मैं पूरब को बरबाद कर रहा हूं, क्योंकि मैं पूरब की संस्कृति को डुबाए दे रहा हूं, धर्म को डुबाए दे रहा हूं; क्योंकि पूरब का धर्म और संस्कृति तो गरीबी में ही रह सकती है। गरीबी गई कि सब गड़बड़ हुआ। यह तो जबरदस्ती गरीबी में थोपी गई संस्कृति है। इसलिए तुम देखते हो, जो अमीर होता है वह तुम्हारी संस्कृति को औपचारिक रूप से ही मानता है सिर्फ, नहीं तो पेरिस में जाकर मजे करता है। मैंने सुना, स्वर्ग में एक दिन जीसस के पिता जोसेफ और उनकी मां मेरी, दोनों बैठे गपशप कर रहे थे। काम भी स्वर्ग में क्या है--गपशप करो, और क्या करोगे! मेरी ने कहाः जोसेफ, कभी-कभी मेरा मन होता है कि अब दो हजार साल हो गए, एक दफा देख तो आऊं अपने बेटे के मानने वाले लोगों की सुनते हैं करोड़ों संख्या हो गई। तब तो उन दुष्टों ने सूली दे दी थी, अब बड़ी पूजा करते हैं-- चर्च-मंदिर बनाए हैं, करोड़ों पादरी-पुरोहित हैं। बड़ा मन में ख्याल आता है एक दफा जाकर देख तो आऊं।

जोसेफ ने कहाः जरूर चली जाओ, मुझे भी खबर मिल जाएगी। जाओ जरूर जाओ, मगर रोज शाम को मुझे फोन से खबर कर देना कि क्या हालत है, कैसा चल रहा है।
तो मेरी पृथ्वी पर आई। रोज शाम को खबर करती थी। जेरुसलम गई पहले तो-- पुरानी परिचित जगह। शाम को खबर की कि सब ठीक चल रहा है; चर्चों में प्रार्थनाएं हो रही हैं; साधु हैं, साध्वियां हैं, आश्रम हैं। एक मोनेस्ट्री भी जाकर आई हूं। जीसस के विचार खूब फैले हैं। फिर रोम गई, वेटिकन गई। जगह-जगह से फोन करती रही। मगर फोन का लहजा रोज-रोज बदलता गया। जोसेफ रोज पूछे कि अब तू आती कब है? तो कहती कि आऊंगी, जल्दी क्या है? आखिर वहां काम भी क्या है? फिर पांच-सात दिन तक फोन आया ही नहीं। जोसेफ हैरान, परेशान। सेंट पीटर को कहा कि भई पता लगाओ, खोज-बीन करो कि हुआ क्या, गई कहां? सातवें दिन फोन आया, तो हमेशा कहती थीः हे परम पूज्य पतिदेव, हे मेरे परमात्मा, हे प्यारे! आज फोन आया तो, हालांकि फोन बड़ी दूर से आ रहा है, मगर शराब की गंध साफ मालूम हो रही है, डट कर पी गई है। और बोलीः प्यारे जो-जो! जोसेफ तो बहुत हैरान हुए कि जो-जो! इसने तो कभी इस तरह शब्द उपयोग किए नहीं। हमेशा कहती थी--परम पूज्य पतिदेव; आज कह रही है--जो-जो! कहा कि सात दिन से खबर नहीं की?
मेरी बोलीः जो-जो खबर करने की फुरसत ही नहीं मिली। पेरिस में हूं। क्या मजा आ रहा है, क्या गुलछर्रे हैं! मैं तो कहती हूं, तुम भी आ जाओ। अब कब तक वहां बैठे-बैठे बूढ़े होते रहोगे? मेरी मानो, तुम भी आ जाओ। कुछ दिन मजा कर लो।
जोसेफ को शराब की गंध भी आ रही है, बातचीत के ढंग में भी शराब का नशा मालूम हो रहा है। पूछा कि मेरी, तुझे हो क्या गया? मेरी ने कहाः मेरा नाम यहां मेरी नहीं है, मिम्मी। यह पेरिस है। और मैं तुमसे कहे देती हूं कि मेरा आने का अब कोई इरादा नहीं है। देख लिया तुम्हारा स्वर्ग।
आदमी ने स्वर्ग को बनाने का करीब-करीब पूरा इंतजाम कर लिया है। बस कमी
रह गई है तो एक, कि बाहर तो स्वर्ग बनाने का पूरा इंतजाम हो गया है पश्चिम में, लेकिन भीतर एक अर्थहीनता का बोध है, एक रिक्तता है। वह रिक्तता ध्यान से भर जाएगी। बस ध्यान की जरूरत है विज्ञान के साथ जोड़ देने की। और जो कभी नहीं घटा पृथ्वी पर, वह घट जाएगा। फिर स्वर्ग को आकाश में रखने की जरूरत नहीं, फिर पृथ्वी पर हम स्वर्ग बसा सकते हैं। असल में आकाश पर रखते ही उसको इसलिए थे कि पृथ्वी पर बसाने में असमर्थ थे।
पश्चिम समर्थ है स्वर्ग को बसाने में। और पूरब के पास ध्यान का विज्ञान है। दोनों का लेन-देन हो सकता है। इस सौदे में किसी का नुकसान नहीं होगा, दोनों लाभ ही लाभ में रहेंगे।
तुम कहते हो कि "तब क्यों आप उसका अंध-समर्थन करते हैं?"
यह अंध-समर्थन है या तुम्हारा अंध-विरोध है? मैं तो जो देख रहा हूं, जैसा देख रहा हूं, उसका समर्थन कर रहा हूं। लेकिन तुम नहीं देख रहे हो। तुम तो अपनी धारणाओं को सिद्ध करने में लगे हुए हो। तुम्हारी कितनी समझ है पश्चिम के संबंध में? मेरे पास पश्चिम के इतने लोग हैं और उनमें मैं जो खूबी देखता हूं वह पूरब के आदमी में नहीं है। उनमें एक खूबी है कि वे जिस काम में लगते हैं उसे परिपूर्ण निष्ठा से करते हैं। और परिपूर्ण शिल्प, कुशलता, विज्ञान, बुद्धि का पूरा उपयोग करते हैं। पूरब का आदमी उनके सामने बिल्कुल आलसी और काहिल और सुस्त मालूम होता है। बिल्कुल निकम्मा!
मुझसे लोग यहां आकर पूछते हैं कि "आपने सारे कामों में पश्चिम के लोगों को क्यों आगे रखा है?"
करो क्या? तुम जान कर हैरान होओगे कि ऐसे काम भी, जो कि पश्चिम का आदमी
कर ही नहीं सकता, वह भी वही कर रहा है। जैसे हिंदी पुस्तकों के लिए कवर डिजाइन बनाने का काम। अंग्रेजी की पुस्तकों का कवर डिजाइन तो ठीक है। अंग्रेज कर लेते हैं, पश्चिम से आए हुए लोग कर लेते हैं। लेकिन हिंदी पुस्तकों का कवर तो हिंदी में बनाना है; वह भी जितनी सुंदरता से पश्चिम का आदमी करता है, पूरब का नहीं कर पाता। पूरब के लोगों को उसमें से भी हटा देना पड़ा। हिंदी में लिख रहा है अब वह। लेकिन अभी तुम जो नई किताबें देखे,

वे सब पाश्चात्य लोगों की हिंदी है। वह सब लिपि उनकी है। मगर उनकी एक पकड़ है, एक वैज्ञानिक सूझ-बूझ है।
और मेरे देखने में दूसरी बात समझ में आ रही है; इसी सूझ-बूझ को जरा भीतर की तरफ मोड़ देना है, कि यही सूझ-बूझ उसके लिए ध्यान बन जाती है। और पूरब का आदमी इतना टूट गया है, और हर चीज को माया कह-कह कर, त्याग कर-कर के उसने अपने हाथ-पैर तोड़ लिए हैं। कुछ करते नहीं बनता अब। और कुछ करते नहीं बनता, उसको वह कहता है भाव-भजन। न भाव-भजन करते बनता है अब। कुछ भी करते नहीं बनता। एकदम काहिल और सुस्त। हां, उसको चरखा पकड़ा दो तो चलाता रहेगा। अब चरखा चलाने में भी कोई खूबी की बात है? जमानों से बुढ़िया यही काम करती रही हैं। जब उनसे कोई काम नहीं होता, तो गांव में लोग बुढ़ियों को चरखा पकड़ा देते हैं। वही हालत भारत की है। कुछ इनसे बनता नहीं, तो अब इनको चरखा पकड़ा दो।
कोई चरखा गांधीजी की ईजाद है, तुम समझते हो? यह तो सदा की ईजाद है। बुढ़िया करती ही रही हैं यह। सदियों से बच्चों को चांद पर हम बताते रहे हैं कि बुढ़िया चरखा कात रही है। मगर क्यों बुढ़िया? बुढ़िया ही चरखा कातती रही। अब जिससे कुछ नहीं बनता था, वह चरखा कातती थी। जिनसे अभी कुछ बन सकता है, इनसे भी चरखा कतवाओगे? और चरखा कात कर क्या मिल जाने वाला है इनको?
और गांधी के ढंग एकदम बेहूदे हैं। जो काम सरलता से हो सके, उसको बेहूदे ढंग से करने में इस देश में प्रशंसा मिलती है। अब जैसे मच्छरदानी कोई बहुत बड़ी वैज्ञानिक चीज नहीं है। मगर गांधी मच्छरदानी न बांधेंगे। क्या करेंगे, मच्छरदानी की जगह घासलेट का तेल मुंह पर लगा कर सोएंगे! बुद्धि भी गंवाते हैं, तो भी आदमी थोड़ा हिसाब रखता है। मगर इसकी प्रशंसा होती है! गांधी के ऊपर किताबें लिखी गई हैं, जिनमें इस बात की प्रशंसा है कि देखो त्याग, मच्छरदानी नहीं बांधते, मुंह पर घासलेट का तेल लगाते हैं! अब घासलेट का तेल बहुत मुश्किल से मिलता है। और मच्छरदानी में क्या अड़चन है? मच्छरदानी कोई ऐसी बड़ी भारी वैभव की चीज भी नहीं है। मगर मुंह पर मिट्टी का तेल लगाओगे, मुंह खराब करोगे। चमड़ी खराब करोगे। और मिट्टी के तेल को लगा कर स्वभावतः मच्छर पास नहीं आएंगे। अरे मच्छर तक पास नहीं आते! और महात्मागण मिट्टी का तेल लगा कर बैठे हुए हैं।
जरा इन बेहूदगियों को तो देखो। मगर तुम एक आदत पकड़ कर बैठे हो कि जिसको महात्मा कह दिया, वह बेहूदगी कैसे कर सकता है! इसलिए अगर मैं तुम्हारे महात्मा को बेहूदा कह दूं, तो बस मैं तुम्हारा दुश्मन, कि हमारे महात्मा को बेहूदा कह दिया! अब मैं क्या करूं? बेहूदगी तुम्हारे महात्मा करें, इसमें मैं क्या करूं?
एक बेटा मां से बोलाः मां, एक चवन्नी दे दो।
मां ने कहाः क्यों?
बेटे ने कहाः स्कूल मैं लेट गया था, इसलिए अध्यापक ने चवन्नी दंड लगाया है।
मां ने कहा कि सुन, तू भी अपने बाप की तर्ज पर जा रहा है। जहां गए वहीं लेट गए। तो लेटने की जरूरत क्या थी?
दिमाग में एक कचरा भरा हुआ है, उसके बिना सुन ही नहीं सकते। उसी धारणा
से सुनते हैं। वह कह रहा है कि मैं स्कूल लेट गया था, इसलिए अध्यापक ने चवन्नी दंड लगाया है। मां ने फौरन समझ लिया कि अच्छा तो तुम भी लेटने लगे इधर-उधर! तेरा बाप भी यही कर रहा है।
स्कूल से प्रोग्रेस रिपोर्ट आई फजलू की, नसरुद्दीन के बेटे की। लिखा
था अध्यापिका नेः वैसे तो आपका बेटा फजलू काफी मेधावी है, बस एक ही दोष है उसमें--वह यह कि वह अपना ज्यादातर समय स्कूल की लड़कियों का पीछा करने तथा उनसे छेड़-छाड़ करने में बिताता है। मैं उसकी यह आदत छुड़ाने की कोई तरकीब सोच रही हूं। स्कूल की अध्यापिका ने स्कूल की प्रोग्रेस की रिपोर्ट में लिखा था। यह रिपोर्ट जब गुलजान को मिली तो उसने उसे पढ़ कर लिखा कि आपकी भेजी गई प्रोग्रेस रिपोर्ट मिली। आशा है कि निकट भविष्य में आप मेरे बच्चे की आदत छुड़ाने में अवश्य सफल हो जाएंगी। और फिर नीचे पुनश्च करके

लिखाः यदि आप वह तरकीब खोजने में सफल हो जाएं, तो कृपया मुझे भी बताने की कृपा करें ताकि मैं उसे फजलू के पिता मुल्ला नसरुद्दीन पर आजमा सकूं। अपनी-अपनी धारणाएं। उन्हीं धारणाओं से हम चीजों को देखते हैं, सोचते हैं। और उन्हीं धारणाओं के चक्कर में हम घूमते रहते हैं। गरीब हो, बजाय गरीबी मिटाने के तुम इस कोशिश में लगे रहते हो कि गरीबी के लिए किसी तरह समर्थन मिल जाए। अब पश्चिम में अगर लोग पागल हो जाते हैं या आत्महत्या कर लें, तुम्हारा दिल प्रसन्न हो जाता है कि अहा, धन्यभागी हैं हम! क्या हमारी गरीबी! न आत्महत्या की जरूरत, न पागल होने की जरूरत।
लेकिन ख्याल रखना, पागल होने के लिए भी थोड़ी प्रतिभा चाहिए। तुमने कभी किसी बुद्धू को पागल होते देखा? किसी जड़बुद्धि को तुमने पागल होते देखा? तो किसी को पागल होते देख कर जड़बुद्धि भी प्रसन्न होता होगा कि अहा, हम ही धन्यभागी हैं! जरूर पिछले जन्म में कुछ पुण्य कर्म किए होंगे, तभी तो परमात्मा ने जड़बुद्धि बनाया है! नहीं तो देखो क्या हालत हो रही है!
तुम यह जानते हो कि दुनिया में जो भी श्रेष्ठतम प्रतिभा के लोग हुए हैं, उनमें से बहुतों को पागल होना पड़ा है? क्यों? प्रतिभा में खतरा है, क्योंकि जब तुम प्रतिभा के शिखर छूते हो, तो गिरने का डर है। फ्रेड्रिक नीत्शे पागल होकर मरा। लेकिन चिमनभाई देसाई पोरबंदर वाले, अगर मुझे चुनाव करना हो कि चिमनभाई देसाई होना कि फ्रेड्रिक नीत्शे, मैं फ्रेड्रिक नीत्शे होना पसंद करूंगा। मुझे अगर चुनाव करना हो कि महात्मा गांधी होना कि फ्रेड्रिक नीत्शे, मैं फ्रेड्रिक नीत्शे होना पसंद करूंगा। पागल होकर मर जाना बेहतर, मगर मुंह पर मिट्टी का तेल थोपने को मैं राजी नहीं। यह पागल होने से भी बदतर बात हो गई। आखिर फ्रेड्रिक नीत्शे अपनी प्रतिभा की ऊंचाइयों के कारण पागल हुआ। बच सकता था पागल होने से। काश उसको ध्यान की कला मिल जाती, तो वह बुद्धत्व को उपलब्ध होता!
फ्रेड्रिक नीत्शे में वही क्षमता थी जो बुद्ध में थी। मैंने दोनों को बहुत बारीकी से छाना-बीना है। उसमें वही सूझ-बूझ है। उसमें वही अंतर्दृष्टि है, वही पैनापन, वही निखार, वही तेज है जो बुद्ध में है। थोड़ा ज्यादा ही, कम नहीं। बस चूक हो गई तो एक कि उसे भीतर जाने का कोई उपाय न मिला। और प्रतिभा इतनी थी कि बाहर से राजी न हुई। जल्दी ही उसे बाहर जो था वह सब व्यर्थ दिखाई पड़ने लगा और भीतर जाने का मार्ग मालूम नहीं। इस दुविधा में पागल हुआ। मगर यह पागल होना सौभाग्यपूर्ण है। फ्रेड्रिक नीत्शे दूसरे जन्म में बुद्ध होगा ही। मगर महात्मा गांधी को बहुत जन्म लग जाएंगे। शायद चौरासी कोटि योनियों में भटके तो भी अगर बुद्ध हो जाएं तो चमत्कार! क्योंकि वे चरखा अगर कातते ही रहे, कातते ही रहे, कातते ही रहे, तो क्या करोगे? चरखा ही कातते रहे, तो बस चरखा ही हो जाएंगे।
विनसेंट वानगॉग ने आत्महत्या की--पश्चिम के बहुत बड़े चित्रकार ने। इन
दो सौ वर्षों में पश्चिम में उसके मुकाबले कोई चित्रकार नहीं हुआ। और आत्महत्या क्यों की? क्योंकि बाहर का जो भी चित्रण करना था, चित्रण हो चुका। एक चित्र को बनाने में, अंतिम चित्र को बनाने में एक वर्ष लगाया-- सूर्योदय के चित्र को बनाने में। वह उसकी जीवन भर की आकांक्षा थी कि एक ऐसा सूर्योदय बना जाऊं जैसा कभी किसी ने न बनाया हो। और जब वह पूरा हो गया तो उसने गोली मार ली। सूर्योदय बनाने में पागल भी हुआ, एक साल पागल रहा, क्योंकि चौबीस घंटे सूर्य की सारी कलाओं का अध्ययन करता रहा। अब सूर्य को खुली आंख से देखोगे, और आरलीज में जहां वह सूर्य का अध्ययन कर रहा था फ्रांस में, जहां सूरज सबसे ज्यादा तेजी से चमकता है, चौबीस घंटे सूरज को देखते-देखते उसका सिर भन्नाने लगा। मगर चित्र बना गया। जिस दिन चित्र बन गया, उस दिन उसने गोली मार ली। पत्र लिखा अपने भाई को कि मेरा काम पूरा हो गया, अब तो कुछ और चित्र बनाने को बचा नहीं। काश, इस आदमी को ध्यान का पता होता, तो एक नई दुनिया मिल जाती चित्र बनाने की, जिसका कभी अंत नहीं होता है!
बाहर की दुनिया की सीमा है, भीतर की दुनिया की कोई सीमा नहीं है। लेकिन अगर मुझे चुनाव करना हो, चरखा कातने में और विनसेंट वानगॉग के चित्र बनाने में, तो मैं विनसेंट वानगॉग होना पसंद करूंगा; फिर चाहे एक साल पागल

हो जाऊं और फिर चाहे आत्महत्या क्यों न करनी पड़े। इस आत्महत्या में भी गौरव है। इस पागलपन में भी प्रतिभा की घोषणा है।
पश्चिम को एकदम से कुछ कहने की कोशिश न करो। समझने की कोशिश करो। अपनी दीनता को छिपाने की कोशिश न करो। उसमें बड़ी गहरी चालबाजी है।
मुल्ला नसरुद्दीन चंदूलाल से पूछ रहा था कि भैया चंदूलाल, तुम्हारी साइकिल की दुकान तो खूब चल गई यार! पंक्चर सुधारने से दम मारने की फुरसत ही नहीं रहती तुम्हें! जब देखो तब लगे काम में! जब देखो तब लगे काम! आधी-आधी रात तक पंक्चर सुधारते रहते हो!
चंदूलाल बोलाः हां भाईजान, इसका भी एक राज है। मेरा लड़का घूम-घूम कर साइकिलें पंक्चर करता रहता है। मैं उसे प्रति पंक्चर दस पैसे देता हूं और प्रति पंक्चर ठीक करने के पच्चीस पैसे लेता हूं। नगद सौदा है। वह भी कमा रहा है दिन भर घूम-घूम कर। स्कूल वगैरह अब नहीं जाता। अब तो साइकिलें पंक्चर करना उसका काम है। वह साइकिलें पंक्चर करता है, मैं साइकिलें जोड़ता हूं। जितनी साइकिलें पंक्चर करके भेज देता है, दस पैसे के हिसाब से ले लेता है और मैं पच्चीस पैसे के हिसाब से जोड़ ले लेता हूं। दोनों मजे में हैं। बेटा भी कमा रहा है, मैं भी कमा रहा हूं। यह बाप-बेटे की साझेदारी चल रही है।
तुम्हारे पंडित-पुरोहित नहीं चाहते कि तुम समृद्ध हो जाओ। तुम्हारे धर्मगुरु नहीं चाहते कि तुम समृद्ध हो जाओ। तुम्हारे जितने न्यस्त स्वार्थ तुम्हारे ऊपर हावी हैं, कोई भी नहीं चाहता कि तुम समृद्ध हो जाओ। तुम्हारे राजनैतिक नेता नहीं चाहते कि तुममें किसी तरह की बुद्धि, प्रतिभा, क्षमता, गरिमा, व्यक्तित्व का बोध पैदा हो जाए। क्योंकि तुम्हारे भीतर अगर व्यक्तित्व का बोध पैदा हो जाए, तुममें अगर थोड़ी प्रतिभा में निखार आ जाए, तुम अगर चक्रम होने से बच जाओ, अगर चरखा वगैरह कातना छोड़ कर तुम थोड़ा बुद्धि को निखार लो या तुम थोड़ी ध्यान पर धार धर लो, तो तुम इन बुद्धुओं को नेता मानोगे? मोरारजी देसाई को एक मत भी इस देश में मिल सकता है, अगर लोगों में थोड़ी भी प्रतिभा हो? लेकिन लोगों में प्रतिभा नहीं है, तो फिर तुम चाहो... गांव में खेत में जो धोखे का आदमी खड़ा कर देते हैं--डंडा लगा कर, हंडी लटका कर सिर पर, और कुर्ता पहना दिया पुराना एक, खादी का हो तो फिर कहना ही क्या, और गांधी टोपी भी लगा दो हंडी के ऊपर, और चूड़ीदार पाजामा भी पहना दो--उसको भी वोट मिल जाएंगे, वह भी चुनाव जीत जाएगा कि क्या शुद्ध खादीधारी है! बगल में एक चरखा रख दो, हाथ में झंडा पकड़ा दो। क्या कमी रह गई? और चाहिए क्या? और है ही क्या मोरारजी देसाई में सिवाय इसके? किसी खेत में खड़े करने लायक हैं कि पशु-पक्षियों को भगाते रहें। मैं समझता हूं, पशु-पक्षी भी शायद ही भागेंगे--अरे ये मोरारजी, खड़ा रहने दो! यह क्या पशु-पक्षी भगाएगा! मुंह पर मक्खियां बैठी हैं, उनको तो भगा लो! पशु- पक्षी भगाओगे?
तुम्हारे राजनेता इससे प्रसन्न हैं कि तुम जैसे हो ऐसे ही रहो। और जहां-जहां भी तुम्हारे राजनेताओं ने भूल कर ली है तुम्हें बदलने की, वहीं उनको बड़ी तकलीफ झेलनी पड़ी है।
अभी ईरान के शहंशाह की मृत्यु हुई। उस आदमी का एक ही कसूर था कि उसने ईरान को सुशिक्षित करने की, समृद्ध करने की, एक विश्व-शक्ति बनाने की चेष्टा की। उसने अपने इस दुष्कर्म का फल पाया।
इथोपिया के सम्राट हेलसियासी को उन्नीस सौ तीस में वैज्ञानिकों के एक
दल ने कहा कि अगर इथोपिया के लोगों को शुद्ध जल पीने मिलने लगे, तो इनकी बीमारियां कम हो जाएंगी, इनकी उम्र बढ़ जाएगी। इथोपिया में लोग बहुत ही गंदा जल पीते हैं। सड़क के किनारे जो गड्ढों में जल भर जाता है वर्षा का, वह भी पीते हैं। हेलसियासी हंसा और उसने कहा कि ये समझदारी की बातें तुम अपने पास रखो। मैं नहीं चाहता कि इथोपिया के लोग जैसे हैं इससे जरा भी बदलें, क्योंकि उनकी जरा सी भी बदलाहट अंततः मुझ पर परिणाम लाएगी।
सियासी बड़ी गजब की बात कह रहा था। था बुड्ढा बहुत होशियार! उसने कहाः मरने दो उनको मरना है तो। जल्दी मरते हैं, तो कोई हर्जा नहीं। बीमार रहते हैं, कोई हर्जा नहीं। मगर मैं किसी तरह की सामाजिक क्रांति अपने देश में

नहीं चाहता हूं और न किसी तरह की वैज्ञानिक प्रविधि का उपयोग करना चाहता हूं।
ईरान के शाह ने वही भूल की। सियासी के चरणों में बैठ कर उसको कुछ पाठ लेने थे। जिन लोगों को इसने शिक्षित किया, वे ही लोग इसकी जान के हत्यारे हो गए। आखिर ईरान में जो बगावत हुई है, वह विद्यार्थियों के द्वारा हुई है। और यह जान कर तुम हैरान होओगे कि ईरान के शाह ने सारी दुनिया में ईरान से विद्यार्थी भेजे। अरबों रुपये इन पर खर्च किए शिक्षा के लिए कि ये सुशिक्षित हो जाएं। मगर जैसे ही ये सुशिक्षित होते हैं, इनमें सींग निकलने शुरू हो जाते हैं। क्योंकि सोच-विचार शुरू हो जाता है। सोच-विचार शुरू होता है, तो सवाल उठता है कि लोकतंत्र चाहिए, यह तानाशाही नहीं चलेगी! यह बड़ी अजीब दुनिया है। इस दुनिया में राजनेता का हित यही है कि तुम गरीब रहो, अशिक्षित रहो, मूढ़ रहो। तुम जितने मूढ़ हो, उतना ही उसका बल है। जरा तुम अपने राजनेताओं की शक्लें तो देखो। एक से एक पहुंचे हुए पुरुष तुम्हारे राजनेता हैं, जिनको दो कौड़ी की समझ और प्रतिभा नहीं है। कोई मोरारजी देसाई अकेले ही नहीं; चरण सिंह, कोई किसी से पीछे हैं, कि जगजीवन रामबाबू, किसी से पीछे हैं! इन सबका आधार तुम्हारी मूढ़ता पर है। ये नहीं चाहते कि तुम समृद्ध होओ, विचारशील होओ। खतरा है। और तुम्हारे पंडित-पुरोहित, तुम्हारे महंत, तुम्हारे संत, तुम्हारे महात्मा, इन सबका तो एक ही आधार है कि संसार दुख है। ये कैसे संसार को सुख बनने दें? इनकी तो जमीन खिसक जाएगी। फिर ये कैसे लोगों को समझाएंगे कि आवागमन से छूटो? लोग कहेंगे कि महाराज, आप ही छूटो, हम तो बहुत मजे में हैं! हमें आवागमन से छूटना ही क्यों? हम तो पुनः-पुनः आना चाहते हैं।
रवींद्रनाथ ने यही की प्रार्थना कि हे मेरे प्रभु, तेरी दुनिया इतनी प्यारी है, तेरे फूल इतने सुंदर, तेरी तितलियों के रंग ऐसे, तेरे इंद्रधनुष, तेरा सूरज, तेरा चांद, तेरे तारे! मैं कैसे कहूं कि आवागमन से छुटकारा चाहता हूं? मेरी तो तेरे से एक ही प्रार्थना है कि मुझे बार-बार इस दुनिया में भेजते रहना। अनंत बार मुझे इस दुनिया में भेजते रहना।
अब तुम्हारे साधु-महात्माओं का रवींद्रनाथ से कहां मेल होगा? कैसे मेल होगा? और मैं कहता हूंः रवींद्रनाथ महर्षि हैं, और तुम्हारे साधु-संत गधे हैं। रवींद्रनाथ पते की बात कह रहे हैं, और यह दुनिया... अभी चांद-तारे जरूर सुंदर हैं, क्योंकि तुम उनको बिगाड़ नहीं पाए। और इंद्रधनुष भी अभी सुंदर हैं, क्योंकि तुम क्या करोगे इंद्रधनुषों पर? अभी इंद्रधनुष हिंदू नहीं, मुसलमान नहीं, ईसाई नहीं। अभी चांद-तारे चांद-तारे हैं; कोई जैन नहीं, कोई दिगंबर नहीं, कोई श्वेतांबर नहीं। लेकिन जमीन को तुमने बरबाद कर दिया। अगर यह जमीन फिर प्राकृतिक हो जाए, अगर यह जमीन फिर स्वाभाविक हो जाए, अगर तुम्हारे महंतों के बाड़े तोड़ दिए जाएं, अगर ये कारागृह मिटा दिए जाएं, अगर आदमी को विज्ञान के द्वारा बाहर की समृद्धि मिल जाए, और--धर्म के द्वारा--धर्म! हिंदू नहीं, मुसलमान नहीं, ईसाई नहीं, जैन नहीं, बौद्ध नहीं-- सिर्फ धर्म! एस धम्मो सनंतनो! धर्म का वह जो शाश्वत नैसर्गिक नियम है, जिससे व्यक्ति अपनी आत्मा में प्रवेश कर जाता है और स्वयं के केंद्र पर थिर हो जाता है। काश, उसका तुम्हें अनुभव हो जाए, तो क्या आवागमन से मुक्त होना है? क्यों होना है? किसलिए होना है?
मगर तब तुम्हारे पंडित-पुजारियों का क्या होगा? ये तो तुम्हारे दुख
पर जी रहे हैं। इनका धंधा ही गलत है। इनके धंधे में ही खतरा है। इनके धंधे में शड्यंत्र है।
एक रात एक शराबखाने में बहुत देर तक कुछ लोग डट कर शराब पीए, पीते ही गए, पीते ही गए, बहुत गुलछर्रे किए, नाचे-कूदे, धुआंधार शराब पी। जब आधी रात विदा होने लगे, तो शराबघर के मालिक ने अपनी पत्नी से कहा कि अगर ऐसे ग्राहक रोज-रोज आएं तो कुछ ही दिनों में अपनी अटारी खड़ी हो जाए। जो आदमी पैसे चुका रहा था, हंसने लगा। और उसने कहा कि रोज-रोज, अरे हम तो सुबह भी आएं, दोपहर भी आएं, शाम भी आएं। बस परमात्मा से यही प्रार्थना करो कि हमारा धंधा ठीक से चलता रहे।

तो दुकानदार ने कहाः जरूर प्रार्थना करेंगे कि परमात्मा तुम्हारा धंधा ठीक से चलाता रहे। लेकिन जब वह आदमी दरवाजे के बाहर निकल रहा था, तब दुकानदार ने कहाः लेकिन यह तो बता जाओ कि तुम्हारा धंधा क्या है?
उस आदमी ने कहाः यह तुम न पूछो तो अच्छा है। तुम तो प्रार्थना करना कि धंधा ठीक चलता रहे।
तब उसे और संदेह हुआ। उसने कहाः फिर भी, धंधा कम से कम मुझे बता दो ताकि मैं प्रार्थना करूं तो मुझे भरोसा तो रहे कि मैं किस चीज के लिए प्रार्थना कर रहा हूं।
तो उसने कहाः अब धंधा तो मेरा ऐसा है कि क्या कहूं! मरघट पर लकड़ी बेचने
का धंधा है। लोग रोज-रोज मरें तो मेरा धंधा चलता है। जितने ज्यादा मरें, उतना मेरा धंधा चलता है। इसलिए तुमसे कहता हूं, धंधा न पूछो। मेरा धंधा चलता रहे, लोग रोज-रोज मरते रहें। जितने ज्यादा लोग मरें, उतनी लकड़ी बिकती है। उतनी लकड़ी बिकती है, उतनी ही बचत होती है। उसी बचत की मजे-मौज हम कर लेते हैं। अभी यह जो गांव में हैजा फैला है, उसके कारण ही तो आज यह मजा-मौज चला। अब यह हैजा चलता रहे, चलता ही रहे, तो क्या कहने, रोज गुलछर्रे उड़ेंगे! दुनिया में ऐसे धंधे हैं जो तुम्हारे हैजे से चलते हैं, तुम्हारे मलेरिया से चलते हैं, तुम्हारे रोगों से चलते हैं। और इसी तरह के धंधे पंडित-पुरोहित चला रहे हैं।
मेरा जो विरोध होता है, उसका कुल कारण इतना है कि अगर मैं सच हूं, तो तुम्हारे सब पंडित-पुरोहित गलत हैं। यह संघर्ष बड़ा है। यह संघर्ष ऐसा कुछ नहीं है जैसा कि पुराने दिनों में था कि हिंदू मुसलमानों के विरोध में हैं, ईसाई हिंदुओं के विरोध में हैं, जैन बौद्धों के विरोध में हैं, बौद्ध सिक्खों के विरोध में हैं। यह कोई टुटपुंजिया संघर्ष नहीं है। मेरा संघर्ष ऐसा है कि अगर मैं सही हूं तो हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध, सिक्ख, उन सबके धर्मगुरु और उन सबका धर्म का जो फैलाव है, वह सब गलत है। अगर मैं सही हूं तो तुम्हारे सब संत-महंतों का जीवन-आधार खतरे में है। इसलिए मुझे वे जिंदा रहने दें, यह आसान नहीं।
तुम जल्दी करो। अगर मुझे समझना हो, तो जल्दी समझ लो। अगर मेरी बात पहचाननी हो, तो देर-अबेर न करो, कल पर मत टालो, क्योंकि कल का कोई भरोसा नहीं है। ये सारे संत-महंत और राजनीतिज्ञ मिल कर मुझे मिटाना ही चाहेंगे। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। मैं समझ पाता हूं कि इसमें कुछ अस्वाभाविक नहीं है। और उसका सीधा तो कारण है कि मैं जो कह रहा हूं--वह है इस पृथ्वी को स्वर्ग बनाने की कला। इसमें महात्मा गांधी राजी नहीं हो सकते। वे भी ऊपर के स्वर्ग की आशा लगाए बैठे हैं। उनको भी बैकुंठ जाना है।
मुझे बैकुंठ यहां लाना है! हो चुकी यह बकवास बहुत बैकुंठ जाने की। मरने के बाद की बातचीतसब धोखेधड़ी की बातचीत है। अभी हम जिंदा हैं। अगर हम जिंदा होने में स्वर्ग में नहीं हो सकते, तो मर कर क्या खाक हम स्वर्ग में होंगे?
मैं तुमसे कहता हूंः अभी तुम स्वर्ग में होना सीख लो। अगर मरने के बाद कोई स्वर्ग होगा, तो तुम्हें कम से कम स्वर्ग में होने की थोड़ी शैली तो आ जाएगी।
खलील जिब्रान ने ठीक कहा है। राजी हूं मैं उससे। खलील जिब्रान ने कहा
कि मत रोक ऐ धर्मगुरु, मुझे शराब पीने से, क्योंकि तूने ही लिखा है, तूने ही कहा है कि स्वर्ग में शराब के चश्मे बहते हैं, झरने बहते हैं। थोड़ी मुझे पी लेने दे, ताकि पीने की आदत बनी रहे। नहीं तो वहां कैसे एकदम पीऊंगा? थोड़ी- थोड़ी मुझे पीने दे, अभ्यास करने दे। मत रोक मुझे। थोड़ा डोलने दे, ताकि जब मैं वहां जाऊं तो जी भर कर पीऊं। और यहां तो कुल्हड़ों में पी रहा हूं, यहां तो जामों में पी रहा हूं; वहां तो फिर नदियां बह रही हैं। तो थोड़ा अभ्यास तो कर लेने दे। यह क्या तेरा फलसफा है कि यहां पीओ तो हराम है और वहां पीओ तो हलाल है! पीना वही है, पीने वाले वही हैं, पिलाने वाला वही है। यहां पीओ तो हराम है, वहां पीओ तो हलाल है! यह कैसा बेबूझ फलसफा है? यह कैसा जीवन-दर्शन है?

मैं अपने संन्यासियों को कहता हूंः यहां पीओ, यहां जीओ! जी भर कर जीओ,
जी भर कर पीओ। एक क्षण भी खाली न जाए, क्षण-क्षण के रस को आत्मसात कर लो, क्योंकि परमात्मा है--रसो वै सः! वह रस-रूप है। फिर उसे पीएंगे, अगर यहां पीने का अभ्यास रहा। तुम्हारे साधु-संत तो वहां भी नहीं पी सकेंगे। वे वहां भी अकड़े खड़े रहेंगे। वे कैसे पी सकते हैं? जिन्होंने कुल्हड़ों से न पी, वे झरनों से पीएंगे? जो कभी रिंद न बने, वे क्या खाक पीएंगे! और जब मैं शराब की बात करता हूं, तो मैं परमात्मा की ही बात कर रहा हूं। जीवन का आनंद बाहर भी है, भीतर भी है। दोनों तरफ पीओ, क्योंकि परमात्मा ही बाहर फैला है, परमात्मा ही भीतर है। ताकि तुम, आने वाला अगर कोई जीवन हो... मैं नहीं कहता कि विश्वास करो; होगा तो देखेंगे, नहीं होगा, तो हम यहां भी चूके नहीं, हम कुछ उसके सहारे बैठे नहीं हैं। मैं यहां आनंद में हूं। कल अगर मर कर कुछ भी न हो, कोई स्वर्ग न हो, कोई परमात्मा न हो, तो भी मैंने कुछ गंवाया नहीं। मगर जो उस आशा मैं बैठे हैं, उनकी हालत बड़ी बुरी हो जाएगी, बड़ी खस्ता हो जाएगी।
और अगर कोई परमात्मा हो, कोई स्वर्ग हो, कोई बहिश्त हो, कोई जन्नत हो, कोई बैकुंठ हो, तो भी तुम ख्याल रखना कि मेरे संन्यासी कतार में आगे रहेंगे, क्योंकि उनको पीना आएगा, जीना आएगा। वे वहां भी नाचेंगे, वे वहां भी गुनगुनाएंगे। और तुम्हारे साधु-संत-महंत, वहां भी पीछे खड़े रहेंगे-- उदास, मक्खियां उड़ाते हुए! क्योंकि उनकी हिम्मत भी नहीं पड़ेगी कि अब किस मुंह से पीएं, अब किस ढंग से जीएं, अब क्या करें, क्या न करें!
अब तुम सोचो, स्वामी नारायण संप्रदाय के ये प्रमुख स्वामी--प्रमुख महाराज--अगर ये स्वर्ग चले जाएं और उर्वशी सामने आ जाए, तो क्या करेंगे? एकदम घूंघट डालना पड़ेगा, इन्हीं को डालना पड़ेगा। उर्वशी तो घूंघट डालती नहीं, सुना नहीं, शास्त्रों में कहीं लिखा नहीं। ये प्रमुख महाराज को घूंघट डाल कर चलना पड़ेगा स्वर्ग में। जैसे मारवाड़ी औरतें दो अंगुलियों में से देखते रहती हैं घूंघट से, ऐसे प्रमुख महाराज देखते रहेंगे कि आदमी है कि औरत।
अभी उनका लंदन में हाथी पर जुलूस निकला है। और मैंने जब महंतों को गधा कहा, तो आज किसी ने प्रश्न पूछा कि श्री प्रमुख स्वामी जी का जुलूस लंदन में हाथी पर निकला, गधे पर क्यों नहीं? गधे पर इसलिए नहीं भैया, कि फिर लोग पहचानते कैसे कि कौन कौन है? हाथी पर गधे को बिठाल दो, अलग दिखाई पड़ेगा। अब गधे पर गधे को चढ़ा दो तो लोग पूछेंगे, इसमें स्वामी जी कौन हैं? मतलब, नमस्कार किसको करें? उसमें अड़चन होगी, और कोई बात नहीं। इसलिए हाथी पर बिठालना पड़ता है।
मगर ये स्त्रियों को न देखने वाले लोग अप्सराओं के साथ बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे। मेनका आ जाएगी और इनके प्राण निकले! उर्वशी गुजरी और इनके प्राण निकले! इनके कितने बार प्राण निकलेंगे, बड़ा मुश्किल है कहना। इन पर तो हार्ट अटैक पर हार्ट अटैक होते रहेंगे। इनको तो अगर स्वर्ग में कोई अस्पताल वगैरह हो, पुराणों में कोई चर्चा नहीं है, तो अस्पताल में ही रखना पड़ेगा, इमरजेंसी वार्ड में हमेशा। और वहां भी नर्सें होंगी। और बड़ी अड़चनें आने वाली हैं, बड़ी कठिनाइयां इनको पड़ने वाली हैं।
मैं तुम्हें जीवन की कला सिखा रहा हूं। महात्मा गांधी की जीवन-दृष्टि कोई जीवन-दृष्टि कहने योग्य नहीं है, न उनकी विचारधारा कुछ विचारधारा कहने योग्य है। एक राजनैतिक व्यक्ति हैं, इससे ज्यादा कुछ भी नहीं। न कभी ध्यान जाना, न कभी समाधि का अनुभव हुआ। जिंदगी भर व्यर्थ के कामों में अपने को संलग्न रखा। मगर जो भी किया, उसको जिद्द से किया। और इस देश में जिद्द का बड़ा सम्मान है। जिद्दी को हठयोगी कहते हैं। और यहां तुम जिद्द से कोई भी काम करो, तुम्हें दस-पचास शिष्य और अनुयायी मिल जाएंगे। और महात्मा गांधी तो इस परंपरा के परिपोषक थे, इसलिए खूब शिष्य और अनुयायी मिल गए। और इस देश के लोगों को बात बिल्कुल जंची। जंचने का कारण था, क्योंकि वही भाषा बोल रहे थे जो तुम बोल रहे हो।

एक बेटी अपने पिता से कह रही थीः पापा, मेरा प्रेम हो गया है। अब मेरा विवाह करवा दो इसी लड़के से। करूंगी तो इसी लड़के से। जीऊंगी तो इसी लड़के के लिए, नहीं तो मर जाऊंगी।
पापा ने कहाः बेटी, धीरज रख। शादी के पहले, यह तो पता कर ले कि लड़का क्या काम करता है, उसकी कितनी जायदाद है?
बेटी ने कहाः ओह पापा, आप उससे मिल कर जरूर खुश होंगे, क्योंकि वह भी बिल्कुल यही बातें आपके बारे में पूछ रहा था।
भाषा वही है। लड़का भी यही पता लगा रहा है कि बाप की क्या हालत है, जायदाद कितनी है? बाप भी यही पता लगा रहा है, लड़के की क्या हालत है, जायदाद कितनी है? भाषा ठहर गई है।
इस देश की भाषा को ठहरे पांच हजार साल हो गए; डबरा हो गई है इस देश की भाषा। नदी तो कब की खो गई, डबरों में हम सड़ रहे हैं! और मैं तुम्हें पुनः सरिताएं बनाना चाहता हूं, तो तुम्हें अड़चन आनी स्वाभाविक है। मेरी बात तुम्हें चोट करती है, तुम्हें तिलमिलाती है, तुम्हें बेचैन करती है, तुम क्रुद्ध हो जाते, तुम क्रोध में इस तरह की बातें कहने लगते हो जो कि तुमने सोची नहीं है।
अब तुम कह रहे होः "तब क्यों आप उसका अंध-समर्थन करते हैं?"
मैंने अपने जीवन में किसी चीज का अंध-समर्थन नहीं किया, न अंध-विरोध किया। करना भी चाहूं तो नहीं कर सकता, क्योंकि ध्यान आंख है और ध्यान के अतिरिक्त और कोई आंख नहीं है। और समाधि तो परम दृष्टि है। समाधि का एक बार अनुभव हो जाए, तो तुम्हारे जीवन में कुछ भी अंधापन रह नहीं जाता--रह नहीं सकता है!

आखिरी प्रश्नः ओशो, नहा-धो कर आ गई हूं। आपका दुलार तो बहुत ही मिला,
अब थोड़ी सी पी-गई भी कर दो।

कृष्ण शोभना! यह अच्छा किया कि नहा-धो कर आ गई। नहाने-धोने का अर्थ तुम समझ लो, क्योंकि तुम समझ न पाओगे। कृष्ण शोभना जरा सधुक्कड़ी भाषा बोल रही है; जरा बारीक और महीन बात कह रही है।
कृष्ण शोभना को मैंने निश्चित इतना प्रेम दिया, जितना बहुत कम लोगों
को दिया। मगर अक्सर यह हो जाता है कि जब प्रेम मुफ्त मिल जाए तो हम उसका अर्थ नहीं समझ पाते, उसका मूल्य नहीं समझ पाते। वही कृष्ण शोभना के जीवन में हुआ। मैंने इस देश में न मालूम कितने लोगों को प्रेम दिया, बेशर्त प्रेम दिया! और दे-दे कर बार-बार यह अनुभव किया कि जितना प्रेम लोगों को दो, उतना ही लोग समझने में असमर्थ हो जाते हैं। क्योंकि मेरे प्रेम में कोई शर्त नहीं है, कोई मांग नहीं है, उन्हें कोई मूल्य नहीं चुकाना पड़ता, उन्हें कोई पात्रता भी सिद्ध नहीं करनी पड़ती। मैं देता हूं, क्योंकि मैं प्रेम से भरा हूं। उनकी पात्रता-अपात्रता का कोई प्रश्न ही नहीं है। मैं देता हूं, क्योंकि मेरे पास है। मैं देता हूं, क्योंकि देने से बढ़ता है। मगर तब मुझे यह दिखाई पड़ना शुरू हुआ कि उनको मिल नहीं पाता। वे ले नहीं पाते। या वे धीरे-धीरे आदी हो जाते हैं--ऐसा कि यह तो मेरा स्वभाव है। वे मूल्य से वंचित हो जाते हैं। वे कीमत नहीं आंक पाते। वे उस प्रेम को अपने हृदय में विराजमान नहीं कर पाते। फिर मुझे मजबूरी में अपने हाथ हटा लेने पड़े। फिर मुझे मजबूरी में लोगों से अपने को तोड़ना शुरू करना पड़ा। तब लोगों को सूझ-बूझ आनी शुरू हुई।
लोग अजीब हैं। जब चीजें खो जाएं, तब उन्हें पता चलता है। जो मिलता रहे, उसको तो वे अंगीकार ही कर लेते हैं कि जैसे यह हमारा अधिकार है। जब खो जाता है तब रोते हैं, तब पछताते हैं। वैसे ही कृष्ण शोभना पछताई और रोई। जब प्रेम मिल रहा था तो यह भी हालत आ गई कि उसने संन्यास भी छोड़ दिया। क्योंकि प्रेम मिल ही रहा था तो संन्यास का मूल्य भी उसको समझ में न आया। लेकिन अब मैंने अपने हाथ खींच लिए हैं। अब मैं बहुत सोच-समझ कर एक-एक कदम उठा रहा हूं। इसलिए नहीं कि कंजूस हो गया हूं; इसलिए कि यही एक उपाय है कि मैं तुम्हारा हृदय आनंद से भर सकूं, और कोई उपाय नहीं है। नहीं तो तुम चूक ही

जाओगे--मैं बरसता रहूंगा, तुम्हारे घड़े उलटे रखे रहेंगे। अब मुझसे मिलना भी मुश्किल हो गया। अब मैं किसी को मिलता भी नहीं। अब बात भी करनी बंद कर दी। यूं धीरे-धीरे अपने को हटाए चला जा रहा हूं। जल्दी ही बोलना भी बंद कर दूंगा। तभी तुम समझ पाओगे। जैसे-जैसे दूर हटूंगा, तभी तुम्हारी समझ में आएगा कि अरे कितना मिल रहा था, हम लिए नहीं!
और यह कोई कृष्ण शोभना के अकेले के साथ ही नहीं हुआ, बहुतों के साथ हुआ है। अभी स्वामी आनंद वापस आ गए हैं। अभी कुछ दिन पहले संन्यास छोड़ कर चले गए थे। छोड़ कर तो यूं अकड़ में गए थे कि जैसे कुछ पा लिया। अब लौट आए हैं। अब शर्म से आंखें झुकी जा रही हैं। लेकिन अब पुनः प्रवेश इतना आसान नहीं। अब तो कीमत चुकानी पड़ेगी। जब गए थे तब तो यूं गए थे कि क्या बात है, फिर आ जाएंगे, फिर संन्यास ले लेंगे, संन्यास में कोई कठिनाई है?
मगर पहली दफा तो संन्यास मैं बड़ी सरलता से दे देता हूं, दूसरी बार मुश्किल हो जाती है। दूसरी बार मैं कठोर हो जाता हूं। कठोर मैं हूं नहीं, इसलिए होना पड़ता है, चेष्टा करनी पड़ती है। चले तो गए थे यू.जी. कृष्णमूर्ति के साथ; न खुद चले गए थे, बल्कि औरों को भी समझाते थे। यहां भी कुछ और दूसरे भी बुद्धू थे, जो आनंद के साथ उत्सुक हो गए थे। किरण को भी भरमाया था, चैतन्य भारती को भी भरमाया था, हिम्मत भाई को भी भरमाने और उलझाने वाले आनंद ही थे। लेकिन अब अकल आ गई। अब बात समझ में आ गई कि आनंद, तुम आनंद ही हो, परवीन बॉबी नहीं! यू.जी. कृष्णमूर्ति परवीन बॉबी को लेकर नदारद हो गए। अब आनंद बैठे हैं, सोच रहे हैं कि परवीन बॉबी को जैसे लेकर नदारद हुए, ऐसे ही इनको भी लेकर नदारद हो जाएंगे। अब अकल आई थोड़ी।
हिम्मत भाई तो पहले ही भाग आए। हिम्मत भाई की गिनती मैं हमेशा "दूध की दुहनियां" में करता हूं। मेरे गांव का यह शब्द है। तुम्हें इसका शायद अर्थ पता न हो। मेरे गांव में यूं है कि जब बच्चे खेल खेलते हैं तो छोटे-छोटे बच्चे भी आते हैं, वे कहते हैं, हम भी खेलेंगे। और वे बीच-बीच में ऊधम मचाते हैं, उछल-कूद करते हैं, इधर-उधर घुस आते हैं। खेल को खराब करते हैं। तो मेरे गांव में यह रिवाज है कि बड़े बच्चे कहते हैं, अच्छा खेलो। लेकिन सबको कह देते हैंः यह दूध की दुहनियां है। दूध की दुहनियां का मतलब यह कि मतलब इसकी कोई कीमत नहीं करना, इसको उछलने दो, कूदने दो, मतलब इसको गंभीरता से मत लेना; यह कोई खेल का हिस्सा नहीं है। मगर यह मानेगा नहीं, जाएगा नहीं, रोएगा-चिल्लाएगा। मां-बाप को लिवा लाएगा और झंझट खड़ी करेगा, तो इसको यह भ्रम रहने दो कि खेल, तू भी खेल का हिस्सा है, मगर इसको कोई गंभीरता से लेना मत, इस पर खेल निर्भर नहीं है। उसको दूध की दुहनियां कहते हैं। जैसे दूध के दांत होते हैं न कच्चे, जिनका कोई मूल्य नहीं, जो टूट ही जाने वाले हैं, ये कोई असली दांत नहीं हैं--नकली खिलाड़ी, बचकाने खिलाड़ी।
हिम्मतभाई की कीमत तो बस दूध की दुहनियां की है। वे तो कई बार आए-गए,
सो उनको मैं कोई गिनती में लेता नहीं। जब उनको आना हो आ जाते हैं, जब जाना हो चले जाते हैं। आते रहेंगे, जाते रहेंगे, वे तो यूं ही समय गंवाते रहेंगे। मगर वे जल्दी लौट आए। हैरानी मुझे हुई कि वे दूध की दुहनियां हैं, मगर फिर भी जल्दी लौट आए। मगर आनंद अपने अहंकार में अकड़े बैठे रहे। अब आए हैं। अब उनको साफ हो गया कि परवीन बॉबी नहीं हैं। मगर अब आसान नहीं है, आनंद। ऐसे नहीं लूंगा। जो हरकतें करके गए हो, उनको ख्याल करो। और जिन और दूसरे नासमझों को तुम भड़का रहे थे, उनका ख्याल करो। उन सबसे क्षमा मांगो। और जिन-जिन को तुमने जाकर उलटी-सीधी बातें कही थीं, उनसे माफी मांगो कि तुमने गलती की थी और तुम मूर्खतापूर्ण बातें कर रहे थे। तो वापस प्रवेश मिलेगा।
ऐसे ही शोभना भी चली गई थी। जो वह कह रही है कि "भगवान, नहा-धो कर आ गई हूं।" अब वह यह कह रही है कि उस सब कचरे को मैं बहा कर आ गई हूं। "आपका दुलार तो बहुत ही मिला... ।" लेकिन यह पहचान शोभना, तुझे अब आई, तब नहीं! तब आती तो आज न मालूम कहां होती। मगर चलो, देर-अबेर आई, सुबह का भूला सांझ भी घर आ जाए तो कुछ बुरा नहीं।
अब तू कहती हैः "अब थोड़ी सी पी-गई भी कर दो।"

मैंने तो बहुत पिलाया था, तब तो तूने ओंठ भी न खोले। पिलाने को अब भी राजी हूं, मगर अब पीने के लिए पात्रता जुटानी पड़ेगी। तब तो तू पात्र थी या अपात्र, मैंने पूछा भी नहीं था। अब सिर्फ तेरी प्रार्थना से पी-गई नहीं कर सकता हूं। अब तो पात्रता के साथ प्रार्थना होगी तो ही पी-गई हो सकती है। अब ऐसे मैं कठोर होता जा रहा हूं और कठोर मुझे होना ही पड़ेगा। पर तू नहा-धो कर आई, यह अच्छा है। यह सिर्फ कहना ही न हो, ख्याल रखना, सच में ही नहा-धो कर आ गई हो।
एक बच्चे ने अपने पिताजी से पूछाः पिताजी, हम लोग जासूस-चोर का खेल खेल रहे हैं और मैं जासूस हूं। कुछ तरकीब बताएं मैं किसी को पहचान में न आ सकूं। बेटे, बाप ने कहाः साबुन से मुंह धो लो, फिर कोई तुम्हें नहीं पहचान पाएगा।
तो मैं सोचता हूं कि तू बिल्कुल साबुन से मुंह धोकर आ गई होगी। पुरानी पहचान छोड़। पुराना तादात्म्य छोड़। पीना भी हो जाएगा।
एक शराबी अपने मित्रों से कह रहा था। आजकल शक्ल बहुत धोखा देती है। एक बार एक साहब मुझे विनोद खन्ना ही समझ बैठे।
दूसरा बोलाः यह तो क्या, कुछ भी नहीं। एक सज्जन मुझे मोरारजी देसाई समझ बैठे। मैं शराब पी रहा था, वे समझे कि स्वमूत्र पी रहा हूं।
तीसरा बोलाः अरे छोड़ो, यह कुछ भी नहीं। जब मैं पांचवीं बार जेल गया, तो जेलर बोलाः हे भगवान, तो तू फिर आ गया!
पीना भी हो जाएगा, बिल्कुल घबड़ा मत। लेकिन अब पात्रता जुटा। अब मुफ्त में नहीं हो सकता है।

आज इतना ही।

बहुरि न ऐसो दांव
तीसरा प्रवचन

सारे धर्म मेरे हैं

पहला प्रश्नः ओशो, आपने उस दिन हमारे पूज्य आचार्य श्री तुलसी को भोंदूमल कहा तथा मुनि श्री नथमल को थोथूमल कहा तथा अन्य साधुओं को गधा कहा। जब आप हमारे पूज्य मुनियों और साधुओं को ऐसी गालियां देते हैं तो आपका विरोध क्यों न हो? भगवान महावीर ने तो साधुओं, मुनियों, सिद्धों, आचार्यों और उपाध्यायों को नमस्कार कहा है, जिसका आपने महावीर-वाणी के एक प्रवचन में समर्थन भी किया है। फिर यह विरोधाभास क्यों?

हीरालाल जैन! महावीर ने निश्चय ही अरिहंतों को, सिद्धों को, आचार्यों को, उपाध्यायों को, साधुओं को नमस्कार कहा है। लेकिन भोंदूमल या थोथूमल, इनमें से कोई भी नहीं--न अरिहंत हैं, न सिद्ध हैं, न आचार्य हैं, न उपाध्याय हैं, न साधु हैं।
फिर भोंदूमल को भोंदूमल कहने में गाली कहां है? गुलाब को गुलाब कहने में गाली नहीं, तो गधे को गधे कहने में गाली कैसे हो जाएगी? जो जैसा है उसको वैसा ही कहना उचित है, उससे अन्यथा कहना असत्य है।
महावीर ने भी कुगुरु, कुशास्त्र, कुदेव की भरपूर आलोचना की है, कठोर
से कठोर आलोचना की है। "कुदेव" उसे कहा है जो मनुष्य द्वारा कल्पित है, जो वस्तुतः है नहीं। तुम्हारे हनुमान जी, गणेश जी और हजारों देवी-देवता, सब कुदेव हैं। ये तुम्हारी कल्पनाएं हैं, इनका कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं है। और कैसी-कैसी बचकानी कल्पनाएं हैं! और कैसी मूढ़ता कि आदमी होकर बंदरों को पूज रहे हो, कि आदमी होकर हाथी की सूंड़ वाले गणेश को पूज रहे हो और जय गणेश, जय गणेश कहते थकते नहीं! शर्म भी नहीं आती, लज्जा भी नहीं लगती! विचार भी नहीं उठता कि मैं क्या कर रहा हूं! काली को पूज रहे हो, बकरे काट रहे हो। कलकत्ते की काली के सामने जितना खून बहा है, शायद दुनिया में किसी मंदिर में नहीं बहा होगा। और उस खून से सराबोर प्रसाद को पाने के लिए लोग पागलों की तरह दीवाने हो उठते हैं, ऐसी भीड़ लगती है! जरा सा प्रसाद मिल जाए, खून से सराबोर, तो जीवन धन्य हो गया! इनको महावीर ने कुदेव कहा है। "कुशास्त्र" कहा है उन शास्त्रों को जो ऐसे लोगों के द्वारा लिखे गए हैं, जिन्होंने सत्य का कोई अनुभव नहीं किया है। जिन्होंने सत्य को नहीं जाना, वे सत्य के संबंध में जो कुछ भी कहेंगे-लिखेंगे, वह झूठ होगा। सच तो यह है कि सत्य को जानने वाला भी सत्य को कहने में असमर्थ अनुभव करता है अपने को। लाओत्सु ने कहा हैः सत्य को कहा कि वह असत्य हुआ। क्योंकि शब्द बहुत छोटे हैं और सत्य बहुत विराट। सत्य को जानने वाले सत्य को कहने में संकोच अनुभव करते हैं। फिर उनकी तो गिनती कहां करोगे, जिन्होंने जाना ही नहीं और कहते रहे हैं, कहते रहे हैं? उनको कुशास्त्र कहा है।
दुनिया में शास्त्र बहुत कम हैं; सौशास्त्रों में एकाध शास्त्र मुश्किल से। उस एकाध शास्त्र में भी अगर सौश्लोक हों तो एकाध श्लोक सत्य होगा। तुम जरा अपने वेदों को उठा कर देखो। सौ में निन्यानबे सूत्र धर्म से कोई संबंध ही नहीं रखते--शुद्ध अधार्मिक हैं। कोई प्रार्थना कर रहा है इंद्र से कि मेरे खेत में वर्षा ज्यादा कर देना और पड़ोसी के खेत में कम; मेरी गायों के थन में दूध ज्यादा आ जाए और दुश्मनों की गायों के थनों का दूध सूख ही जाए; कि हे प्रभु, मुझे शत्रुओं पर विजय दिला और मेरे शत्रुओं को ऐसी मात दिला कि उन्हें पाठ मिल जाए। इन सब बातों का धर्म से कोई संबंध हो सकता है? तो महावीर ने वेदों की स्पष्ट आलोचना की, उन्हें कुशास्त्र कहा।
हिंदुओं ने जैनों का विरोध क्यों किया है? इसीलिए कि जैन वेद-विरोधी हैं। हिंदुओं ने जैनों के विरोध में हजारों साल लगाए हैं, उसका कुल कारण इतना है कि जैन न तो हिंदू देवताओं को मानते, न हिंदू शास्त्रों को। और इन शास्त्रों को मानने वाले और इन देवताओं को पूजने वालों को और पूजा करवाने

वालों को कुगुरु कहा है। तो मैंने अगर किसी को भोंदूमल और थोथूमल कहा, तो क्या चिंता कर रहे हो?
अरिहंत का अर्थ होता है, जो सत्य के साथ एक हो गया। सत्य के साथ जो एक
हो गया है, वह पूछेगा कि मैं ध्यान कैसे करूं? और भोंदूमल ने यही मुझसे पूछा कि ध्यान कैसे करूं? सत्य के साथ जो एक हो गया है, अब क्या ध्यान? स्वस्थ जो हो गया है, अब क्या औषधि?
अरिहंत परम अवस्था है भगवत्ता की।
ध्यान रहे, महावीर ने भगवान का कोई अस्तित्व नहीं माना है। निश्चित
ही जो भगवान को मानते हैं, उन सबको चोट पड़ी होगी; जैसी चोट हीरालाल जैन को पड़ गई। तिलमिला गए होंगे। महावीर को नास्तिक कहा है हिंदुओं ने। और हिंदुओं की नास्तिक की व्याख्या यही है--जो वेद को न माने, ईश्वर को न माने, अब और नास्तिकता क्या होगी? हिंदुओं ने जैन धर्म को धर्म नहीं माना है; धर्म की आड़ में नास्तिकता माना है। कारण? कारण स्पष्ट है। महावीर ने भगवत्ता स्वीकारकी है, भगवान को स्वीकार नहीं किया। और मैं उनसे राजी हूं।
यह अस्तित्व भगवत्ता से भरा हुआ है। भगवत्ता एक गुण है, व्यक्ति नहीं। फूलों की गंध में भगवत्ता है। यह वर्षा की बूंदाबांदी में भगवत्ता है। कहीं सोई है, कहीं जागी है। जब जाग जाती है तो अरिहंत; जब सोई होती है तो हमें पहचान में नहीं आती। चट्टानों में भी भगवत्ता सोई हुई है, क्योंकि उनमें भी जीवन है। जहां जीवन है वहां भगवत्ता की संभावना है। लेकिन जिनमें जागी न हो और वे इस तरह के दावे कर रहे हों कि जाग गई है, उनको अगर भोंदूमल न कहो तो और क्या कहो?
मुझसे एकांत में जैन मुनि मिलते हैं तो पूछते हैं कि आत्मा को कैसे पहचानें और रोज सुबह-शाम आत्मा की ही चर्चा करते हैं।
एक धर्म-सभा में चंदन मुनि मुझसे पहले बोले। आत्मा की खूब शास्त्रीय व्याख्या की, लोगों को बड़ी उत्प्रेरणा दी आत्म-ज्ञान की। लेकिन उनकी प्रत्येक बात से लग रहा था कि यह सब बात शास्त्रीय है, शाब्दिक है, तोते जैसी है। उनकी आंखों में आत्म-बोध की कोई झलक, उनके शब्दों में आत्म-भाव का कोई गीत, उनके उठने-बैठने में आत्म-अनुभूति का कोई सौंदर्य, कुछ भी नहीं है। मैं उनके पीछे बोला तो मैंने कहा कि अगर चंदन मुनि ईमानदार आदमी हैं तो उन्हें स्वीकार करना चाहिए कि वे जो कह रहे हैं, सिर्फ कह रहे हैं, जाना नहीं है। बहुत तिलमिलाए। वहां तो स्वीकार न कर सके। लेकिन आदमी अच्छे हैं, उनको मैं भोंदूमल नहीं कहूंगा। वे भी तेरापंथी साधु हैं, उनको थोथूमल भी नहीं कहूंगा। थोड़े हिम्मतवर तो कम हैं, लेकिन दोपहर मुझे खबर भेजी कि मिलना चाहता हूं। और जब मैं उनसे मिला तो उन्होंने कहा कि मुझे क्षमा करें, मैं वहां साहस न जुटा सका कहने का। लेकिन मैं बेचैन रहा। यह बात मुझसे किसी ने कभी कही ही नहीं। और आपने यूं कह दी कि छाती में तीर की तरह चुभ गई। और जबतक मैं आपसे निवेदन न कर दूं सत्य का, यह तीर चुभा रहेगा और प्राणों में मेरे पीड़ा होती रहेगी।
उनकी आंखों में आंसू थे और उन्होंने मुझसे कहा कि मुझे आत्मा का कोई
भी पता नहीं है। जोशास्त्रों में पढ़ा वही दोहराता हूं। आप मुझे बताएं, आत्मा को कैसे जाना जा सकता है?
इस व्यक्ति को मैं थोथूमल नहीं कहूंगा। इस व्यक्ति को भोंदूमल भी नहीं कहूंगा। इस व्यक्ति को मैं मुमुक्षु कहूंगा, जिज्ञासु कहूंगा, सत्य का खोजी कहूंगा। यह व्यक्ति साधक है, तो कभी साधु हो सकता है। और साधु हो जाए तो अरिहंत होना भी दूर नहीं।
लेकिन आचार्य तुलसी को इतना ईमानदार नहीं मानता हूं। जो मेरा उनका अनुभव आया, उसमें चालबाजी, राजनीति, कूटनीति, वे सब तो मुझे दिखाई पड़ी बातें, आत्मानुभव बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ा। और जो उन्होंने मुझसे पूछा, वे प्रश्न ही सूचक थे इस बात के। मैंने आज तक किसी से नहीं पूछा कि ध्यान कैसे करूं, क्यों पूछूं? क्या जरूरत पूछने की? मैंने किसी से नहीं पूछा कि आत्मा को कैसे पाऊं। एक मैंने कस्त कर ही लिया था अगर आत्मा मेरे भीतर है तो किसी से क्या पूछना है? खोजूंगा, तलाशूंगा, टटोलूंगा। देर-अबेर मिलेगी

ही मिलेगी। अगर मेरे ही भीतर है तो खोदता रहूंगा, खोदता रहूंगा। जो भी कीमत चुकानी होगी, चुका दूंगा।
पूछने का अर्थ ही यही है कि अभी कुछ पता नहीं और ध्यान पर रोज बोल रहे हैं, समाधि पर व्याख्यान चल रहे हैं। हजारों लोगों को उत्प्रेरण दे रहे हैं। अनुशास्ता हैं अणुव्रत के। सात सौ साधुओं के गुरु हैं। पाया कुछ भी नहीं। अरिहंत होते तो मैं भी कहता कि जरूर उनको नमस्कार करना चाहिए। ठीक कहा महावीर ने। "नमो अरिहंताणं! नमस्कार करता हूं अरिहंतों को।" लेकिन अरिहंतों को। महावीर ने कृष्ण को भी नमस्कार नहीं किया है, तो ये भोंदूमल को क्या नमस्कार करेंगे? जैन शास्त्रों ने कृष्ण को नरक में डाला है; भोंदूमल को कहां डालूं, तुम बोलो। सातवें नरक में डाला है, उसके आगे कोई नरक नहीं। और थोड़े दिनों के लिए नहीं डाला है; यह सृष्टि जब तक चलेगी, तब तक नरक में वे रहेंगे। इस सृष्टि के समाप्त होने पर, जब महाप्रलय होगी तभी वे नरक से मुक्त होंगे।
यह समझ में आने वाली बात है। जैनों को लगा कि जिस व्यक्ति ने महाभारत
का युद्ध करवाया, उस व्यक्ति की और क्या सजा हो सकती है? वे हिम्मतवर लोग थे, हिम्मतवर दिन थे। अब तो लल्लो-चप्पो के दिन आ गए हैं। हर कोई हर किसी की चमचागिरी कर रहा है। एक-दूसरे की चमचागिरी लोग कर रहे हैं। कोई सत्य बोलता नहीं। वे कहते हैं कि आप महान हैं; दूसरा भी कहता है आप महान हैं। एक कहता है मैं आपके सामने कुछ भी नहीं; दूसरा कहता है मैं आपके सामने कुछ भी नहीं। सभी लखनवी हो गए हैं। शिष्टाचार चल रहा है; सत्य बोलने की हिम्मत नहीं। महावीर को शिष्टाचार नहीं था, जिन्होंने यह हिम्मत की कि कृष्ण को नरक में डाल दिया। इनकी छाती को धन्यवाद देना होगा। यह कोई छोटा-मोटा काम नहीं था। हिंदुओं के देश में, हिंदुओं के पूर्णावतार को नरक में डालना... मैं नहीं कहता कि यह ठीक है या गलत; मैं सिर्फ इतना कह रहा हूं कि महावीर को जो ठीक लगता था वह उन्होंने कहा। और यह कहने का प्रत्येक व्यक्ति को हक है।
मैं तो जब आचार्य तुलसी को मिला तो जो बात मेरे मन में पहली बार उठी,
वह यह थी कि यह आदमी निपट भोंदू है। जो बात मेरे मन में उठी, वह मुझे कहने का हक है। उनके मन में जो उठी हो वे कहें। उसमें मुझे कुछ एतराज नहीं।
तुम पूछते होः "आपका विरोध क्यों न हो?"
जरूर हो, जी भर कर हो। वही तो मैं चाहता हूं। मेरे अपने हिसाब हैं। मेरे काम करने के अपने ढंग हैं। मैं तो चाहता हूं जितने विरोधी पैदा हो जाएं उतना अच्छा है। यह सारा मुल्क एक ही चिंतना से भर जाए--या तो मेरे पक्ष में या मेरे विपक्ष में। यह सारी पृथ्वी पर एक ही विभाजन की रेखा हो जाए--या तो मेरे साथ या मेरे खिलाफ। यही चाहता हूं, क्योंकि उससे चिंतन पैदा होगा, विचारणा पैदा होगी। लोग मंथन करेंगे कि बात में क्या सच है और क्या झूठ है? आखिर इतने लोग क्यों चिंतन कर रहे हैं? क्यों इतने लोग विरोध में हैं, क्यों इतने लोग पक्ष में हैं? मैं तो बांट देना चाहता हूं सारी दुनिया को।
तो जरूर हीरालाल जैन, खुशी से विरोध करो, जी भर कर विरोध करो। मुझे विरोध से कोई एतराज नहीं। मजा आ जाएगा! तुम विरोध करोगे तो मैं कोई चुप रहने वाला हूं? तुम सुई उठाओगे तो मैं तलवार उठाऊंगा। मुझे कुछ अड़चन नहीं है विरोध इत्यादि से। उसका मैं सामना कर सकता हूं भलीभांति।
अरिहंतों को जरूर नमस्कार है। लेकिन महावीर ने बुद्ध को भी नमस्कार नहीं किया है, कृष्ण को भी नमस्कार नहीं किया है, राम को भी नमस्कार नहीं किया है। इनमें से किसी को अरिहंत नहीं माना है। और तुम सोचते हो कि आचार्य तुलसी और मुनि नथमल, ये अरिहंत हैं? अरिहंत का अर्थ है: जो सत्य के साथ एक हो गया, भगवत्ता को उपलब्ध हो गया।
अरिहंत के ही समकोटि का व्यक्ति है: सिद्ध। इसलिए दूसरा सूत्र हैः "नमो सिद्धाणं! सिद्धों को नमस्कार।" अरिहंतों और सिद्धों में थोड़ा सा भेद है। अरिहंत वे हैं जिन्होंने जाना और जो जनाने में भी कुशल हैं; जिन्होंने जीया और जो दूसरों को जीने के लिए अनुप्रेरित कर सकते हैं; जो जागे और दूसरों को जगा सकते हैं। सिद्ध भी अरिहंत की ही अवस्था में हैं;

भेद इतना है कि वे स्वयं जाग गए लेकिन किसी को जगा नहीं सकते। उन्होंने स्वयं जान लिया, रस पी लिया, मस्त हो गए। अब उन्हें कोई फिकर नहीं किसी को और रस पिलाने की।
कबीर ने कहा हैः "हीरा पायो गांठ गठियायो, बाको बार-बार क्यों खोले!"
यह सिद्ध की अवस्था है। अब मिल गया हीरा, अपनी गांठ में गठियाया, अब बार-बार खोलो, कोई चुरा ले जाए, कोई झटक ले, कोई झंझट खड़ी हो। क्यों उसे बार-बार खोलना? अलग-अलग प्रवृत्तियों के लोग हैं।
बुद्ध ने इस भेद को बोधिसत्व और अर्हत का भेद कहा है। जिसको महावीर ने अरिहंत कहा है, उसको बुद्ध ने बोधिसत्व कहा है--जो दूसरों के भीतर बुद्धत्व को जगाए। और जिसको महावीर ने सिद्ध कहा है, उसको बुद्ध ने अर्हत कहा है--जो किसी और को जगाने की चिंता में नहीं पड़ता; जो जाग गया, बात पूरी हो गई; यात्रा समाप्त हो गई, मंजिल पर आ गया, विश्राम मिल गया। अब क्या करना है? उस पार निकल गया है, अब लौट कर नहीं आता पुकारने। पहुंच गया शिखर पर; अब चिल्लाता नहीं घाटी में भटकते हुए लोगों के लिए।
ये व्यक्ति-व्यक्ति के भेद हैं। सिद्ध अंतर्मुखी होता है।
पश्चिम के बड़े मनोवैज्ञानिक कार्ल गुस्ताव जुंग ने दो भेद किए हैं मनुष्यों के बीच--अंतर्मुखी और बहिर्मुखी। सिद्ध अंतर्मुखी होता है। अर्हत अंतर्मुखी होता है। उसने पा लिया, अपने भीतर बंद हो जाता है; जैसे कि भौंरा कमल पर बैठ कर रस पीता है, सांझ जब कमल बंद होता है तो भौंरा कमल के भीतर ही बंद हो जाता है। उड़ता भी नहीं, पीता ही रहता है रस। कमल बंद हो जाता है, उसको फिकर भी नहीं है। ऐसा सिद्ध कमल के भीतर बंद भौंरा है। उसकी गुन-गुन भी तुम्हें सुनाई न पड़ेगी। रस तो जी भर कर पी रहा है। डूबा हुआ है रस में।
लेकिन अरिहंत बहिर्मुखी व्यक्ति है। उसने जाना है, लेकिन जानने के साथ-साथ उसके भीतर एक प्रगाढ़ करुणा उठी है कि जो भटक रहे हैं उन्हें भी राह सुझा दे।
न तो तुम्हारे भोंदूमल, थोथूमल अरिहंत हैं, न सिद्ध हैं।
तीसरा सूत्र हैः "नमो आयरियाणं! आचार्यों को नमस्कार।"
पहले दो व्यक्ति धर्म के जगत के हैं। दूसरे दो व्यक्ति आचार्य और उपाध्याय नीति के जगत के व्यक्ति हैं। आचार्य का अर्थ हैः जिसने सुना है अरिहंतों से और उसको अपने आचरण में उतार रहा है। आचार्य शब्द का अर्थ ही यह होता है कि जो उसको आचरण में उतार रहा है। सुना है अरिहंतों से। बैठा है अरिहंतों के पास। समझा है उनसे जिन्होंने समझ लिया। और अब उसको अपने आचरण में उतार रहा है। अरिहंत आचरण में नहीं उतारता। उसके भीतर तो दीया जलता है, वही उसका आचरण है। सिद्ध आचरण में नहीं उतारता; उसके भीतर जो घटा है, वही उसके बाहर घटने लगता है।
आचार्य वह है जिसके भीतर तो कुछ नहीं घटा है, लेकिन किसी अरिहंत के चरणों में झुका है, किसी सिद्ध के पास बैठा है, किसी अरिहंत की गंध उसे मिली है। इतना उसे सबूत हो गया है कि यह पारलौकिक जगत है। लेकिन यह प्रमाण अभी दूसरे से मिला है, अपना अनुभव नहीं है। फिर भी वह इसे अपने आचरण में उतारने की कोशिश कर रहा है। उसको आचार्य कहा है।
न तो तुम्हारे तुलसी किसी अरिहंत के पास बैठे हैं और न किसी सिद्ध के पास बैठे हैं। इनको मैं आचार्य भी नहीं कह सकता हूं।
मेरी बातों को तुम ठीक से साफ-साफ समझ लो। और जब समझ रहे हो तब क्रुद्ध
मत हो जाना, नहीं तो समझ नहीं पाओगे। इनको मैं आचार्य भी नहीं कह सकता हूं।
ये किसी अरिहंत के पास नहीं बैठे हैं, न किसी सिद्ध के पास बैठे हैं। इन्होंने किसी सदगुरु का सत्संग नहीं किया है।
चौथी व्यवस्था है उपाध्याय की--"नमोउवज्झायाणं! उपाध्यायों को नमस्कार करता हूं।"
उपाध्याय और भी नीची कोटि है। यह न तो सिद्धों के पास बैठा, न अरिहंतों के पास बैठा; इसने आचार्यों से सुना है। जिन्होंने किसी से सुना था, उनसे इसने सुना है। मगर उनके तर्क इसे जंचे हैं। उनका जीवन तो कुछ नहीं है; लेकिन उनके तर्क, उनके प्रमाण, उनकी वाणी, उनकी शास्त्रीयता ने इसे

प्रभावित किया है। यह उपाध्याय है। यह पंडित है। महावीर कहते हैं, इसको भी नमस्कार। माना कि यह बहुत दूर हो गया अरिहंतों से; जैसे गंगा निकली गंगोत्री से, और अब बहुत दूर हो गई काशी आते-आते और न मालूम कितना कचरा मिल गया इसमें, कितनी गंदगी मिल गई इसमें, कितने मुर्दे इसमें सड़ गए; क्या-क्या नहीं हो गया! कितनी नालियां-नाले, सब इसमें हो गया है कूड़ा-करकट। अब यह वह बात नहीं रही जो गंगोत्री पर थी। जो गंगोत्री की शुद्धि थी, जो स्फटिक मणि जैसा स्वच्छ जल था, जो अमृत जैसी बात थी, वह नहीं रही। लेकिन फिर भी है तो यह वही जल--गंदा हो गया, कूड़ा-करकट से भर गया, नदी-नाले इसमें उतर गए, न मालूम कितना पाखाना, मल-मूत्र इसमें सम्मिलित हो गया, लेकिन फिर भी कुछ अंश तो अब भी इसमें गंगोत्री का शेष है। और महावीर कहते हैं, उतना अंश हो तो भी नमस्कार।
महावीर नमस्कार करने में कंजूस नहीं हैं, मैं भी कंजूस नहीं हूं। मगर
ये तो उपाध्याय भी नहीं हैं। महावीर पच्चीस सौ वर्ष पहले हुए। उनके पास जो गणधर थे, वे आचार्य थे। और उन गणधरों के पास जिन्होंने बैठ कर सीखा, वे उपाध्याय थे। उनको हुए चौबीस सौ साल, पच्चीस सौ साल हो गए। ये तो किन आचार्यों के पास बैठे हैं? इन्होंने तो आचार्य होने को भी राजनीति बना लिया है, उसका भी चुनाव होता है। जिसको वोट ज्यादा मिल जाए, वह आचार्य हो जाता है। या जिसको पिछला आचार्य नियुक्त कर दे, जैसे इन्होंने नियुक्त कर दिया। आचार्य तुलसी ने थोथूमल को नियुक्त कर दिया कि आगे अब ये आचार्य होंगे। न ये खुद आचार्य हैं, न थोथूमल आचार्य हैं।
और जब मैं "थोथूमल" कह रहा हूं तो गाली जरा भी नहीं दे रहा हूं। मैं सिर्फ उतना ही कह रहा हूं जितना मैंने देखा, जैसा मैंने देखा। मैंने बहुत थोथे लोग देखे, मगर नथमल से ज्यादा थोथा आदमी नहीं देखा। यह आदमी अद्वितीय है, बेजोड़ है! यह बिल्कुल कूड़ा-करकट है! इसकी खूबी अगर कुछ है तो एक है कि यह अच्छी तरह से चमचागिरी करना जानता है। यह आचार्य तुलसी की सेवा में रत रहता है। आचार्य तुलसी के पास इससे बेहतर लोग हैं, मगर वे इतने अच्छे चमचे नहीं हैं। मुनि नगराज योग्य व्यक्ति हैं, जो कि अगर होना ही था तुलसी का कोई उत्तराधिकारी तो नगराज को होना था। लेकिन नगराज चमचे नहीं हैं। किसी भी व्यक्ति में, जिसमें थोड़ा भी स्वाभिमान है, चमचागिरी नहीं होती। इसलिए तुलसी ने नगराज को काट कर ही अलग कर दिया। नथमल की खूबी यह है कि पांव दबाते रहते हैं और कुछ खूबी नहीं है। और उनकी प्रशंसा में, स्तुति में गीत लिखते रहते हैं। बस इतनी ही खूबी है।
यह तो सब गोरखधंधा राजनीति का हो गया। इनमें कोई उपाध्याय भी नहीं है। और सबसे नीचे साधु हैं--जिसने उपाध्यायों से सुना। मतलब बात दूर से दूर होती जा रही है, बहुत दूर होती जा रही है। जैसे सूरज का प्रतिफलन बना नदी में, नदी का प्रतिफलन बना दर्पण में। दर्पण की तुमने एक तस्वीर उतारी और फिर किसी चित्रकार ने उस तस्वीर के आधार पर सूरज बनाया। ऐसी बात दूर होती जा रही है--प्रतिफलन का प्रतिफलन। साधु सबसे नीचे है। उसने उपाध्यायों से सुन कर साधना शुरू कर दी है। उसे कुछ पता नहीं वह क्या कर रहा है। उपाध्यायों को ही पता नहीं कि वे क्या करवा रहे हैं।
कितने जैन साधुओं ने ध्यान पर किताबें लिखी हैं और उन्हीं ने मुझसे पूछा है कि ध्यान क्या है! मैंने उनसे पूछाः तुमने किताबें लिखीं तो किसलिए लिखीं, कैसे लिखीं?
वे कहते हैंः किताबें तो हमने शास्त्र पढ़ कर लिख दीं। मगर ध्यान का अनुभव हमें नहीं हुआ है। यह चित्त तोशांत होता ही नहीं है।
हालांकि समझाते हैं रोज लोगों को कि चित्त कोशांत करो, निर्विचार बनो, निर्बीज बनो। मगर कोई इनसे पूछे कि तुम निर्बीज हुए, तुम्हारा चित्त शांत हुआ, तुमने मौन पाया? तुमको मुनि कैसे कहें, किस आधार पर कहें?
मैं जब ये बातें उठा रहा हूं तो सिर्फ इसलिए उठा रहा हूं कि इस देश को पुनर्विचार करने का समय आ गया। इस देश को अपनी चिंतना को अब साफ-सुथरा कर लेना चाहिए। अगर हमें भारत की आत्मा को फिर से जाग्रत करना हो तो हमें सारा कूड़ा-करकट छांट कर हीरे बचा लेने चाहिए।
लेकिन हीरालाल जैन को कष्ट हुआ होगा। वह जैन होना दिक्कत दे रहा है।

उन्होंने लिखा हैः "आपने उस दिन हमारे पूज्य... ।"--हमको चोट लगी है, अहं को चोट लगी है। हमारे पूज्य को थोथूमल कह दिया! तो हमारी तो गिनती ही क्या रही! हम तो और ही गए-बीते हो गए!
प्रत्येक व्यक्ति अपने अहंकार को बड़ी तरकीबों से भरता है। हर शिष्य अपने अहंकार को भरने की तरकीबें करता है। अगर मुझे कोई गाली दे दे तो मेरे शिष्य को, जो मुझे नहीं समझता है, फौरन चोट लग जाती है। उसे चोट इसलिए नहीं लगती की मुझे गाली पड़ी। उसे चोट इसलिए लगती है कि अगर मेरे गुरु को गाली पड़ी तो मैं भी तो सम्मिलित हूं। मेरा गुरु तो महान होना चाहिए, तो उसी आधार पर मैं भी महान हो जाता हूं। महान गुरु का शिष्य महान; थोथे गुरु का शिष्य थोथा।
हीरालाल को लगा होगा, यह तो मुझको ही थोथा कह दिया। मगर सीधा कह नहीं सकते कि आपने मुझे थोथा कहा, घूम कर आ रहे हैं, लंबा चक्कर लगा रहे हैं कि हमारे मुनियों को, हमारे आचार्यों को भोंदूमल कह दिया, थोथूमल कह दिया। इनके ढंग मैंने देखे। जो-जो मैंने कहा था एकांत में, उस सबके नोट लेकर मुनि नथमल ने प्रवचन दिया। प्रवचन देने की उनकी कोई पूर्व-घोषणा नहीं थी। प्रवचन मेरा होना था, मेरे समय में उनका प्रवचन हुआ। मैंने पूछा भी कि यह आकस्मिक परिवर्तन कैसा कार्यक्रम में? कोई जवाब नहीं। और उन्होंने एक-एक शब्द दोहरा दिया। उसको उन्होंने इस ढंग से दोहराया कि मुझे बिल्कुल पक्का प्रमाण हो गया कि यह आदमी बिल्कुल तोता है, तोतारटंत है। एक-एक शब्द जैसा मैंने कहा था वैसा दोहरा दिया।
लेकिन कोई बीस हजार लोगों का मेला था। सांझ को रमणीक झवेरी, जो मुझे वहां ले गए थे... प्यारे आदमी हैं! अगर मुझसे कोई पूछे तो तुलसी और नथमल दोनों से ज्यादा श्रेष्ठ आदमी मैं रमणीक झवेरी को मानता हूं। इस आदमी में कुछ खूबियां हैं। यह न तो मुनि है, न साधु है, मगर इसमें एक सरलता है। और सरलता ही साधुता है। इसमें एक सहजता है। और इसमें एक साहस भी है। सांझ को आकर उन्होंने मुझसे कहा कि बड़ी हैरानी की बात है, मुझे भी बहुत धक्का लगा कि जो समय आपका था उसमें नथमल को क्यों बुलवाया? और जब नथमल जो बोले, तो मैं एक-एक बात समझ गया कि ये तो सब आपकी बातें हैं जो वे कह रहे हैं, जो उन्होंने इसके पहले कभी नहीं कहीं। तो मैंने शाम को ही जाकर उनसे कहा कि यह बात उचित नहीं है। तुलसी जी को मैंने कहा कि यह बात उचित नहीं है। मुझे आपने कहा था कि उनको मैं आमंत्रित करके ले आऊं। मैं उन्हें आमंत्रित करके लाया हूं। मुझको भी धक्का लगा कि यह बात उचित नहीं है, यह अनुचित हुआ। और फिर भी मैं आपको कहता हूं कि आपके मुनि नथमल का कोई प्रभाव जनता पर पड़ा नहीं, क्योंकि वह बातों में जान नहीं थी।
जब बातें उधार होती हैं, उनमें जान नहीं होती। तुम दोहरा तो सकते हो, लेकिन ओंठों पर ही रह जाती हैं, आत्मा नहीं होती। भीतर तुम्हारा कोई समर्थन नहीं होता।
तो तुलसी जी ने क्या कहा, मालूम है? रमणीक झवेरी ने मुझे बताया कि तुलसी जी बोले कि प्रभाव न पड़ने का कारण यह है कि रजनीश तो उपयोग करते हैं लाउडस्पीकर का और मेरे मुनि लाउड स्पीकर का उपयोग नहीं करते। इसलिए जनता पर प्रभाव नहीं पड़ा।
और तुम जान कर हैरान होओगे, दूसरे दिन से ही उनके मुनियों ने लाउडस्पीकर का उपयोग शुरू कर दिया। सदियों की परंपरा इतने से में टूट गई! ये सब बाजारी लोग हैं, दो कौड़ी के इनके सिद्धांत हैं। अभी तक बड़े सिद्धांत की चर्चा हो रही थी कि हम कैसे लाउडस्पीकर का उपयोग करें, क्योंकि महावीर ने या जैन शास्त्रों में कहीं लाउडस्पीकर का उपयोग है नहीं। फिर यह तो यंत्र है, आधुनिक यंत्र है। और ये तो मुंह पर भी पट्टी बांधे रहते हैं कि कहीं मुंह से भी जोर से आवाज निकले, गर्म हवा निकले, कीड़े-मकोड़े मर जाएं, कोई जीवाणु मर जाएं। लाउड स्पीकर पर बोलना तो इतने जोर से बोलना है कि न मालूम कितने जीव-जंतु मर जाएंगे? सब भूल-भाल गए। सब सिद्धांत की बकवास, जो कल तक चलती थी, बंद हो गई।
और थोथूमल इनको मैं इसलिए कहता हूं, भोंदूमल इसलिए कहता हूं कि ये बातें भी अगर ईमानदारी से स्वीकार की जाएं कि जमाना बदल गया और अब बीस

हजार लोगों को हमें बोलना है तो हम उपयोग करेंगे लाउड स्पीकर का--तो भी ठीक। इसमें भी चालबाजियां। चालबाजी क्या? दूसरे दिन आचार्य तुलसी बोलने बैठे और एक आदमी ने लाकर माइक वहां रख दिया। जब वे बैठे तब माइक नहीं था। जब वे बैठे, बैठ गए, अभी बोलना शुरू नहीं किया, माइक लाकर रख दिया गया, तब उन्होंने बोलना शुरू किया। उनसे पूछा गया कि आप माइक से बोल रहे हैं? उन्होंने कहा कि नहीं, मैं तो बोल रहा हूं, अब कोई माइक लाकर रख दे, इसमें मैं क्या करूं? देखते हैं; इनको मैं चालबाजियां कहता हूं! इनको मैं बेईमानियां कहता हूं! और तुम कहते हो, मैं गालियां दे रहा हूं? और तब से रोज माइक रखा जा रहा है। चलो, एकाध दफा किसी ने रख दिया होगा, भूल से रख दिया होगा। मगर तब से अब कोई पंद्रह-सोलह साल हो गए, रोज माइक रखा जा रहा है। और उनके ही सामने नहीं, सात सौ साधु-साध्वियों के सामने माइक रखा जा रहा है। सारे हिंदुस्तान में माइक रखा जा रहा है। ये माइक रखने वाले कौन हैं? और इनको क्या पड़ी है? और जब इनके गुरुजन माइक के खिलाफ हैं तो ये लोग क्या उनको नरक भिजवाने की कोशिश कर रहे हैं? तो कोई आदमी आकर इनकी मुंह-पट्टी उतार ले, फिर? "हम क्या करें, एक आदमी आया, उसने मुंह-पट्टी उतार ली!" अरे जब माइक पर बोल सकते हो तो मुंह-पट्टी उतार ली। कोई आदमी आकर जूते पहना दे--"अब हम क्या करें, हम तो चल रहे थे, यह आदमी आ गया, इसने जूते पहना दिए! कोई आदमी पकड़ कर कार में बिठा दे, हम क्या करें! हम तो चले जा रहे थे, यह आदमी मिल गया और इसने धक्का दिया और गाड़ी में बिठा दिया!" तो कोई आदमी फिर मांस ही ले आए--"अब हम क्या करें! हम तो भोजन कर रहे थे, इसने थाली में परोस दिया! तो अब थाली में कुछ छोड़ना तो ठीक नहीं, तो ले लिया।" तो फिर अड़चन क्या है? फिर अड़चन किस बात की है?
इस तर्क को जरा समझने की कोशिश करो। ये बेईमानी के तर्क हैं या नहीं?
और इन बेईमानों को तुम कहो कि ये उसी कोटि में आते हैं, जिसमें अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु... मैं स्वीकार नहीं करूंगा।
और तुम पूछते हो कि "आपने महावीर-वाणी के एक प्रवचन में इसका समर्थन किया है।"
निश्चित किया है। आज भी करता हूं। तुमको लगता है विरोधाभास है; कहीं कोई विरोधाभास नहीं। मैंने अरिहंतों, सिद्धों, आचार्यों, उपाध्यायों, साधुओं का समर्थन किया है। उनको नमस्कार करता हूं। मगर ये थोथूमल, भोंदूमल, न तो आचार्य हैं, न अरिहंत हैं, न नमस्कार के योग्य हैं। ये छंटे हुए बेईमान और राजनीतिज्ञ लोग हैं।
तुम देखो, यूं रायपुर में आचार्य तुलसी पर भारी विवाद खड़ा हुआ था कुछ वर्ष पहले, क्योंकि उन्होंने राम के संबंध में कुछ बातें लिख दी थीं, जिससे हिंदू भड़क गए। तो मुझे खबर आई, उनके आदमी खबर लेकर आए कि मैं एक वक्तव्य दूं उनके समर्थन में और उनका जो विरोध किया जा रहा है उसके विरोध में। मैंने कहाः विरोध तो उचित नहीं है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को अपने विचार व्यक्त करने का हक है। तो मैं जरूर वक्तव्य दूंगा। मैंने वक्तव्य लिखित दिया। वक्तव्य मैंने दिया, उसमें मैंने कहा, वह छपा वक्तव्य। उन्हीं को वक्तव्य भेज दिया था कि आपको जहां छपवाना हो छपवा लें।... कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने विचार प्रकट करने का हक है। अगर वह राम को पसंद नहीं करता तो उसे हक है कि वह कह सके; या किसी बात की आलोचना उसे करनी हो तो कर सके। इतनी स्वतंत्रता भी अगर लोकतांत्रिक जगत में न हो तो फिर कैसा यह लोकतंत्र है?
मगर मैंने उस वक्तव्य में यह भी कहा था कि साथ में मैं यह भी स्मरण दिलाना चाहता हूं कि आचार्य तुलसी को राम से लेना-देना क्या है? इनके पास चौबीस तीर्थंकर हैं, उनके संबंध में लिखें। ये कोई मेरे जैसे व्यक्ति तो नहीं हैं, जिसका दावा दुनिया के हर सदगुरु पर है। मैं जीसस पर बोलूंगा, क्योंकि मैं जीसस को उतना ही प्रेम करता हूं जितना महावीर को। और बुद्ध पर बोलूंगा और कृष्ण पर बोलूंगा और लाओत्सु पर बोलूंगा, क्योंकि मेरा कोई धर्म नहीं है। सारे धर्म मेरे हैं। मैं इस पूरे आकाश को अपना मानता हूं। यह बगीचे में जितने फूल खिले हैं, मेरे हैं। जब दिल होगा, चंपा के फूल इकट्ठे करूंगा और जब दिल होगा तो गुलाब के फूल इकट्ठे करूंगा।

लेकिन तुलसी की तो सीमा है, उनको अपनी सीमा में ही जीना चाहिए। उन्हें क्या जरूरत राम पर बोलने की? राम ने उनका क्या लिया-दिया है? राम से क्या प्रयोजन है? मैं बोलूंगा राम पर--मैं बोलता हूं। और तुलसी ने क्या आलोचना की है राम की--खाक! उसमें कुछ भी नहीं है। मैंने राम की जो आलोचना की है, उसको आलोचना कहते हैं। राम को मैं जरा भी कीमत नहीं देता। तुलसी ने तो राम पर पूरा महाकाव्य लिखा है। मैं तो कविता भी लिखने को राजी नहीं हो सकता राम पर। इतना समय भी क्यों खराब करूंगा? क्या प्रयोजन है?
तो मैंने उस वक्तव्य में यह भी कहा था कि आचार्य तुलसी को राम पर कुछ
भी कहने की आवश्यकता नहीं है। तुम हिंदू नहीं हो। तुम जैन हो। तुम्हारी एक बंधी परंपरा है। तुम एक डबरे में बंद हो। तुम एक डबरे की मछली हो, अपनी मछलियों की चर्चा करो; मगरमच्छों की चर्चा करो, जो भी तुम्हें करना है। मगर तुम्हें दूसरे के उसमें क्यों बीच में पड़ना? तुम्हें कोई प्रयोजन नहीं है।
उन्होंने क्या चालबाजी की--मेरे वक्तव्य में वह हिस्सा तो अलग कर दिया जो उनके खिलाफ था और जो हिस्सा उनके पक्ष में था वह अखबारों में दे दिया! जब मैंने वक्तव्य पढ़ा, मैं हैरान हुआ--सब वे हिस्से उन्होंने अलग कर दिए थे, जिनमें मैंने यह बात उठाई थी कि आपको क्या जरूरत है कहने की और वे हिस्से सब दे दिए थे जिनमें मैंने आलोचना की थी कि लोगों को प्रत्येक व्यक्ति को बोलने की, विचार की स्वतंत्रता देनी चाहिए। इसको मैं चालबाजियां कहता हूं। अगर यह करना था तो मुझसे पूछ कर करना था। आधा वक्तव्य देना, अपने मतलब का वक्तव्य देना, आधा निकाल लेना--इसको तुम ईमानदारी कहोगे?
और तुम जरा सोचो, उनको किसी ने छुरा नहीं मार दिया था, गोली नहीं मार
दी थी, सिर्फ आलोचना हो रही थी। अभी मुझ पर छुरा फेंका गया, मेरी हत्या करने की कोशिश की गई। हिंदुस्तान के किसी एक धर्मगुरु ने इस बात का खंडन किया? किसी एक धर्मगुरु ने यह भी कहा कि यह बात अनुचित है? और ये सब अहिंसा के पुजारी हैं! इन्होंने कुछ कहा? आचार्य तुलसी ने कुछ कहा? कानजी स्वामी ने कुछ कहा? सुशील मुनि ने कुछ कहा? एलाचार्य विद्यानंद ने कुछ कहा? ये सब जैन मुनि, अलग-अलग जैन संप्रदायों के, ये तो सब अहिंसा के पुजारी हैं, इनको कम से कम इतना तो कहना चाहिए कि किसी की गर्दन पर छुरा चला कर उसकी वाणी को बंद करने की बात अशोभन है। लेकिन एक धर्मगुरु ने भी इसका विरोध नहीं किया। इसका मतलब? जैसे भीतर-भीतर इन सबका समर्थन है कि अच्छा हुआ। इनको दुख हुआ होगा तो यह हुआ होगा कि वह आदमी चूक कैसे गया।
सिर्फ इंदिरा गांधी को छोड़ कर भारत के एक भी राजनैतिक व्यक्ति ने इस बात का विरोध नहीं किया। सिर्फ इंदिरा गांधी ने मुझे पत्र लिखा कि मुझे हार्दिक दुख है और मुझे धक्का लगा। इस तरह की घटना नहीं घटनी थी। यह बात बेहूदी है। और इस तरह की घटना न घटे, इसका मैं पूरा इंतजाम करूंगी। इंदिरा ने सिर्फ कहा, बाकी देश का कोई राजनेता नहीं बोला, कोई धर्मगुरु नहीं बोला। कोई बुद्धिवादी, बड़े लेखक, कवि, साहित्यकार, मनीषी, कोई नहीं बोले। यूं जैसे कि कोई खास बात ही न थी! किसी को छुरे से मारना, कोई खास बात ही नहीं! जाहिर है एक बातः इस छुरे के पीछे इन सारे लोगों का अनजाना, अचेतन समर्थन है। ये प्रफुल्लित हुए होंगे। ये आनंदित हुए होंगे कि अच्छा हुआ। ये भी यही करना चाहते हैं, मगर कर नहीं सकते। इतनी करने की भी इनमें हिम्मत नहीं है।
आचार्य तुलसी को तो सोचना था कि तुम्हारी सिर्फ आलोचना हुई थी तो भी मैंने वक्तव्य दिया था; मुझ पर छुरा फेंका गया, कम से कम तुम इतना कह सकते थे कि यह बात अशोभन है। वह भी कहने की बात नहीं बन सकी उनसे।
इस तरह के लोगों को मैं क्या कहूं? और इस तरह के सारे लोग दिल्ली में जाकर अड्डा जमाए रखते हैं। और दिल्ली में इनका काम क्या है? इनका काम एक ही है कि बस इनके जो चापलूस हैं, वे जाकर राजनेताओं की प्रार्थना करते रहते हैं कि आप तुलसी जी महाराज के पास चलिए, कि आप सुशील मुनि जी महाराज के पास चलिए, बस दो मिनट के लिए चलिए! और वहां जाकर क्या काम करते हैं? कोई

भी जाएगा, स्वभावतः नमस्कार करेगा। और जैन मुनि तो किसी को नमस्कार करता नहीं, आशीर्वाद देता है।
तो आचार्य तुलसी ने क्या तरकीब की थी? पंडित जवाहरलाल नेहरू के पीछे
छह महीने लोग पड़े रहे कि आप एक दफा तुलसी जी के वहां चलिए। वे टालते रहे, टालते रहे। जब थक गए होंगे, परेशान हो गए होंगे, तो गए। दो मिनट के लिए। हाथ जोड़ कर नमस्कार किया, जो कि बिल्कुल स्वाभाविक है। तुलसी जी ने उनको आशीर्वाद दिया। कैमरामैन तैयार है, जल्दी से उसने फोटो ले लिया। उसका कैलेंडर छपवा दिया कि पंडित जवाहरलाल नेहरू--आचार्य तुलसी को नमस्कार करते हुए। कैलेंडर मुफ्त सारे हिंदुस्तान में बांटा गया।
ये चालबाजियां, ये बेईमानियां--इनका धर्म से कोई संबंध है? कोई प्रयोजन है? कोई अर्थ है? मैं सिर्फ चाहता हूं कि तुम सोचो, विचार करो। और तुम्हें अगर इतनी-इतनी बड़ी चीजें नहीं दिखाई पड़तीं तो तुम बिल्कुल अंधे हो।
एक साइकिल सवार नाराज हो गया। चिल्ला कर बोलाः क्यों जी, तुम मुड़ने के लिए हाथ नहीं दे सकते थे? मैं ट्रक के नीचे आ जाता तो?
ट्रक ड्राइवर ने कहाः भाईजान, तुम्हीं सोचो, जब तुम्हें मेरा इतना लंबा-चौड़ा ट्रक नजर नहीं आया तो हाथ भला कैसे नजर आता?
तुम्हें कुछ नजर ही नहीं आ रहा है। और जिनके पास जाकर तुम नमस्कार कर रहे हो, उनसे पा क्या रहे हो? तुम्हारे जीवन में कौन सी क्रांति घट रही है? तुम्हें कौन सी औषधि मिल रही है?
सोहनलाल दूगड़ आचार्य तुलसी के भक्तों में से एक थे। आखिर-आखिर में मेरे हाथ बिगड़ने लगे थे। तो मुझसे उन्होंने एक रात कहा--उनके घर मैं मेहमान था--कि आपसे क्या छिपाऊं, मैंने जीवन में चार बार आचार्य तुलसी के कहने से ब्रह्मचर्य-व्रत लिया है। एक भोंदू मेरे पास बैठे थे। वे तो बड़े प्रभावित हुए कि चार बार ब्रह्मचर्य-व्रत! मैंने उनकी खोपड़ी पर एक चपत लगाई। मैंने कहाः तू इतना बड़ा भोंदू है छंटा हुआ कि तुझे यह भी समझ में नहीं आ रहा, तू प्रभावित हो रहा है कि ब्रह्मचर्य का व्रत चार बार लेने का मतलब क्या होता है! तूने तो हद कर दी मूढ़ता की--उनका गदगद भाव देख कर कि वाह, क्या गजब कर दिया, चार बार! मैंने तो एक बार भी नहीं लिया जीवन में, तो स्वभावतः जिसने चार बार लिया उसने तो महान साधना कर ली! पहले तू सोच भी तो पागल कि चार बार लेने का मतलब क्या होता है! अब इनसे पूछ कि पांचवीं बार क्यों नहीं लिया?
तब उनको थोड़ा होश आया। और मैंने सोहनलाल को पूछा कि पांचवीं बार क्यों नहीं लिया, यह बताओ? तो उन्होंने कहाः आप पहले आदमी हैं जो यह पूछ रहे हैं पांचवीं बार क्यों नहीं लिया? नहीं तो लोग प्रभावित होते हैं, जैसे यह भैया प्रभावित हुआ कि चार बार ब्रह्मचर्य का व्रत! पांचवीं बार इसलिए नहीं लिया कि चार बार ले-ले कर बार-बार टूटा, थक गया, मैं समझ गया कि यह अपने से होने वाला नहीं है, इसलिए नहीं लिया।
मैंने उन मूर्खानंद को, जो बैठे वहां प्रभावित हो रहे थे, कहा कि तुमने एक कहानी सुनी है कि एक राजनेता पागलखाना देखने गया। उसने पूछा कि जब कोई पागल ठीक हो जाता है तो तुम कैसे तय करते हो कि वह ठीक हो गया? तो उसने कहाः कई हमारे पास परीक्षण हैं। जैसे अगर पढ़ा-लिखा आदमी हो तो हम उससे पूछते हैं कि जो पहला हवाई जहाज का उड़ाका था, उसने पृथ्वी के चार चक्कर लिए, उन चार चक्कर लेने में एक बार मारा गया, कौन से चक्कर में मारा गया?
राजनेता ने कहाः यह तो बड़ा कठिन सवाल है। यह तो मैं भी... इतिहास मैंने पढ़ा नहीं। अगर तुम मुझसे भी पूछो तो मैं भी नहीं बता सकता। अरे जब पढ़ा ही नहीं इतिहास तो किस चक्कर में मारा गया यह मैं भी कैसे बता सकता हूं? मैंने कहाः तुम भी उसी कोटि के मूढ़ हो। तुम किसी पागलखाने में भरती हो जाओ। अब जो आदमी चार दफा चक्कर लिया पृथ्वी का, यह भी नहीं बता सकते किसमें मारा गया! अरे स्वभावतः चौथे ही में मारा जाएगा। अगर तीसरे में मर जाता तो चौथे का चक्कर कौन लेता? इतनी सीधी-सीधी बात तुम्हारी अकल में नहीं घुसती!

इसी तरह का यह अणुव्रत आंदोलन चलता है; लोग व्रत ले लेते हैं, टूटते रहते हैं। न कोई व्रतों का मतलब है, न कोई सम्हालने का सवाल है। मगर तुलसी जी अणुव्रत-शास्ता हो गए, अणुव्रत-अनुशास्ता हो गए।
इस देश में क्रांति वगैरह तो होती ही नहीं, क्रांतिकारी बहुत हैं। इस देश को सुधारने वाले इतने हैं कि कभी-कभी मैं यह सोचता हूं कि सुधारना किसको है?
बहरा मरीज डाक्टर से बोलाः डाक्टर साहब, मैं इतना कम सुनने लगा हूं कि अपनी खांसी की आवाज तक नहीं सुन पाता।
डाक्टर ने कहाः घबड़ाओ मत। ये दो गोलियां खा लेना, खांसी तेज हो जाएगी,
तब तुम उसकी आवाज ठीक से सुन सकोगे।
ऐसे-ऐसे चिकित्सक पड़े हैं!

सिर्फ देते हैं सुनाई
शब्द अनगढ़,
अर्थ आधे
टूटते से स्वर,
द्वार पर ताले जड़े हैं
ऊंघते से घर,
आजकल इस ओर भी
बस्ती नहीं है।

कौन जाने सब कहां हैं
नौकरी पर या कि बाहर
या कि भीतर?
या सभी को लीलता है
मुखर संशय,
मौन का डर?
जिंदगी, मुरदाघरों को देख कर
हंसती नहीं है।

आजकल इस गांव में
सब कुछ मगर
बस्ती नहीं है।

ऐसा लगता है यह देश एक मरघट हो गया है। इसमें मुर्दों की पूजा चल रही है। मुर्दे मुर्दों को पूज रहे हैं। मुर्दे मुर्दों का जुलूस निकाल रहे हैं, जय-जयकार कर रहे हैं। न कोई सोचता, न कोई विचारता। और अगर कोई सोचने- विचारने की बात कहे तो फौरन तुम तिलमिला जाते हो।

ये सारी बातें मैं तुम्हें सिर्फ झकझोरने के लिए कह रहा हूं, ताकि तुम
एक दफा पुनर्विचार में उतर जाओ। इस देश का विचार मर गया तो आत्मा मर गई। इस देश कोझकझोरना होगा। और आंधी आए, तूफान आए, तो ही शायद तुम जगो तो जगो, अन्यथा तुम जग नहीं सकते हो।
मेरा विरोध करो, जी भर कर विरोध करो!

इसी संबंध में दूसरा प्रश्न पूछा है हरनामदास आर्य ने।
ओशो, आप इन दिनों साधुओं, मुनियों और दूसरे लोगों के धर्मों की कड़ी आलोचना व निंदा करते हैं। इससे आपको क्या मिलेगा? आप सीधा अपने ध्यान और धर्म का प्रचार क्यों नहीं करते?

हरनामदास आर्य! नाम से लगता है आर्यसमाजी हो। दूसरों की आड़ में अपनी बात छिपा रहे हो। अगर आर्यसमाजी हो तो तुमने "सत्यार्थ प्रकाश" पढ़ा है दयानंद का? उसमें तो सारे धर्मों की आलोचना है। आग लगा दो उसको, क्योंकि

क्यों दयानंद ने दूसरे धर्मों की बात की, आलोचना की? अपने ध्यान और धर्म का प्रचार करते! तुम "आर्य" क्यों हुए?

और कुछ तुम जरा बुद्धि पर थोड़ा बल डालो। बुद्ध ने महावीर की भी आलोचना की है और सख्त आलोचना की है। वे दिन जानदार थे, शानदार थे। लोग तलवारों पर धार रखते थे। प्रतिभा एक तलवार है। ऐसे कमजोर और कायर नहीं थे। ऐसे पूंछ दबा कर नहीं भागते थे। बुद्ध ने महावीर की आलोचना की है और सख्त आलोचना की है, क्योंकि जैन कहते थे कि महावीर त्रिकालज्ञ हैं और बुद्ध इस पर बहुत हंसते थे।

बुद्ध ने कहा है कि मैंने महावीर को ऐसे घर के सामने भिक्षा मांगते देखा है, जिस घर में कोई है ही नहीं, बरसों से घर खाली पड़ा है--और ये सज्जन त्रिकालज्ञ हैं! तीनों काल का इनको पता है और इनको यह भी पता नहीं कि घर में कोई रहता नहीं है! ये खाक त्रिकालज्ञ हैं! मैंने महावीर को सुबह-सुबह धुंधलके में उठते, गांव के बाहर पाखाना इत्यादि करने को जाते देखा है। रास्ते में अंधेरे में कुत्ते की पूंछ पर पैर पड़ जाता है; जब कुत्ता भौंकता है तब इनको अकल आती है कि कुत्ता सो रहा है। और ये त्रिकालज्ञ हैं! इनको तीनों काल का ज्ञान है--अतीत का, वर्तमान का, भविष्य का! महावीर को मालूम था कि हरनामदास आर्य आज के दिन यह प्रश्न मुझसे पूछेंगे!

बुद्ध ने बहुत मजाक उड़ाई है। मैं यह नहीं कहता कि सही या गलत। मैं यह कहता हूं कि जब कोई देश जिंदा होता है, उसमें प्रखरता होती है, उसमें चीजों में चुनौती होती है। शंकराचार्य ने बुद्ध की बहुत आलोचना की है, गहन आलोचना की है। और रामानुज ने शंकराचार्य को छोड़ा नहीं। रामानुज ने इतनी गहन आलोचना की शंकराचार्य की और यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि शंकराचार्य छिपे हुए बौद्ध हैं, प्रच्छन्न बौद्ध हैं। ये करते तो बुद्ध की आलोचना हैं, मगर वह आलोचना सब धोखा है; भीतर से, पीछे के दरवाजे से बुद्ध के ही विचारों का ये प्रचार कर रहे हैं। चूंकि अब बुद्ध का प्रचार सीधा-सीधा नहीं हो सकता, ब्राह्मणों ने बुद्ध के धर्म को उखाड़ फेंका है, इसलिए अब बुद्ध के धर्म को पीछे के दरवाजे से कैसे प्रवेश करवाया जाए, यह शंकराचार्य कोशिश कर रहे हैं।

ये जानदार लोग थे। ये तुम जैसे मुर्दा लोग नहीं थे।

क्यों न करूं मैं आलोचना अगर साधु गलत हैं? मुनि मुनि नहीं हैं, साधु साधु नहीं हैं। आलोचना क्यों न करूं? और धर्मों पर किसी की बपौती है, किसी का ठेका है? दुनिया में तीन सौ धर्म हैं, तीन सौ ही धर्म ठीक नहीं हो सकते। सत्य एक है, तीन सौ धर्म कैसे ठीक हो सकते हैं? और जब तक गलत को गलत न कहा जाए, तब तक सही को सही कहा नहीं जा सकता। गलत की पहचान आ जाए तो ही सही की पहचान आती है। और गलत से शुरू करना होगा, क्योंकि तुम गलत से भरे हो।

तुम तो ऐसी बात कर रहे हो हरनामदास आर्य कि "आपको अगर अमृत उंड़ेलना हो तो हमारे पात्र में उंड़ेल दें, आप हमारे पात्र की सफाई की बात क्यों करते हैं?" मुझे अपना अमृत खराब करना है? तुम अपने पात्र में मल-मूत्र किए बैठे हो, उसकी सफाई न करवाऊं? उसकी पहले सफाई करवाऊंगा। लेकिन लोग तो एक से एक पहुंचे हुए हैं।

मैंने सुना है, दो हिप्पी एक रास्ते पर चले जा रहे थे। एक हिप्पी बड़ी देर से नाक पर रूमाल लगाए हुए था। दो-तीन मील चलने के बाद उसने कहा कि भई, क्या तूने अपने पतलून में पाखाना किया है? क्योंकि पहले मैंने सोचा कि नालियों की बास होगी, फिर नालियां भी खत्म हो गईं, अब तो कोई नाली भी नहीं है। फिर मैंने सोचा कि आदमियों में से बास आ रही होगी। अब कोई आदमी भी नहीं, हम दोनों ही बचे, क्या तू अपने पतलून में पाखाना कर रहा है?

दूसरे ने कहाः कभी नहीं! नहीं जी! क्या बातें करते हो?

उसने कहाः तू उतार पतलून! क्योंकि बास इतनी तेज है और तीन मील से साथ चल रही है...।

उसने पतलून उतरवाया। वह पाखाने ही पाखाने से भरा हुआ था। उसने कहाः यह क्या है?

तो उसने कहाः यह तो पुराना है, कोई अभी का थोड़े ही है। तुम कह रहे थे पतलून में पाखाना कर रहे, तो मैंने कहा, नहीं, अरे यह तो बहुत पुराना है! यह तो कई दिन पहले की बात है।
तुम्हारे बर्तनों में कितनी गंदगी और कितना कचरा भरा है, उसको न निकालूं?
हरनामदास आर्य, तुम कह रहे हो कि "आप अपने धर्म का सीधा प्रचार क्यों नहीं करते!"
सीधा प्रचार कहां करूं? जितनी खोपड़ियां हैं सब कचरे से भरी हुई हैं। कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है, कोई जैन है, कोई बौद्ध है। तो पहले उसका कचरा निकालना होगा, तभी उसके भीतर सम्यक सत्य को डाला जा सकता है, अन्यथा कोई उपाय नहीं।
लेकिन तिलमिलाते क्यों हो? अगर तुम्हारे धर्मों में सत्य है तो टक्कर क्यों नहीं लेते? तो तुम अपने धर्मों के जो धुरंधर हैं, उनसे कहो कि जवाब दें मेरी बातों का। लेकिन तुम्हारे धर्म के धुरंधर भी क्या हैं? उनसे कुछ पूछो तो क्या जवाब मिलेगा?
मैं पढ़ रहा था पुरी के शंकराचार्य के संबंध में कि दिल्ली में उनका सत्संग चल रहा था और एक आदमी ने खड़े होकर पूछा कि ब्रह्म का ज्ञान कैसे उपलब्ध हो? कोई खराब बात नहीं पूछी थी। और पुरी के शंकराचार्य को एकदम क्रोध आ गया, इस बात में ही क्रोध में आ गए कि ब्रह्म का ज्ञान कैसे हो! और सत्संग ही हो रहा था तो ब्रह्म का ज्ञान ही तो पूछा जाएगा। उन्होंने उलटा सवाल उस आदमी से किया कि तुम्हारी चुटैया है या नहीं? अब आजकल किसकी चुटैया होती है? सिर्फ गधों को छोड़ कर और किसी की नहीं। कोई समझदार आदमी चुटैया काहे के लिए रखेगा? कोई औरत के हाथ से पिटना हो, वह पकड़ कर चुटैया और धुनकाई करेगी!
मैं छोटा था तो मेरे गांव में एक पड़ोस में एक सज्जन रहते थे। उनकी बड़ी चुटैया थी। मैं उनकी चुटैया के खिलाफ था। उनसे कई दफा कहा कि देखो, तुम चुटैया छोटी कर लो। उन्होंने कहा कि तुम कौन हो जी मेरी चुटैया छोटी करने वाले? और तुम्हें मतलब?
मैंने कहाः मैं भी तुम्हारा पड़ोसी हूं। तुम्हारी वजह से मेरी तक बदनामी होती है कि तुम ऐसे पड़ोस में रहते हो।
अरे--उन्होंने कहाः यह भी हद हो गई!
मैंने कहाः तुम देखो, काट ही लो चुटैया!
नहीं माने। गांव में, छोटे गांव में तो लोग गर्मी के दिनों में बाहर सोते हैं। सो मैं एक रात उनकी चुटैया काट आया। सुबह क्या मजा हुआ, देखने लायक दृश्य खड़ा हो गया! वे क्या उछले, फांदे, क्या कूदे! बिल्कुल बजरंगबली हो गए! उनका धर्म नष्ट हो गया! और मोहल्ले के आदमियों को लेकर मेरे घर आए। मेरे पिता से कहा कि अब हद हो गई। अब यह सीमा के बाहर बात हो गई--मेरा धर्म नष्ट हो गया, मेरी चुटैया काट ली!
मैंने कहाः भाई तुम ऐसा करो, मेरे पूरे बाल काट लो, और क्या करोगे? कहो
तो मैं चुटैया बढ़ा लूं। तुम्हारी कट गई, मैं बढ़ाए लेता हूं। जब बढ़ जाए तब तुम काट देना। चुटैया ही काटी है, कोई तुम्हारा धर्म कैसे नष्ट हो जाएगा? चुटैया में तुम्हारा धर्म था? तुम सिद्ध कर सकते हो, चुटैया में तुम्हारा धर्म था?
मगर पुरी के शंकराचार्य को भी चुटैया में धर्म मालूम होता है। यह बेचारा पूछ रहा है कि ब्रह्म को कैसे पाया जाए; वे पूछते हैं चुटैया है कि नहीं? उसने कहा कि भई चुटैया तो नहीं है। तो दूसरा सवाल उन्होंने बड़ा आध्यात्मिक सवाल पूछा पुरी के शंकराचार्य ने, कि पेशाब खड़े होकर करते हो कि बैठ कर? क्योंकि वह पतलून पहने हुए था। अब पतलून पहन कर और बैठ कर पेशाब करना बड़ी कठिन बात है। कोई योगी वगैरह हो तो कर ले। मतलब आसन वगैरह करना जानता हो, उलटा-सीधा शरीर को घुमाना जानता हो। अब पतलून पहने बैठ कर पेशाब करोगे तो पुरखे तक तिर जाएंगे! उसने कहाः पतलून की वजह से बैठ कर तो कैसे कर सकता हूं?

तो उन्होंने कहाः खड़े होकर पेशाब करते हो और ब्रह्मज्ञान की पड़ी है! अरे पहले अपना आचरण ठीक करो। चुटैया बढ़ाओ, बैठ कर पेशाब करो। जनेऊ पहनते हो कि नहीं?
वह जनेऊ भी नदारद था। और वे जो आदमी बैठे थे, वहां बैठे होंगे उसी तरह
के आदमी, और किस तरह के आदमी इस तरह की जगह पहुंचते हैं! वे सब हंसने लगे कि ये देखो ब्रह्मज्ञान करने चले! उस बेचारे की ऐसी फजीहत हो गई।
ये तुम्हारे पुरी के शंकराचार्य हैं! और तुम चाहते हो कि इनकी आलोचना
न की जाए? तुम चाहते हो तुम्हारे साधुओं, मुनियों और "दूसरे के लोगों के धर्मों की... !" कौन दूसरे लोग? मैं किसी को दूसरा नहीं मानता। कोई दूसरा नहीं है। बिजली चलाने में तुम्हें फिकर नहीं आती कि किसने खोजी। तुम्हारे बापदादों ने खोजी? शंकराचार्य ने खोजी, रामानुज ने खोजी, निम्बार्क ने खोजी, वल्लभाचार्य ने खोजी, किसने खोजी? तब तुम नहीं पूछते कि बिजली घर में चला रहे हैं, पंखा चला रहे हैं, रेडियो सुन रहे हैं, यह किसने खोजा? विज्ञान पर सबका अधिकार है, तो धर्म पर क्यों नहीं? धर्म भीतर का विज्ञान है। फिर जीसस ने खोजा, कि जरथुस्त्र ने खोजा, कि मो.जे.ज ने खोजा, कि महावीर ने खोजा, क्या फर्क पड़ता है? कृष्ण ने खोजा, कि क्राइस्ट ने खोजा, क्या फर्क पड़ता है?
सारे धर्म मेरे हैं। इसलिए कोई मुझसे यह न कहे कि दूसरों के धर्मों की मैं कड़ी आलोचना करता हूं। मेरे धर्म हैं! और उनमें जहां-जहां मैं देखूंगा लोगों ने गंदगी मिलाई है, उसकी मैं आलोचना करूंगा। मेरे धर्म हैं! मैं अधिकारी हूं कि अपने धर्मों में कचरा न मिलने दूं। मैं किसी और के धर्म की आलोचना नहीं कर रहा हूं।

और मजा यह है कि हरनामदास ही दूसरा प्रश्न पूछते हैं, जिससे जाहिर हो जाता है कि अक्ल कितनी होगी।
दूसरा प्रश्न पूछते हैंः
ओशो, रामायण में यह साफ-साफ कहा गया है कि एक व्यक्ति को बस एक ही विवाह करना चाहिए। और पर-स्त्री को देखना भी पाप है। आप जिस मुक्त स्वच्छंद और अपने कम्यून में होने वाले प्रयोगों की बात करते हैं, क्या यह आचरण समाज को एक गलत दिशा में नहीं ले जाएगा?

हरनामदास आर्य! अब तुम रामायण को फंसा रहे हो कि नहीं? अब मैं रामायण
के संबंध में कुछ कहूं तो आलोचना हो जाएगी! और तुम कहते हो कि साधुओं, मुनियों और दूसरे के धर्मों की आलोचना न करूं। अब तुम बाबा तुलसीदास की पिटाई करवाने को खुद उत्सुक हो। तुम्हें खुजलाहट हो रही है। अब मैं क्या करूं, बोलो, तुम्हारा पहला प्रश्न मानूं कि तुम्हारा दूसरा प्रश्न मानूं? रामायण ने कोई ठेका लिया है? रामायण कोई धर्म-ग्रंथ है? कथा-कहानी है। पढ़ो, जी भर कर पढ़ो! लीला करो! मगर धर्म-ग्रंथ क्या है? रामायण तो सारा देश पढ़ रहा है, कितने लोग धार्मिक हो गए हैं रामायण पढ़ कर? चौपाइयां पढ़ते-पढ़ते चौपाए हो गए हैं, और कुछ भी नहीं।
और तुम कह रहे होः "रामायण में साफ-साफ कहा गया है... ।"
कहा गया होगा। कोई मैं आबद्ध हूं रामायण में जो कहा है उसको मानने को?
"... कि एक व्यक्ति को बस एक ही विवाह करना चाहिए।" तो फिर कृष्ण महाराज की क्या गति होगी? सोलह हजार पत्नियां! रामायण के हिसाब से कृष्ण महाराज को कहां रखोगे? और अपनी भी नहीं, न मालूम दूसरों-दूसरों की भगा लाए। रुक्मिणी को भी भगा कर लाए। और तुम्हारे सब ऋषि-मुनियों की अनेक पत्नियां थीं। एक पत्नी थी जिसको पत्नी कहते थे; और बाकी को पत्नी न कहने के लिए "वधू" शब्द खोजा हुआ था। आजकल तो हम वधू शब्द का उपयोग गलत अर्थ में कर रहे हैं--उस अर्थ में, पुराना जो हिसाब है, बैठता नहीं। वधू कहते थे उपनिषद के काल में-- उन स्त्रियों को, जो तुम्हारी पत्नी तो नहीं हैं, लेकिन जिनके साथ तुम पत्नी जैसा व्यवहार करते हो, उनको वधू कहते थे। पत्नी एक होती थी, वधुएं अनेक होती थीं। बाजारों में बिकती थीं औरतें!

और रामचंद्रजी के बाप जी की कितनी औरतें थीं? और यह खूसट बुड्ढा बुढ़ापे में भी एक औरत के ही चक्कर में तो राम को भिजवा दिया था जंगल, चौदह साल के लिए। न वह औरत होती, न रामायण होती। सब मजा किरकिरा हो जाता। तुम्हारा सारा धर्म ही डूब जाता। उसी चौथी औरत की वजह से रामायण है, नहीं तो बाबा तुलसीदास कहां होते? कौन पूछता?
और "एक व्यक्ति को बस एक ही विवाह करना चाहिए... ।" तो मैंने कब कहा कि
दो करना चाहिए? मैं तो कहता हूं एक भी नहीं करना चाहिए। तुम जरा मेरी बात तो समझो। मैं किन ऊंचाइयों पर ले जा रहा हूं और तुम कहां की बातें कर रहे हो! मैं तो एक से भी बचाना चाहता हूं। एक में ही झंझट शुरू हो जाती है। और जब एक किया तो दो से कब तक बचोगे? एक के बाद दो, दो के बाद तीन। आखिर आदमी तो गति करेगा, विकास करेगा।
मैं तो विवाह के ही विपरीत हूं। मैं तो विवाह का ही दुश्मन हूं। मैं
तो कहता हूं एक भी नहीं करना चाहिए; क्योंकि एक करने से ही यह खतरा शुरू होता है--अपनी स्त्री और पराई स्त्री। अब स्त्री भी जैसे कोई संपत्ति है-- पर-स्त्री! स्त्री कोई चीज-वस्तु है? स्त्री की कोई आत्मा है या नहीं? उसको संपत्ति मान कर चलते रहे हो। पर-स्त्री! उसकी तरफ देखना भी पाप है! कैसे घबड़ाए हुए लोग रहे होंगे! कैसे डरपोक लोग रहे होंगे! किसी स्त्री की तरफ देखने से घबड़ा रहे हैं! इनके भीतर कैसा कचरा-कूड़ा नहीं भरा होगा! इनके भीतर पाप ही पाप भरा होगा। नहीं तो दूसरे की स्त्री देखने में क्या हर्जा है? कौन सा पाप है? और अगर दूसरे की स्त्री सुंदर है तो उसको सुंदर कहने में क्या हर्जा है? पड़ोसी के बगीचे में अगर सुंदर फूल खिले हैं, तो तुम उससे नहीं कहते कि अहा, कितने सुंदर गुलाब तुम्हारे बगीचे में खिले हैं! इसमें कुछ अड़चन है?
अच्छी दुनिया होगी, भले लोग होंगे, तो मैं मानता हूं कि किसी की सुंदर स्त्री को देख कर कोई कहेगा कि तुम धन्यभागी हो, ऐसी सुंदर स्त्री तुम्हें मिली! अच्छी दुनिया होगी तो कोई व्यक्ति किसी सुंदर स्त्री के पास जाकर भी उसे धन्यवाद देगा कि अनुग्रह, कि मैंने तेरा दर्शन किया, आज सुबह-सुबह तू इतनी सुंदर स्त्री मुझे दिखाई पड़ी! और ऐसा नहीं कि वह एकदम चिल्ला देगी, पुलिसवाले को बुलाने लगेगी, क्योंकि इसने कोई पाप नहीं किया, कोई धक्का नहीं दिया। अभी क्या कर रहे हो तुम? सुंदर तो नहीं कहते उससे, लेकिन भीड़-भाड़ में धक्का दे देते हो। मौका मिल जाए तुम्हें, चुटैया ही खींच दोगे, च्यूंटी ले दोगे। क्या-क्या तुम नहीं कर रहे हो! हे ऋषि-मुनियों की संतान, तुम्हारी कैसी दुर्दशा है! और बकवास तुम यही लगाए हुए हो कि दूसरे की स्त्री को देखना पाप है। क्या पाप है? परमात्मा की कृति है स्त्री भी, पुरुष भी।
किसी की स्त्री को देखना पाप नहीं है। घूंघट डालना पाप है। इसका मतलब हुआ कि घूंघट डाल कर तुमने परमात्मा की कृति को छिपाया, तुमने मालकियत कर दी कि यह मेरी स्त्री है, इस पर मेरा घूंघट है। सील-मोहर बंद! और ऐसा नहीं कि सील-मोहर बंद नहीं होती थी! मध्य-युग में यूरोप में यह चलता था, क्योंकि अक्सर... । जैसा हमारे देश में चलता था वैसा ही वहां चलता था। हम तो और ज्यादा जघन्य हैं। जब कोई राजा युद्ध के लिए जाता था तो अपनी पत्नी की गर्दन ही काट जाता था, क्योंकि पता नहीं युद्ध में मर जाए, फिर? पति तो युद्ध में जाता था, स्त्रियां अग्नि में बैठ कर अपने को जला लेती थीं, सती हो जाती थीं। यह सिखाया गया था उनको कि यह करना, क्योंकि अगर मैं न बचूं तो पता नहीं फिर कोई तुम पर कब्जा न कर ले। कैसी अमानुषिकता!
मध्य-युग में, यूरोप में एक रिवाज था। वहां लोगों ने... वे तो जरा वैज्ञानिक बुद्धि के लोग हैं पश्चिम में।... लोहे के बेल्ट बना लिए थे। वे स्त्रियों को बेल्ट पहना जाते थे और ताला लगा जाते थे। तो स्त्रियां पेशाब तो कर सकती थीं, मगर प्रेम नहीं कर सकती थीं। वह बेल्ट इस ढंग से बनाया जाता था कि किसी के साथ संभोग नहीं कर सकती थीं।
एक सेनापति युद्ध पर जा रहा था। उसे यह डर लगा कि कहीं युद्ध के मैदान में कहीं चाबी गिर जाए, खो जाए, कुछ हो जाए, तो मारे गए! लौट कर फिर क्या करेंगे? तो उसने सोचा अपना एक मित्र है, बहुत जिगरी मित्र, जिस पर भरोसा

किया जा सकता है। उसको जाकर कहा कि भई, और तो मैं किसी पर भरोसा नहीं कर सकता, तुम यह चाबी रख लो। छह महीने तो मुझे लग जाएंगे इस युद्ध से लौटते- लौटते। आते ही से चाबी ले लूंगा। और मुझे तुम पर भरोसा है, तुम बेफिकरी से चाबी रख लो।
निश्चिंत, वह गांव के बाहर अपने घोड़े पर सवार होकर निकला। गांव के बाहर ही निकला ही नहीं था कि एक दूसरा घोड़ा भागता हुआ आया, बेतहाशा उसका मित्र चला आ रहा था। उसने कहाः रुको, रुको? रोका इसे और कहा कि यह क्या है, तुम गलत चाबी मुझे दे आए! इधर ये चाबी देकर गए, उधर वे चाबी खोलने पहुंच गए! गलत चाबी का इतनी जल्दी पता चल गया!
एक और मैंने कहानी सुनी है कि ऐसा ही एक सम्राट अपनी पत्नी पर संदिग्ध! और पति संदिग्ध, पत्नियां संदिग्ध--हमने क्या समाज बनाया है! इसमें कहीं श्रद्धा तो है ही नहीं, संदेह ही संदेह है। तुम्हारी पत्नी किसी से जरा हंस कर बोल ले कि बस संदेह। तुम्हारी जान निकली! चले हनुमान जी के मंदिर, कि चढ़ाएंगे नारियल और पता लगाएंगे अब कि हनुमान जी कुछ करो, कि भैया यह क्या हो रहा है! पत्नी हंस रही थी, बात कर रही थी! ऐसी मुझसे तो कभी नहीं हंसती!
तुमसे हंसे भी क्या? तुम्हारी रोती हुई सूरत देख कर हंसता हुआ आदमी हो, उसकी हंसी बंद हो जाए। तुम घर क्या आते हो, बच्चे चुप हो जाते हैं। अरे पशु-पक्षी एकदम चुप हो जाते हैं! एक तहलका छा जाता है।
और पत्नियों को डर है पतियों का कि कहां जा रहे हैं, क्या कर रहे हैं!
सब एक-दूसरे के पीछे जासूसों की तरह लगे हुए हैं। यह कोई समाज है? यह कोई नीति है? यह कोई जीवन है? जहां इतना संदेह है, यहां कैसे प्रेम के फूल खिलेंगे! इस संदेह की घास में प्रेम के गुलाब नहीं लग सकते।
सम्राट था फ्रेंच। वह जा रहा था युद्ध पर, उसने एक खास तरह का बेल्ट बनवाया। बेल्ट ऐसा था कि कोई भी धोखा खा जाए। धोखा ऐसा कि साधारण जैसे बेल्ट बनते थे पश्चिम में--अभी भी पश्चिम के म्यूजियम में बेल्ट रखे होते हैं, देखने के लिए, मध्य-युग के, कि किस तरह की बातें आदमी ने कीं--इसने बेल्ट ऐसा बनवाया था कि जिसमें अंदर एक चाकू था कि अगर कोई स्त्री से संभोग करने की कोशिश करे तो उसकी जननेंद्रिय का फौरन चाकू खात्मा कर दे। मतलब सजा भी उसको मिल जाए। यह भी नहीं कि वह कोशिश करके हारे, न कर पाए; सजा भी उसको मिल जाए। उसके पांच वजीर थे। उसमें पांचों पर उसे शक था। उन्हीं के लिए उसने इंतजाम किया था। वह तो गया युद्ध पर। जब लौट कर आया वह तो उसने वजीरों से कहा कि उतारो कपड़े! वजीर जरा सकुचाए। मगर अब सम्राट कहे... उसने तलवार खींच ली, उसने कहाः निकालो कपड़े! पहले ने कपड़ा निकाला, उनका खतना हो चुका था। सिर झुका कर खड़े हो गए। सम्राट ने कहाः अच्छा! तो अब तो सबूत भी है।
दूसरे का, उनका भी खतना, चार का खतना हो चुका था। पांचवें का खतना नहीं हुआ था। सम्राट ने कहा कि तू ही एक विश्वास योग्य व्यक्ति है! तुझ पर मैं भरोसा कर सकता हूं। और मैं आज शर्मिंदा हूं कि मैं तुझ पर ही सबसे ज्यादा शक करता था। तू बोल। जो मांगेगा दूंगा।
वह बोलाः मम्मम्... । उनकी जीभ का खात्मा हो चुका था। फ्रांस के आदमियों की तुम हरकतें जानते ही हो कि वे प्रेम की एक से एक तरकीबें निकालते हैं। वे जीभ से प्रेम करते हैं। उनकी जीभ नदारद थी। सम्राट ने सिर ठोंक लिया। उसने कहा कि हो गया!
मगर संदेह से खड़ी यह दुनिया कोई अच्छी दुनिया नहीं है। मैं एक समाज चाहता हूं, जहां लोग प्रेम तो करते हों लेकिन संदेह न करते हों। और यह तभी हो सकता है जब यह विवाह की रुग्ण व्यवस्था समाप्त हो। यह विवाह महारोग है। इसने मनुष्य-जाति को पूरा सड़ा दिया है। प्रेम पर्याप्त है। अगर किसी व्यक्ति से तुम्हारा प्रेम है तो जीवन भर साथ रहो; बहुत प्रेम हो तो कई जन्मों साथ रहो। लेकिन आधार प्रेम हो। जहां तुमने जबरदस्ती बंधन शुरू किए, जहां तुमने एक-दूसरे की स्वतंत्रता पर रुकावट डाली, बस वहीं प्रेम की मृत्यु शुरू हो जाती है।

मनुष्य के जीवन में दो बड़ी आकांक्षाएं हैं--एक प्रेम और एक स्वतंत्रता। और अब तक हम यह नहीं कर पाए हैं इंतजाम कि दोनों साथ-साथ सध जाएं। कुछ लोगों ने प्रेम साधा, उनकी स्वतंत्रता छिन गई। और कुछ लोगों ने स्वतंत्रता साधी, उनका प्रेम छिन गया। स्वतंत्रता साधने वाले लोग संन्यासी, साधु, भिक्षु, मुनि, तपस्वी भागे जंगल की तरफ। प्रेम से भाग रहे थे। कहते हैं संसार से भाग रहे हैं, लेकिन अगर उनके संसार का मतलब समझो, तो कोष्ठक में लिखा होता है--प्रेम। प्रेम से भाग रहे हैं। आसक्ति कहें उसको, मोह कहें उसको, काम कहें उसको--जो भी कहना चाहें कहें। लेकिन भाग रहे हैं प्रेम से। प्रेम से डरे हुए हैं। और क्यों डरे हुए हैं? क्योंकि प्रेम के साथ स्वतंत्रता नष्ट हो जाती है। वे स्वतंत्रता को प्रेम करते हैं; इसलिए भाग रहे हैं। स्वतंत्रता बचानी है। स्वतंत्रता तो बच जाएगी हिमालय की गुफा में, लेकिन वह स्वतंत्रता मुर्दा होगी। क्योंकि उसमें प्रेम का झरना नहीं होगा। पथरीली होगी, बंजर होगी, रेगिस्तान जैसी होगी। स्वतंत्रता तो होगी, मगर उसमें गीत नहीं उठेंगे, उसमें पायल नहीं बजेगी, उसमें बांसुरी की कोई धुन नहीं होगी। स्वतंत्रता तो होगी, मगर मरघट जैसी--सन्नाटा, ठंडी, बिल्कुल ठंडी!
और कुछ लोगों ने प्रेम साधा--जिनको हम संसारी कहते हैं--उनकी स्वतंत्रता मर गई। पत्नी पति की स्वतंत्रता मार डालती है, पति पत्नी की स्वतंत्रता मार डालता है। थोड़ी बहुत बचती है तो दोनों मिल कर बच्चों की मार डालते हैं; थोड़ी बहुत बचती है तो बच्चे मिल कर दोनों की मार डालते हैं। अजीब दुनिया है! यहां हर आदमी एक-दूसरे की स्वतंत्रता का दुश्मन है। बच्चे भी मां-बाप को स्वतंत्रता नहीं देते। अगर मां-बाप भी पास-पास बैठे गुप-चुप बातें कर रहे हों, तो बच्चे वहीं-वहीं घूमते हैं। मां-बाप अगर चुपचाप बैठे बात कर रहे हों या जरा मस्ती में हों, तो बच्चा फौरन आ जाएगा कि भूख लगी है। अभी आधा घड़ी पहले इसको खाना ही नहीं था, भूख ही नहीं थी, अब इसको भूख लगी है; कि पेशाब जाना है, कि पाखाना जाना है; कि फलाना करना है, कि ढिकाना करना है। हरकत खड़ी करेगा आकर। निश्चित हरकत खड़ी करेगा। कोई न कोई उपद्रव खड़ा कर देगा। मगर घूमेगा वहीं, चक्कर वहीं मारेगा।
बच्चे मां-बाप की स्वतंत्रता नष्ट करते हैं। मां-बाप बच्चों की स्वतंत्रता नष्ट करते हैं। पति पत्नी की, पत्नी पति की... एक-दूसरे की स्वतंत्रता पर दुश्मन की तरह बैठे हुए हैं। और मुश्किल यह है कि स्वतंत्रता मर जाए तो प्रेम तो बचता है लेकिन उसमें कोई रस नहीं रह जाता, उसमें फूल नहीं खिलते। यह ऐसा ही है जैसे किसी पक्षी का एक पंख बचे--एक का नाम स्वतंत्रता, एक का प्रेम--एक काट दो, पक्षी मुर्दा हो गया। कोई भी एक काट दो, उड़ नहीं सकता अब। अब आकाश की यात्रा पर नहीं जा सकेगा।
क्या यह नहीं हो सकता है कि दोनों पंख साबित रहें? यह हो सकता है। और इसी के होने के लिए मेरा सारा प्रयोजन है, सारा आयोजन है। मैं चाहता हूं कि तुम्हारे दोनों पंख शेष रहें, ताकि तुम दूर आकाश की यात्रा पर जा सको; ताकि तुम अनंत की यात्रा कर सको। प्रेम भी चाहिए और स्वतंत्रता भी चाहिए। प्रेम भी चाहिए और ध्यान भी चाहिए।
इसलिए मैं रामायण वगैरह की बकवास में भरोसा नहीं करता। और बाबा तुलसीदास को मैं कोई बहुत मनोवैज्ञानिक या कोई दार्शनिक नहीं मानता; बुद्ध तो मानने का सवाल ही नहीं उठता। ये तो ग्रामीण किस्म के व्यक्ति हैं और इसलिए गांव में लोगों को इनकी बात खूब जंची। गांव की बुद्धि से तुलसीदास की बुद्धि का खूब मेल बैठा। यह बुद्धि कुछ विकसित बुद्धि नहीं है--अत्यंत ग्राम्य है, आदिम है। इसलिए गांवों में तुलसीदास की जैसी छाप पड़ी वैसी किसी की भी नहीं पड़ी। उसका कारण साफ था। तालमेल बैठ गया, दोनों की भाषा बराबर मालूम पड़ी।
और आर्यसमाजी इस देश में सबसे ज्यादा ग्रामीण बुद्धि के लोग हैं। नहीं तो दयानंद का उन पर कोई असर नहीं पड़ने वाला था। दयानंद की बातें तो बहुत ओछी हैं, बहुत बचकानी हैं। उनके तर्क भी बहुत लंगड़े-लूले हैं। कभी-कभी मेरा मन होता है कि ये जो छोटे-छोटे लोग छोटी-छोटी बातों से बेचैन हो जाते हैं, तो एकबारगी उठा कर रामायण को एक कोने से लेकर दूसरे

कोने तक खंडित कर दिया जाए। और सत्यार्थ प्रकाश को उठा कर उसकी चिंदियां उड़ा दी जाएं। चिंदियां उड़ाने योग्य है, क्योंकि एक भी तर्क में कोई बल नहीं है। लेकिन फिर मैं यह सोचता हूं कि क्या फिजूल के काम में लगना! और भी काम काम के योग्य हैं करने को। लेकिन अगर कभी मेरे पास वक्त बचा--ऐसा वक्त कि जब काटे नहीं कटे, तब मैं इनको काटूंगा। अगर मुझे कभी जिंदगी में फुरसत मिली, जो मिलनी नहीं है--क्योंकि झंझटें इतनी हैं किस-किस को काटते फिरो! अगर कभी मुझे मौका मिला तो ये बाबा तुलसीदास और ये दयानंद, ये दो आदमी तो छोड़ने ही नहीं हैं। इन दो आदमियों ने तो भारत की छाती पर बहुत घूंघर मूता है; बहुत भारत की छाती पर दाल घोट रहे हैं। इनसे तो छुटकारा भारत का चाहिए ही चाहिए।

आखिरी सवालः ओशो, आप बीस वर्षों से सतत बोल रहे हैं। इस तरह बोलना कैसे संभव हो पाता है? इस कला का राज क्या है?

राजेंद्र! राज कुछ भी नहीं। एक छोटी सी कहानी से तुम्हें समझ में आ जाएगा।
एक नेताजी चुनाव लड़ रहे थे। चुनावों के मामले में वे जरा नये-नये ही थे। भाषण-वगैरह देना उन्हें ढंग से आता नहीं था। चुनावी दौरे के समय उनके मित्र ने उनसे कहा कि भाई, ऐसे भी क्या शर्माते हो! अरे नेता होकर शर्म करते हो!
वे बोले कि भाई, मैं जरा इस क्षेत्र में नया-नया हूं और भाषण देने की कला मुझे आती भी नहीं कि कैसे भाषण देना चाहिए। मित्र महोदय हंसे और बोलेः अरे, भाषण देना भी कोई कला है। बस बात में से बात निकालते जाओ, यही तो भाषण का राज है।
इसके बाद नेताजी ने मंच पर जो भाषण दिया, वह इस प्रकार थाः भाइयो और बहनो, न तो मैं स्पीकर हूं, न ही लाउडस्पीकर! स्पीकर हमारे मोहल्ले के कल्लन मियां हुआ करते थे, जो कि आजकल कब्र में हैं। उनकी कब्र पर दो तरह के फूल चढ़ाए गए--गुलाब के और गेंदे के। और आप जानते ही होंगे कि गुलाब से ही गुलकंद बनता है। और गुलकंद ही सारी बीमारियों की जड़ है। और जड़ों में सबसे लंबी जड़ खरबूजे की होती है। और आपको पता ही होगा कि एक खरबूजे को देख कर दूसरा खरबूजा रंग बदलता है। रंग जर्मनी के प्रसिद्ध होते हैं। और जर्मनी में ही हिटलर हुआ था, जिसके कारण द्वितीय विश्वयुद्ध हुआ था। और इस युद्ध में कई शेरे-दिल मारे गए थे। चालीस सेर का एक मन होता है। और मन बड़ा चंचल होता है! चंचल मधुबाला की बहन का नाम था। मधुबाला वही जिसे दिल का दौरा पड़ा था। दिल एक मंदिर है। और इस मंदिर के सामने से कई प्राणी गुजरते हैं, जिनमें कई कुत्ते भी होते हैं। और आपको पता ही होगा कि कुत्ते की दुम हमेशा तिरछी होती है। भाइयो और बहनो, जिस दिन कुत्ते की दुम सीधी हो जाएगी, मैं फिर भाषण देने आऊंगा।
इस तरह बात में से बात निकालते जाना। राजेंद्र, और कुछ कला-वगैरह नहीं है। एक दफा बात में से बात निकालना आ जाए... और सबको आती है असल में। तुम रोज यही तो करते हो। एक-दूसरे से बातचीत करते हो, तो क्या करते हो?
मैं कोई भाषण थोड़े ही देता हूं, मेरी कोई कला थोड़े ही है। जैसे तुमसे अकेले में बैठ कर बात करूं, ऐसे जरा ऊपर मंच पर बैठ कर बात कर लिया। एक से बात की कि हजार से बात की कि दस हजार से बात की, क्या फर्क पड़ता है?
मैं कोई भाषण देने की कला में निष्णात नहीं हूं। मैं तो बातचीत कर रहा हूं।
और भाषण देने की जो कला होती है, वह तो दो कौड़ी की होती है; उसका कोई मूल्य नहीं होता। मैं तो तुम्हारे सामने अपना हृदय खोल कर रख रहा हूं। और हृदय बड़ा रहस्य है! बीस साल क्या, बीस जन्मों तक भी खोलते जाओ, खोलते जाओ, तो भी उस रहस्य का कोई अंत आने वाला नहीं है।
मैं तो तुम्हारे सामने अपने प्रेम को गा रहा हूं। इससे गीत पर गीत निकलते हैं। मैं तो तुम्हारे सामने अपने ध्यान को बांट रहा हूं। जितना बांटो उतना बढ़ता है। मैंने जिस भगवत्ता को जाना है, उसमें तुम्हें

साझीदार बना रहा हूं। बीस वर्ष तो कुछ भी नहीं, अनंतकाल तक भी यह सत्संग चल सकता है।
यह तो मधुशाला है। यहां तो मैं तुम्हें पिला रहा हूं। यहां तो तुम जितना पीओगे उतने प्यासे होते जाओगे। और यह मधु कुछ ऐसा है कि जितना पीओगे उतना होश में आते जाओगे।

योग प्रीतम ने यह गीत मुझे भेजा है--

क्या मस्ती का समां बंधा है तेरे इस मयखाने में
जमा हुआ रिन्दों का मजमा, इस प्यारे मयखाने में
डरते-डरते कदम बढ़ाया, हमने भी इस महफिल में
हम भी हो बैठे दीवाने, पीकर इस मयखाने में
पीने वाला झूम रहा है, पीकर तेरी मय, साकी!
फिर भी होश बना रहता है तेरे इस मयखाने में
ऐसा जाम पिलाते हो तुम, मुर्दे जिंदा हो जाते
देखे क्या-क्या करतब साकी तेरे इस मयखाने में श्रीमन कृष्ण, जनाब मोहम्मद, घुट-घुट बातें करते हैं बुद्धों का जमघट है साकी, तेरे इस मयखाने में मिस्टर जीसस पूना आकर बड़े ठहाके लगा रहे
लगता है कुछ ज्यादा ही पी बैठे इस मयखाने में
बुद्ध नाचने लगे यहां पर, मीरा बैठी ध्यान धरे महावीर रोल्स में आते तेरे इस मयखाने में
कभी योग तो कभी कराटे, सूफी नर्तन, ताई-ची क्या-क्या गोरखधंधे करते गोरख इस मयखाने में बना रही है चाय राबिया, सहजो गेहूं बीन रही
और दया मां बर्तन धोती, इस न्यारे मयखाने में लाओत्सु महाराज प्रेम से, यहां बगीचा सींच रहे नानक साहिब पहरा देते, रात जगे मयखाने में चारों खाने चित्त पड़े हैं, पंडित तोताराम कई गुरजिएफ कर रहे पिटाई, बैठे इस मयखाने में मुल्ला नसरुद्दीन हंसाते, रोज सुबह इस महफिल में हंसी-हंसी में कौन नहीं फंस जाता इस मयखाने में छोड़ रहे भगवान पटाखे, और हंसी की फुलझड़ियां
रोज मनानी है दीवाली, अपने इस मयखाने में
इतना रंग ढुलाया तुमने, तन-मन भी रंग डाले हैं नित होली का उत्सव मनता, तेरे इस मयखाने में तेरे हाथों मय पी लें जो, सचमुच किस्मत वाले हैं डूब-डूब कर तिर जाते हैं, वे तेरे मयखाने में

आज इतना ही।

बहुरि न ऐसो दांव
चौथा प्रवचन

स्वस्थ हो जाना उपनिषद है

पहला प्रश्नः ओशो, तैत्तरीय उपनिषद में एक कथा है कि गुरु ने शिष्य से नाराज होकर उसे अपने द्वारा सिखाई गई विद्या त्याग देने को कहा। तो "एवमस्तु" कह कर शिष्य ने विद्या का वमन कर दिया, जिसे देवताओं ने तीतर का रूप धारण कर एकत्र कर लिया। वही तैत्तरीय उपनिषद कहलाया।
ओशो, इस उच्छिष्ट ज्ञान के संबंध में समझाने की कृपा करें।

जिनस्वरूप! इस संबंध में बहुत सी बातें विचारणीय हैं। पहली तो बात यह
है कि गुरु नाराज नहीं होता। दिखाए भला, अभिनय भला करे, नाराज नहीं होता। जो अपने से राजी हो गया, अब किसी और से नाराज नहीं हो सकता है। वह असंभावना है। इसलिए गुरु नाराज हुआ हो तो गुरु नहीं था।
"गुरु" शब्द बड़ा महत्वपूर्ण है। गुरु का अर्थ अध्यापक नहीं; गुरु का अर्थ शिक्षक नहीं, आचार्य नहीं। गुरु बनता है दो शब्दों से--गु और रु। गु का अर्थ होता हैः अंधकार, रु का अर्थ होता हैः दूर करने वाला। और क्रोध तो अंधकार है। यह तो ऐसे ही हुआ कि कोई कहे कि दीये के पास अंधकार इकट्ठा हो गया। गुरु और नाराज हो जाए, क्रुद्ध हो जाए--यह स्वभाव के नियम के अंतर्गत आता नहीं। यह जीवन की आधारशिलाओं के विपरीत है।
लेकिन हम ऐसे गुरुओं के संबंध में सुनते रहे हैं, जो नाराज हो जाते हैं। दुर्वासा की कथाएं हैं। वे कथाएं केवल इतना ही कहती हैं कि हमने भूल से किसी शिक्षक को गुरु समझ लिया था। और यह भूल आसान है, क्योंकि शिक्षक वे ही शब्द बोलता है जो गुरु; शायद गुरु से भी ज्यादा सुसंबद्ध उसकी तर्कसरणी हो। गुरु तो थोड़ा अटपटा होगा। इसलिए अटपटा होगा कि जिसने सत्य को जाना है, उसके जीवन में सारे विरोधाभास एक ही ऊर्जा में लीन हो जाते हैं। उसके जीवन में जीवन और मृत्यु का मिलन हो जाता है। उसके अस्तित्व में पदार्थ और आत्मा का भेद नहीं रह जाता। उसकी चर्या में सार और असार में कोई चुनाव नहीं बचता। उसके लिए सोना--मिट्टी; और मिट्टी--सोना। उसके लिए संसार-- मोक्ष; और मोक्ष--संसार।
झेन फकीर बोकोजू से किसी ने पूछाः मोक्ष के संबंध में कुछ कहें।
बोकोजू ने कहाः संसार मोक्ष है।
यह केवल कोई गुरु ही बोल सकता है; कोई शिक्षक बोलने की इतनी छाती नहीं रखता--इतनी विराट छाती कि जिसमें मोक्ष को संसार कहा जा सके, आसान मामला नहीं है। विराट के मिलन पर ही संभव हो सकती है यह अभूतपूर्व घटना।
यह जो तैत्तरीय उपनिषद में कथा है, इसमें गुरु नहीं हो सकता, शिक्षक रहा होगा। सुंदर शिक्षक रहा होगा। शिक्षा देने की कला में निष्णात रहा होगा। और सौ गुरुओं में निन्यानबे केवल शिक्षक होते हैं। कोई गीता में पारंगत होता है, कोई वेद में, कोई कुरान में, कोई बाइबिल में--मगर ये सब शिक्षक हैं। गुरु तो वह जो परमात्मा को पीकर बैठा है। गुरु तो वह जिसके पीछे परमात्मा छाया की तरह चले। कबीर ठीक कहते हैंः "हरि लगे पीछे फिरत, कहत कबीर-कबीर।" कबीर कहते हैंः मैं तो फिकर भी नहीं करता। क्या लेना-देना मुझे हरि से? मगर हरि मेरे पीछे लगे फिरते हैं। जहां जाता हूं वहीं लगे फिरते हैं। जागूं तो, सोऊं तो। और दिन-रात धुन लगाए रखते हैं--कबीर-कबीर! भक्तों ने तो परमात्मा को बहुत पुकारा है, लेकिन यह छाती कबीर की किसी गुरु की हो सकती है, जो कहे--"हरि लगे पाछे फिरत, कहत कबीर-कबीर।" तैत्तरीय उपनिषद का गुरु पहली तो बात गुरु नहीं है। गुरु और कैसा क्रोध? न तो गुरु गुरु है और न शिष्य शिष्य।
शिष्य और विद्यार्थी का भेद वैसे ही समझना जरूरी है जैसे गुरु और शिक्षक का भेद। शिक्षक के पास विद्यार्थी इकट्ठे होते हैं; गुरु के पास शिष्य। गुरु के पास विद्यार्थी पहुंच जाए तो भी टिक नहीं सकता; ज्यादा देर नहीं टिक सकता; टिके भी तो कुछ पाएगा नहीं।

गुणा ने एक प्रश्न पूछा है कि "आपकी कुछ बातें तो बुद्धि को रुचती हैं, कुछ बातें नहीं रुचतीं। इसलिए समर्पण पूरा नहीं हो पाता।"
जैसे कि समर्पण भी पूरा और अधूरा हो सकता है! जैसे समर्पण के भी खंड हो सकते हैं! जैसे समर्पण का भी प्रतिशत हो सकता है--दस प्रतिशत, बीस प्रतिशत, पचास प्रतिशत, अस्सी प्रतिशत, निन्यानबे प्रतिशत! नहीं गुणा, समर्पण या तो होता है या नहीं होता। गुरु की बात शिष्य को जंचती ही है; दुनिया को न जंचे तो भी जंचती है। तर्क में न बैठे, बुद्धि की पकड़ में न आए, तो भी जंचती है। शिष्य वह है कि जिसके सामने अगर सवाल हो कि गुरु की बात मानूं या अपने तर्क की, तो वह गुरु की मानता है, तर्क को कहता है नमस्कार।
विद्यार्थी वह है जो वहां तक शिक्षक के साथ जाता है जहां तक उसका तर्क जाने देता है। विद्यार्थी कभी भी अपने तर्क से एक इंच दूर शिक्षक के साथ नहीं जाता। शिक्षक के साथ जाता ही नहीं। वह तो अपने तर्क का ही भरण-पोषण करता है। वह तो शिक्षक से कुछ ज्ञान, कुछ सूचना एकत्रित करके ले जाएगा। जीवन-रूपांतरण उसकी आकांक्षा नहीं, उसकी अभीप्सा नहीं।
गुणा तो बहुत वर्षों से मुझे जानती है। लेकिन दूरी वैसी की वैसी बनी
है और लगता है वैसी की वैसी ही बनी रहेगी। मेरी तरफ से तो पूरी चेष्टा है कि तोड़ दूं दूरी, मगर अगर तेरी बुद्धि को अभी भी निर्णय करना है--कौन सी बात जंचती है और कौन सी नहीं जंचती--तो समर्पण असंभव है। जहां समर्पण नहीं वहां शिष्यत्व नहीं।
और यह ख्याल रखना, गुरु जान कर बहुत सी ऐसी बातें कहता है जो बुद्धि को जंचेंगी नहीं। जान कर कहेगा, क्योंकि वही तो कसौटी है। वही तो परीक्षा है। उसको जो पार कर लेगा, वह शिष्य; जो पार नहीं कर पाएगा, वह विद्यार्थी। गुरु अगर वही-वही कहता रहे जो तुम्हारी बुद्धि को जंचता ही है तो शिष्य और विद्यार्थी में भेद करना ही असंभव हो जाएगा।
विद्यार्थी शिष्य की गरिमा को नहीं पा सकता। विद्यार्थी घिसटता है शिक्षक के प्रति। शिष्य गुरु के आगे नाचता है। गुरु तो इशारा करता है और शिष्य यह गया वह गया! वह यह भी नहीं पूछता--नक्शा कहां, किस मार्ग से जाऊं, राह में कोई खतरे तो नहीं हैं? सारी सुविधाएं-सुरक्षाएं जुटा लूं, फिर जाऊंगा। पहले मेरा पूरा तर्क राजी हो जाए, फिर जाऊंगा। थोड़ा और सोच लूं, थोड़ा और विचार कर लूं।
एक महानुभाव ने पूछा हैः "मैं संन्यास लेना चाहता हूं, लेकिन कुछ बातें अड़चन बन जाती हैं। जैसे कि आपने कहा था कि जब तक मैं रहना चाहूंगा, कोई छुरा भी मारे तो भी मुझे मिटा न सकेगा। और जिस दिन मैं न रहना चाहूंगा, उस दिन एक क्षण कोई लाख उपाय करे तो मुझे टिका न सकेगा।"
यह बात उनको जंची। संन्यास का भाव उठा होगा तब। फिर अब उनको अड़चन हो गई, क्योंकि यहां वे देखते हैं कि संन्यासी सुरक्षा का आयोजन किए हैं, द्वार पर प्रत्येक व्यक्ति का निरीक्षण किया जाता है, पहरेदार हैं। तो अब उनको अड़चन आई। अब बुद्धि को चिंता शुरू हुई कि अगर छुरा मारने से भी हटाया नहीं जा सकता, तो सुरक्षा का आयोजन क्यों?
उन्होंने बात को अधूरा ही सुना। हम उतना ही सुनते हैं जितना हम सुनना चाहते हैं। मैंने कहा थाः "छुरा मार कर मुझे उठाया नहीं जा सकता। सुरक्षा करके मुझे बचाया नहीं जा सकता। न तो मैं छुरा मारने वालों को रोकने को कुछ कहूंगा और न सुरक्षा करने वालों को रोकने को कुछ कहूंगा। जब छुरा मारने वाले स्वतंत्र हैं तो सुरक्षा करने वालों को क्यों बाधा देनी?"
इतनी अक्ल उनमें न उठी। इतनी अक्ल अक्ल में होती ही नहीं। अक्ल तो बेअक्ल है!
महात्मा गांधी की मृत्यु के समय उनके पटशिष्य सरदार वल्लभ भाई पटेल
के हाथ में सारी सुरक्षा का आयोजन था। वे गृहमंत्री थे, उप-प्रधानमंत्री थे। और सरदार को खबर मिली थी सुनिश्चित स्रोतों से कि गांधी की हत्या का आयोजन किया जा रहा है। एक-दो प्रयास भी हो चुके थे, असफल गए थे। तो सरदार ने जाकर महात्मा गांधी को पूछा कि हम सुरक्षा का आयोजन करें? इस पूछने में ही बेईमानी है। क्योंकि जो बंदूक मारने आ रहे थे वे तो पूछ कर आ नहीं रहे थे। जब दुश्मन नहीं पूछ रहा है तो दोस्त क्यों पूछे? और इस पूछने में बेईमानी

है, इसलिए कि अगर महात्मा गांधी कहते कि हां सुरक्षा का आयोजन करो, तो सरदार वल्लभ भाई पटेल की श्रद्धा ही महात्मा गांधी में खत्म हो जाती कि अरे, यह व्यक्ति कहता था कल तक कि राम जब उठाना चाहेगा तब उठाएगा और अब कहने लगा कि सुरक्षा का इंतजाम करो? सरदार की श्रद्धा ही खिसक गई होती। सरदार अचेतन मन में तो यही आकांक्षा लेकर गए होंगे कि गांधी कहेंगे कि कोई सुरक्षा की आवश्यकता नहीं है। यह मैं सुनिश्चित रूप से कहता हूं कि वे यही आकांक्षा लेकर गए होंगे कि गांधी कहेंगे, "सुरक्षा की क्या आवश्यकता है? परमात्मा सुरक्षा है।" और वही गांधी ने कहा और सरदार प्रसन्न लौटे। विद्यार्थी के अनुकूल हो गई बात और सारे देश को अच्छी लगी कि यह है श्रद्धा! ईश्वर पर कैसी श्रद्धा है! कोई सुरक्षा की जरूरत नहीं!
मगर, नाथूराम गोडसे में जो आया था वह भी ईश्वर है। और सरदार वल्लभ भाई पटेल में जो आया था वह भी ईश्वर है। तुम ईश्वर-ईश्वर में चुनाव कैसे करते हो? नाथूराम गोडसे का ईश्वर कुछ ज्यादा ईश्वर मालूम होता है? मैं इसे श्रद्धा नहीं कहता। मैं तो मानता हूं यह विनम्रता के रूप में छिपा हुआ अहंकार है। मैं तो कहूंगा गांधी में अगर सच में ही श्रद्धा थी तो वे कहतेः "जो उसकी मरजी! अगर वह किसी को छुरा मारने भेजता है, किसी को गोली चलाने भेजता है और किसी से सुरक्षा करवाता है--जो उसकी मरजी! जो उसकी लीला! मैं तो द्रष्टा हूं, देखूंगा। उठ जाऊं तो ठीक, न उठूं तो ठीक। रहा तो उसका काम करूंगा, उठा तो उसका काम करते हुए उठूंगा।" मैं उसको श्रद्धा कहता।
गांधी श्रद्धालु नहीं हैं। गांधी हत्यारे में तो भरोसा करते हैं; लेकिन रक्षक में नहीं। और सरदार पटेल बिल्कुल निश्चिंत हो गए कि बिल्कुल ठीक बात है। सच पूछो तो नाथूराम गोडसे से ज्यादा मोरारजी देसाई और सरदार वल्लभ भाई पटेल, ये दो आदमी महात्मा गांधी की हत्या के लिए जिम्मेवार हैं। क्योंकि मोरारजी देसाई महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री थे और उनको भी खबर थी कि महाराष्ट्र से ही आयोजन चल रहा है हत्या का। और सरदार वल्लभ भाई पटेल केंद्र के गृहमंत्री थे, और उनको भी पता था कि हत्या का आयोजन चल रहा है। लेकिन दोनों चुप बैठे रहे। और चुप बैठने के लिए एक सुंदर सुरक्षा का उपाय मिल गया कि गांधी कहते हैंः "क्या करना सुरक्षा से? जब तक उसे रखना है रखेगा; जब हटाना है हटा लेगा।"
मैं कुछ और ढंग से सोचता हूं। जिनसे उसे हटवाना है उनसे हटवाएगा; जिनसे उसे रुकवाना है उनसे रुकवाएगा। न मैं किसी को कहता हूं कि आकर मुझे गोली मारो, न मैं किसी को कहता हूं कि जो गोली आकर मारे उसे रोको। मैं कौन हूं? जिसकी मर्जी हो गोली मारे, जिसकी मर्जी हो गोली रोके! मेरे लिए दोनों खेल हैं।
मगर जिन महानुभाव ने पूछा है, उनकी संन्यास की धारणा, संन्यास लेने की इच्छा डगमगा गई कि कैसे संन्यास लेना! संन्यास बुद्धि से नहीं लिए जाते। समर्पण बुद्धि से नहीं होते। संन्यास और समर्पण पर्यायवाची हैं। और शिष्य वही है जो समर्पित है, जो संन्यस्त है--जो गुरु के साथ अगम्य में जाने को राजी है। और अगम्य का तुम कैसे पार पाओगे, तर्क से कैसे नापोगे, बुद्धि के तराजू पर कैसे तौलोगे?
तो न तो यह गुरु था तैत्तरीय उपनिषद का व्यक्ति और न उसके पास जो सीखने बैठा था वह शिष्य था। यह शिक्षक था, वह विद्यार्थी था। यह रटी हुई बातें दोहरा रहा था, वह उन बातों को रट रहा था, ताकि कल वह भी शिक्षक हो जाएगा और दूसरों को रटवाएगा। गुरु नाराज हो गया किसी बात से शिष्य पर! गुरु नाराज नहीं होता शिष्य पर। यह तो असंभव है। शिष्य नाराज नहीं होता गुरु पर; वह भी असंभव है। गुरु की तो बात ही छोड़ दो कि वह नाराज होगा। अरे शिष्य भी नाराज नहीं होता! यह प्रेम की पराकाष्ठा है। यहां कहां नाराजगी का प्रवेश? यह तालमेल का आत्यंतिक रूप है। यहां स्वर टूटते नहीं, छूटते नहीं। यहां लयबद्धता समग्र है, संपूर्ण है।
लेकिन विद्यार्थी नाराज हो जाते हैं, जरा-जरा सी बात में नाराज हो जाते हैं। हजारों विद्यार्थी मेरे पास आए और गए--जरा सी बात में। उनको हटाने में देरी नहीं लगती। मुझे जिस दिन विद्यार्थियों को छांटना हो, एक क्षण में छांट देता हूं। अक्सर छांटता रहता हूं, क्योंकि कचरा-कूड़ा

इकट्ठा होता है तो उसे छांटना ही पड़ता है। कंकड़-पत्थर आ जाते हैं, उनको छांटना ही पड़ता है। और छांटना इतना आसान है, जिसका हिसाब नहीं। एक बात कह दो, वे नाराज हो जाएंगे। फिर जो भागे वे लौट कर न देखेंगे। फिर जिंदगी भर गालियां देंगे। यूं यहां चरणों में गिरने को उत्सुक बैठे थे, एक क्षण में उनका चरणों में गिरना गाली बन सकता है--एक क्षण में! उसमें देर ही नहीं लगती।
यह कथा कहती है, गुरु शिष्य से नाराज हो गया। और नाराज हो, तो गुरु करे क्या? गुरु तो था ही नहीं, करेगा क्या नाराज हो तो? उसने कहाः वापस कर दे मेरी इस विद्या को जो मैंने सिखाई है! यह केवल शिक्षक ही कह सकता है, क्योंकि गुरु जो सिखाता है वह वापस किया ही नहीं जा सकता, न वापस मांगा जा सकता है। वह तो जीवन-रूपांतरण है, उसको वापस करने का कोई उपाय नहीं है। जिस भोजन को तुमने पचा लिया, जो तुम्हारा रक्त-मांस-मज्जा बन गया, जो तुम्हारी हड्डियों में प्रविष्ट हो गया, जो तुम्हारी आत्मा तक चला गया--उसका वमन कैसे करोगे? हां, जो अनपचा है, जो खून नहीं बना है, जो पत्थर की तरह पेट में पड़ा रह गया है, जो भार है--उसका वमन किया जा सकता है। उसका वमन करने से हलकापन ही लगेगा। उसका वमन स्वास्थ्यप्रद है।
गुरु नाराज हुआ। उसने कहाः मेरी सिखाई विद्या वापस कर दे। ये बातें बचकानी हैं। ये गुरु के मुंह से शोभा नहीं देतीं। गुरु, पहली तो बात, कुछ सिखाता ही कहां है? गुरु तो, तुम जो सीखे हो, उसको मिटाता है। गुरु शिक्षण नहीं देता। गुरु शिक्षण छीनता है। गुरु ज्ञान नहीं देता, गुरु ज्ञान छीनता है। गुरु तुम्हें ज्ञान से मुक्त करता है, निर्दोष करता है। शिक्षक ज्ञान देता है, तो शिक्षक छीन भी सकता है। जो दिया जा सकता है वह छीना जा सकता है। गुरु तो कुछ देता ही नहीं, छीनेगा क्या? गुरु तो साफ करता है, कूड़े-करकट से तुम्हें मुक्त करता है। वापस लेने को तो कुछ है नहीं; दिया ही नहीं कभी।
जिनका मन लोभ से भरा है वे शिक्षकों के पास इकट्ठे होते हैं, क्योंकि वहां कुछ मिलेगा। सिर्फ निर्लोभी गुरु के पास बैठ सकते हैं, क्योंकि वहां कुछ खोना पड़ेगा। कुछ ही नहीं, अंततः स्वयं को खोना पड़ेगा। वहां शून्य होना पड़ेगा। जो शून्य हुआ वही शिष्य है। गुरु के पास से तुम रोज-रोज और-और खाली होकर लौटते हो। बुद्धि चली जाती, तर्क चला जाता, अहंकार चला जाता, इच्छाएं चली जाती हैं, महत्वाकांक्षाएं चली जाती हैं, अभीप्साएं चली जाती हैं। संसार ही नहीं जाता, मोक्ष, निर्वाण, समाधि, सब चला जाता है। कुछ बचता ही नहीं। गुरु कुछ छोड़ता ही नहीं। उठाता है तलवार और काटता चला जाता है। जब तुम्हारे भीतर सन्नाटा हो जाता है--न कोई शोर, न कोई आवाज--जब वैसी महाशांति तुम्हारे भीतर घनीभूत होती है, तब तुम योग्य हुए शिष्य कहलाने के। अब तुमसे छिनेगा क्या? जो छिनने का था वह तो छीन ही लिया गया।
और इस शून्य को कोई नहीं छीन सकता, क्योंकि शून्य तुम्हारा स्वभाव है। इसका वमन नहीं हो सकता। वमन तो उसका हो सकता है जो पर-भाव है। जो बाहर से डाला गया है, उसको तुम फेंक सकते हो। लेकिन जो भीतर ही है, जो तुम्हारा अंतर्तम है, उसका वमन नहीं हो सकता।
जिनस्वरूप, तुमने यह कथा उठा कर ठीक किया। यह कथा महत्वपूर्ण है। इसमें न तो गुरु गुरु है, न शिष्य शिष्य है। और इसलिए शिक्षक नाराज हो गया विद्यार्थी से, उसने कहा कि लौटा दे मेरी विद्या। क्या बचकानी बातें हैं! क्या टुच्ची बातें हैं! क्या थोथे वक्तव्य हैं! लौटा दे। जरा-जरा सी बात में--मैंने दिया, वह लौटा दे। यह देना भी सशर्त है कि छीन लूंगा अगर जरा गड़बड़ की; अगर जरा मेरे विपरीत गया, अनुकूल न हुआ तो छीन लूंगा, वापस ले लूंगा। यह कैसी विद्या, जो वापस दी जा सकती है?
इस जगत में जो तुमने ठीक-ठीक जान लिया है, उसे तुम कैसे वापस करोगे? जैसे अंधे आदमी की आंख खुल गई, उसने रोशनी देख ली, अब वह लाख उपाय करे, कैसे वापस करेगा? वह कितना ही कहे कि मैंने नहीं देखी, मान लिया कि मैंने नहीं देखी; मगर देख तो ली है।
जीवन के परम सत्यों में एक सत्य यह हैः जो जाना जाता है उसे फिर अनजाना नहीं किया जा सकता। और जिसे अनजाना किया जा सकता है उसे तुमने कभी

जाना ही नहीं था। जो चीज तुम्हारे रग-रेशे में समा जाती है, उसका परित्याग असंभव है। कुछ चीजें तुम्हारे अनुभव में हैं, उनका मैं उल्लेख करूं तो समझ में आ जाए। क्योंकि जो तुम्हारे अनुभव में नहीं है, उसके उल्लेख करने से कुछ सार नहीं है।
तुमने अगर तैरना सीखा है तो क्या तुम उसे कभी भूल सकते हो? अब तक दुनिया में ऐसा कभी नहीं हुआ कि कोई तैरना भूल गया हो। चाहे पचास साल न तैरे, तैरना कोई भूलता ही नहीं। असंभव। क्यों? तैरना भूलना असंभव क्यों है? इस पर गहन शोध की जरूरत है कि तैरना भूलना असंभव क्यों है, इसकी विस्मृति क्यों नहीं हो सकती? गणित भूल जाता, भूगोल भूल जाता, इतिहास भूल जाता, विज्ञान भूल जाता, हर चीज भूल जाती है--लेकिन तैरना! तैरना नहीं भूलता। राज है। असल में तैरना हम सीखते नहीं, केवल पुनःस्मरण करते हैं। हम उसे जानते ही हैं स्वभाव से। मां के पेट में बच्चा नौ महीने पानी में ही तैरता है। मां के पेट में समुद्र के जल जैसा जल इकट्ठा हो जाता है। वह जो पेट मां का इतना बड़ा दिखाई पड़ता है, उसमें बच्चे का होना तो कारण होता ही है, ज्यादा कारण होता है बच्चे के तैरने के लिए जल का इकट्ठा होना। और उस जल का जो रासायनिक रूप है, वह वही है जो समुद्र के जल का है। और बच्चे की जो पहली अभिव्यक्ति है वह मछली जैसी है। इसी से वैज्ञानिकों ने यह खोज की है कि मनुष्य का जन्म सबसे पहले समुद्र में हुआ होगा। करोड़ों वर्ष हो गए इस बात को हुए, लेकिन मनुष्य सबसे पहले मछली की तरह प्रकट हुआ होगा।
संभवतः हिंदुओं की मत्स्य अवतार के पीछे यही धारणा है। ईश्वर ने पहला अवतार मछली की तरह लिया। यह कहने का एक और ढंग है मगर बात वही है कि जीवन पहली दफा मछली की तरह उतरा। और हर बच्चे को नौ महीने में, करोड़ों वर्षों में जो मनुष्य-जाति ने यात्रा की है, वह नौ महीने में त्वरा से, तेजी से पूरी करनी पड़ती है। बच्चे के नौ महीने के विकास के जो अलग-अलग अंग हैं, उनको समझ कर हम मनुष्य-जाति के पूरे विकास को समझ सकते हैं। और तब चार्ल्स डार्विन सत्य सिद्ध मालूम होता है, क्योंकि बच्चे के जीवन में एक घड़ी आती है मां के पेट में जब वह बंदर जैसा होता है, उसकी पूंछ भी होती है। फिर पूंछ गिर जाती है। नौ महीने होते-होते वह मनुष्य की प्रतिकृति में आ पाता है। लेकिन शुरुआत होती है मछली से।
अगर करोड़ों वर्ष पहले आदमी का प्राथमिक जीवन मछली की तरह शुरू हुआ था
तो उसके स्वभाव के अंतर्तम में तैरना है। हम भूल गए हैं भाषा, यह और बात है; लेकिन हमारा स्वभाव उसे अभी भी याद किए है।
और तैरने में हम करते भी क्या हैं! कोई तैरना सिखाता है किसी को! वस्तुतः किसी को भी पानी में फेंक दो, वह हाथ-पैर तड़फड़ाने लगेगा। वह जरा गैर-ढंग से हाथ-पैर तड़फड़ाता है, क्योंकि उसे अभी सलीका नहीं है। थोड़ा इन्हीं हाथ-पैर को ढंग से फेंकने लगे कि तैरना आ गया। जो तैरना सिखाता है वह इस सत्य को जानता है कि कुल काम इतना ही है कि तैरना सीखने वाले को यह भरोसा बना रहे कि कोई मेरी रक्षा के लिए मौजूद है, घबड़ाने की कोई जरूरत नहीं; उसका आत्म-विश्वास बढ़ जाए। तैरना तो उसके भीतर छिपा है, वह प्रकट हो जाएगा।
जापान के एक मनोवैज्ञानिक ने छह महीने के बच्चों को तैरना सिखाया है!
और अब वह तीन महीने के बच्चों पर प्रयोग कर रहा है। छह महीने के बच्चे तैरने लगते हैं। कल्पनातीत मालूम होती है यह बात कि छह महीने का बच्चा कैसे तैरेगा! लेकिन जब मां के पेट में नौ महीने बच्चा तैरता ही रहता है तो छह महीने का भी तैरेगा, तीन महीने का भी तैरेगा, तीन दिन का भी तैरेगा। तैरना हमारा स्वभाव है।
सच्ची विद्या वही है जो हमारे स्वभाव का आविष्कार है। गुरु के पास हमें कुछ सिखाया नहीं जाता, वरन हम जो विस्मरण कर बैठे हैं, उसकी सुरति दिलाई जाती है, उसकी याद दिलाई जाती है। भूली भाषा को गुरु हमारे भीतर पुनः जगा देता है। जो स्वर हमारे सोए पड़े हैं, गुरु के स्वरों की झनकार में झनझना उठते हैं। गुरु गाता है, उसकी अनुगूंज हमारे भीतर भी गुनगुनाहट बन जाती है। गुरु नाचता है, उसके पैरों की झनकार हमारे भीतर के घुंघरुओं को

हिला देती है। गुरु सितार बजाता है, उसकी तार का छेड़ देना हमारी हृदय-तंत्री पर एक आघात हो जाता है।

विद्या साधारण शिक्षा नहीं है। विद्या से वह जाना जाता है, जिसे हम जानते ही थे और भूल गए हैं। और शिक्षा से वह जाना जाता है, जिसे हम कभी जानते ही नहीं थे; इसलिए कभी भी भूल सकते हैं।
तो इस शिक्षक ने--मैं कहूंगा शिक्षक ने--विद्यार्थी से नाराज होकर कहा
कि लौटा दे, मेरी विद्या लौटा दे। क्या करता विद्यार्थी भी! उसने "एवमस्तु" कह कर विद्या का वमन कर दिया। यह कहानी बड़ी प्रीतिकर है। उसने उलटी कर दी कि ले रख, अब और क्या कर सकता हूं? अनपचा तो था ही। बोझ ही हो रहा होगा। उसने उतार कर बोझ रख दिया। उसने कहाः सम्हाल अपना कचरा! उसने हलकापन ही अनुभव किया होगा।
"और देवताओं ने तीतर का रूप धारण कर उसे एकत्र कर लिया।" ये देवता भी गजब के लोग हैं! देवताओं से हमने ऐसे-ऐसे काम करवाए हैं जो कोई न करे। अब किसी ने उलटी की है, इन्होंने तीतर बन कर उसकी उलटी को भी इकट्ठा कर लिया! इसलिए हम देवताओं को कोई परम अवस्था नहीं मानते।
इस देश के हजारों साल के आध्यात्मिक अनुभवों का यह नतीजा और निष्कर्ष
है कि मनुष्य चौराहा है। और जिस व्यक्ति को भी मोक्ष की यात्रा पर जाना है, उसे मनुष्य से ही मोक्ष की यात्रा पर जाना होगा। देवता को भी मनुष्य होना पड़ेगा, तभी वह मोक्ष की यात्रा पर जा सकता है। देवता मनुष्य से ऊपर नहीं है; भिन्न है, मगर ऊपर नहीं है। मनुष्य से ज्यादा सुखी होगा। नरक में जो हैं, वे मनुष्य से ज्यादा दुखी हैं। स्वर्ग में जो हैं, वे मनुष्य से ज्यादा सुखी हैं। स्वर्ग यूं समझो संपन्न है, समृद्ध है! नरक यूं समझो, विपन्न है, दरिद्र है! लेकिन बहुत दरिद्रता का एक खतरा है कि आदमी दरिद्रता से राजी हो जाता है। हम पूरब के देशों में यह देख सकते हैं--लोग दरिद्रता से राजी हो गए हैं। न केवल राजी हो गए हैं, बल्कि अगर तुम उनकी दरिद्रता पर चोट करो तो वे नाराज होते हैं। वे तुमसे संघर्ष लेंगे। वे तुमसे लड़ेंगे। वे अपनी दरिद्रता को बचाएंगे। सदियों पुरानी प्राचीन दरिद्रता, सनातन दरिद्रता, उनका सनातन धर्म--कैसे छोड़ दें? इतनी आसानी से छोड़ दें? दरिद्रनारायण होने को यूं छोड़ दें, यूं गंवा दें? मुफ्त में नारायण होकर बैठे हैं! कैसे छोड़ दें? नहीं छोड़ा जाता उनसे।
अब तुम देखते हो, हरिजनों पर इतने अत्याचार होते हैं जिसका कोई हिसाब नहीं है। एक मित्र ने पूछा है कि "हरिजनों पर इतने अत्याचार हो रहे हैं, उनकी बस्तियां जलाई जा रही हैं, उनके झोपड़े जलाए जा रहे हैं। हरिजन मारे जा रहे हैं। उनके कुओं में जहर डाल दिया जाता है। उनकी स्त्रियों के साथ बलात्कार किया जाता है। गर्भवती स्त्रियों के साथ बलात्कार किया जाता है। बलात्कार में उनके बच्चे गिर जाते हैं। यह सब हो रहा है। आप इसे रोकने के लिए कुछ क्यों नहीं करते?"
जिन पर हो रहा है, वे कम से कम इतना तो कर सकते हैं कि हिंदू धर्म का त्याग कर दें। वे इतना नहीं करते तो मैं क्यों करूं कुछ? जिन मूढ़ताओं के कारण उनको सताया जा रहा है, उसी धर्म को वे पकड़े बैठे हुए हैं। मेरे करने से क्या होगा? जिन पंडित-पुजारियों के द्वारा यह सारा का सारा उपद्रव आयोजित किया गया है सदियों-सदियों से, वे उन्हीं के चरण धोकर पी रहे हैं, वे उन्हीं की पूजा कर रहे हैं। इतना ही नहीं, वे उन्हीं मंदिरों में प्रवेश का आग्रह रखते हैं जिन मंदिरों के बैठे देवता उनकी सारी की सारी कठिनाइयों का कारण हैं।
मैं एक गांव में था, उस गांव के हरिजनों ने मुझसे आकर कहा कि आप आए हैं, आपकी लोग बात मानते हैं यहां, हमें मंदिर में प्रवेश का अधिकार दिला दो। मैंने कहा कि तुम अभी इनसे थके नहीं! इनके ही मंदिर में जाना चाहते हो? उसी मंदिर में जिस मंदिर में वे ही शास्त्र, वे ही देवता, वे ही पुजारी, वे ही पंडित हैं जिन्होंने तुम्हारे प्राणों का शोषण किया है सदियों-सदियों से? थूको इस मंदिर पर! अगर वे तुमसे कहें भी कि मंदिर में आओ, तो मत जाना। लात मारो इस मंदिर पर!

अरे--उन्होंने कहा--आप कैसी बातें कर रहे हैं? मंदिर पर और लात मारें, थूकें मंदिर पर! आप कहते क्या हैं? क्या आप नास्तिक हैं?
मैं नास्तिक हूं और ये आस्तिक हैं! और तुम मुझसे पूछते हो कि मैं इनके लिए कुछ क्यों नहीं करता? ये मूढ़ अपनी बीमारियों से, रोगों से चिपके हुए हैं। कौन इनको पकड़ रहा है? ये छोड़ते क्यों नहीं? हटते क्यों नहीं? कौन इन्हें रोक रहा है? और तुम देखते हो, फौरन अंतर हो जाता हैः वही हरिजन, जिसको तुम अपने साथ गद्दी पर न बिठालते, अगर ईसाई हो जाए और आए तो तुम उठ कर खड़े होते हो। कहते होः आइए साहब, बैठिए! वही सज्जन अब गद्दी पर बिठालने के योग्य हो गए। वही मुसलमान हो जाए तो आप कहते हैंः आइए मीर साहिब! नहीं तो सीढ़ियों के बाहर--।

मैं एक मित्र को जानता हूं, लियोनर्ड थियोलाजिकल कालेज जबलपुर के वे प्रिंसिपल थे--मैक्वान। गुजराती थे। एक दिन मुझे अपने घर ले गए। कहा कि मैं कुछ चीजें दिखाना चाहता हूं। उन्होंने अपनी मां से मुझे मिलाया। उनकी मां काफी उम्र की थीं, कोई नब्बे वर्ष की होंगी। और उन्होंने अपने पिता की तस्वीर मुझे दिखाई। फिर अपनी लड़की को बुलाया--सरोज मैक्वान को। वह अमरीका से अभी-अभी पीएचड़ी. होकर लौटी थी और एक अमरीकन युवक से शादी करके आई थी। और कहा कि जरा देखें मेरी ये तीन पीढ़ियां--यह मेरे पिता, यह मेरी मां, यह मैं, यह मेरी पत्नी, यह मेरी लड़की, यह मेरा दामाद। तीन पीढ़ियों में इतनी क्रांति हो गई!
बाप उनका भिखमंगा था। वह एक टूटा-फूटा भिक्षापात्र लिए बैठा है--उसकी तस्वीर। वह भूखा ही रहा, भूखा ही जीया, भूखा ही मरा। उसने कभी जीवन में और कुछ न जाना। वह हरिजन था। उसे सिर्फ दुत्कारा गया। जब बाप मर गया तो मां परेशान हो गई, भूख और परेशानी में ईसाई हो गई। अभी भी उनकी मां के चेहरे पर दरिद्रता की सारी लकीरें हैं। अभी भी उनकी मां को पहचाना जा सकता है कि हिंदू सनातन धर्म की छाप गई नहीं है।
मैंने उनसे पूछा कि तुम्हारी मां ईसाई हो गई, तो अब तो ये हिंदू धर्म में कोई रस नहीं रखती? उन्होंने कहाः यह मत पूछो आप, अभी भी हनुमान चालीसा पढ़ती है। अभी भी बजरंगबली को मानती है। खुद एक बड़े कालेज के प्रिंसिपल हैं। पत्नी भी प्रोफेसर है। जोड़ना मुश्किल पड़ता है, क्योंकि जब मां ईसाई हो गई तो ईसाइयों ने मैक्वान को पढ़ने के लिए अमरीका भेज दिया। वहीं वे बड़े हुए, वहीं उन्होंने शादी की। और उनकी लड़की को देख कर तो भरोसा ही न आएगा। सुंदरतम युवतियों में से एकजो मैंने देखी हैं। और ये तीन पीढ़ियों में इतनी क्रांति हो गई।
हरिजनों को कौन रोक रहा है कि तुम हिंदू घेरे में रहो? इस सड़े घेरे को छोड़ो। जहां तुमने सिवाय दुख और पीड़ा के कुछ भी नहीं पाया, जहां सिवाय अपमान के, दुत्कार के, लातें खाने के तुम्हें कुछ और मिला नहीं--वहां किस आशा पर रुके हुए हो? जिस राम ने एक शूद्र के कान में शीशा पिघलवा कर भरवा दिया, तुम उसी राम की अभी भी स्तुति कर रहे हो, गुणगान कर रहे हो? संकोच भी नहीं, शर्म भी नहीं! जिस मनु ने तुम्हारी गिनती मनुष्यों में नहीं की है, तुम उसी मनु महाराज के द्वारा निर्मित समाज-व्यवस्था के अंग बने हुए हो? जिन तुलसीदास ने तुम्हें पशुओं के साथ गिना है--ढोल, गंवार, शूद्र, पशु, नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी--और कहा है कि तुम्हें ताड़ा ही जाना चाहिए; तुम इसके अधिकारी हो, तुम्हें सताया ही जाना चाहिए; यह तुम्हारा अधिकार है। सताया जाना तुम्हारा अधिकार है और हम तुम्हें सताएं यह हमारा अधिकार है-- तुम उन्हीं तुलसीदास की चौपाइयां रट रहे हो! और उन्हीं के मानने वाले लोग तुम्हारी पत्नियों के साथ व्यभिचार कर रहे हैं, गर्भपात कर रहे हैं, आग लगा रहे हैं, हत्याएं कर रहे हैं, गोलियां चला रहे हैं--और फिर भी तुम उन्हीं के घेरे में रुके रहना चाहते हो!
आदमी दुख से भी राजी हो जाता है, दुख को भी पकड़ लेता है। इसलिए नरक से कोई छुटकारा नहीं। यह बड़े मजे की बात है कि आदमी सुख से ऊब जाता है, दुख से नहीं ऊबता। यह मनुष्य के मनोविज्ञान के संबंध में एक अपूर्व सत्य है कि मनुष्य दुख से नहीं ऊबता, सुख से ऊब जाता है। दुख में एक आशा रहती है कि

शायद कल सुखी हो जाऊं; आज नहीं कल दुख कट ही जाएगा; आखिर कर्म-बंधन कभी तो क्षीण होंगे! लेकिन सुख में सब आशा खो जाती है।
स्वर्ग हमारी कल्पना है--सुखी लोगों की, जहां जिन्होंने खूब पुण्य-अर्जन कर लिया है वे लोग देवी-देवता हो जाते हैं। मगर वे ऊब जाते हैं। ऐसी कथाएं हैं, जिनमें देवता और देवियों ने प्रार्थना की है कि हम पृथ्वी पर वापस जाना चाहते हैं। लेकिन मैंने ऐसी कोई कहानी अब तक नहीं सुनी, न पढ़ी, जिसमें नरक में किसी ने कहा हो कि हम वापस पृथ्वी पर जाना चाहते हैं। उर्वशी थक जाती है इंद्र के सामने नाचते-नाचते और प्रार्थना करती है कि कुछ दिन की छुट्टी मिल जाए। मैं पृथ्वी पर जाना चाहती हूं। मैं किसी मिट्टी के बेटे से प्रेम करना चाहती हूं। देवताओं से प्रेम बहुत सुखद हो भी नहीं सकता। हवा हवा होंगे। मिट्टी तो है नहीं, ठोस तो कुछ है नहीं। ऐसे हाथ घुमा दो देवता के भीतर से, तो कुछ अटकेगा ही नहीं। कोरे ख्याल समझो, सपने समझो। कितने ही सुंदर लगते हों, मगर इंद्रधनुषों जैसे।
स्वभावतः उर्वशी थक गई होगी। स्त्रियां पार्थिव होती हैं। उन्हें कुछ ठोस चाहिए। नाचते-नाचते इंद्रधनुषों के पास उर्वशी थक गई होगी, यह मेरी समझ में आता है। उर्वशी ने कहा कि मुझे जाने दो। मुझे कुछ दिन पृथ्वी पर जाने दो। मैं पृथ्वी की सोंधी सुगंध लेना चाहती हूं। मैं पृथ्वी पर खिलने वाले गुलाब और चंपा के फूलों को देखना चाहती हूं। फिर से एक बार मैं पृथ्वी के किसी बेटे को प्रेम करना चाहती हूं।
चोट तो इंद्र को बहुत लगी, क्योंकि अपमानजनक थी यह बात। लेकिन उसने कहाः अच्छा जा, लेकिन एक शर्त है। यह राज किसी को पता न चले कि तू अप्सरा है। और जिस दिन यह राज तूने बताया उसी दिन तुझे वापस आ जाना पड़ेगा। उर्वशी उतरी और पुरुरवा के प्रेम में पड़ गई। बड़ी प्यारी कथा है उर्वशी और पुरुरवा की! पुरुरवा--पृथ्वी का बेटा; धूप आए तो पसीना निकले और सर्दी हो तो ठंड लगे। देवताओं को न ठंड लगे, न पसीना निकले। मुर्दा ही समझो। मुर्दों को पसीना नहीं आता, कितनी ही गर्मी होती रहे, और न ठंड लगती। तुमने मुर्दों के दांत किटकिटाते देखे? क्या खाक दांत किटकिटाएंगे! और मुर्दा दांत किटकिटाए तो तुम ऐसे भागोगे कि फिर लौट कर नहीं देखोगे। पुरुरवा के प्रेम में पड़ गई। ऐसी सुंदर थी उर्वशी कि पुरुरवा को स्वभावतः जिज्ञासा होती थी--जिज्ञासा मनुष्य का गुण है--कि पुरुरवा उससे बार-बार पूछता थाः तू कौन है? हे अप्सरा जैसी दिखाई पड़ने वाली उर्वशी, तू कौन है? तू आई कहां से? ऐसा सौंदर्य, ऐसा अलौकिक सौंदर्य, यहां पृथ्वी पर तो नहीं होता!
और कुछ चीजों से वह चिंतित भी होता था। उर्वशी को धूप पड़े तो पसीना न आए। उर्वशी वायवीय थी, हलकी-फुलकी थी, ठोस नहीं थी। प्रीतिकर थी, मगर गुड़िया जैसी। खिलौने जैसी। न नाराज हो, न लड़े-झगड़े। जिज्ञासाएं उठनी शुरू हो गईं पुरुरवा को। आखिर एक दिन पुरुरवा जिद्द ही कर बैठा। रात दोनों बिस्तर पर सोए हैं, पुरुरवा ने कहा कि आज तो मैं जान कर ही रहूंगा कि तू है कौन? तू आई कहां से? नहीं तू हमारे बीच से मालूम होती। अजनबी है, अपरिचित है। नहीं तू बताएगी तो यह प्रेम समाप्त हुआ।
यह तो धमकी थी, मगर उर्वशी घबड़ा गई और उसने कहा कि फिर एक बात समझ लो। मैं बता तो दूंगी, लेकिन बता देते ही मैं तिरोहित हो जाऊंगी। क्योंकि यह शर्त है।
पुरुरवा ने कहाः कुछ भी शर्त हो।... उसने समझा कि यह सब चालबाजी है। औरतों की चालबाजियां! क्या-क्या बातें निकाल रही है? तिरोहित कहां हो जाएगी! तो उसने बता दिया कि मैं उर्वशी हूं, थक गई थी देवताओं से। पृथ्वी की सोंधी सुगंध बुलाने लगी थी। चाहती थी वर्षा की बूंदों की टपटप छप्पर पर, सूरज की किरणें, चांद का निकलना, रात तारों से भर जाना, किसी ठोस हड्डी- मांस-मज्जा के मनुष्य की छाती से लग कर आलिंगन। लेकिन अब रुक न सकूंगी। पुरुरवा उस रात सोया, लेकिन उर्वशी की साड़ी को पकड़े रहा रात नींद में भी। सुबह जब उठा तो साड़ी ही हाथ में थी, उर्वशी जा चुकी थी। तब से कहते हैं पुरुरवा घूमता रहता है, भटकता रहता है, पूछता फिरता हैः "उर्वशी कहां है?" खोज रहा है।

शायद यह हम सब मनुष्यों की कथा है। प्रत्येक आदमी उर्वशी को खोज रहा है। कभी-कभी किसी स्त्री में धोखा होता है कि यह रही उर्वशी, फिर जल्दी ही धोखा टूट जाता है। हनीमून पूरा होते-होते ही टूट जाता है। जो बहुत होशियार हैं, हनीमून पर जाते ही नहीं, कि न जाएंगे हनीमून पर, न टूटेगा।
चंदूलाल का विवाह हुआ। बड़ा शोरगुल मचा रहे थे कि हनीमून पर शिमला जा रहे हैं, शिमला जा रहे हैं, शिमला जा रहे हैं! मैंने पूछाः कब जा रहे हो? उसने कहा कि बस एक-दो दिन में जाता हूं। दो-चार दिन बाद मुझे फिर मिल गए, मैंने पूछाः चंदूलाल, शिमला नहीं गए?
कहा कि पत्नी को भेज दिया है। मैंने कहाः पत्नी को तुमने भेज दिया, हनीमून पर, अकेले ही!
बोलेः शिमला मैं तो पहले ही देख चुका हूं, अब दुबारा जाने की क्या जरूरत है? अब पत्नी देख आएगी।
ऐसा हनीमून टिकेगा। मारवाड़ी का हनीमून टिक सकता है। गए ही नहीं तो टूटेगा क्या खाक! इसलिए विवाह टिकते हैं इस दुनिया में, प्रेम नहीं टिकता, क्योंकि प्रेम में एक छलांग है आकाश की तरफ। गिरना पड़ेगा। विवाह में छलांग ही नहीं है; जमीन पर ही सरकते रहते हैं, गिरेंगे कैसे? विवाह तो यूं है जैसे मालगाड़ी पटरियों पर दौड़ती हुई। प्रेम यूं है जैसे नदियों का प्रवाह; कब किस दिशा में मुड़ जाएगा, कुछ कहना कठिन है।
प्रत्येक व्यक्ति उर्वशी को खोज रहा है। "उर्वशी" शब्द भी बड़ा प्यारा है--हृदय में बसी, उर्वशी! कहीं कोई हृदय में एक प्रतिमा छिपी हुई है, जिसकी तलाश चल रही है। मनोवैज्ञानिक कहते हैंः प्रत्येक व्यक्ति के भीतर स्त्री की एक प्रतिमा है, प्रत्येक स्त्री के भीतर पुरुष की एक प्रतिमा है, जिसको वह तलाश रहा है, तलाश रही है। मिलती नहीं है प्रतिमा कहीं। कभी- कभी झलक मिलती है कि हां, यह स्त्री लगती है उस प्रतिमा जैसी; बस लेकिन जल्दी ही पता चल जाता है कि बहुत फासला है। कभी कोई पुरुष लगता है उस जैसा; फिर जल्दी ही पता चल जाता है कि बहुत फासला है। और तभी दूरियां शुरू हो जाती हैं। पास आते, आते, आते, सब दूर हो जाता है।
स्वर्ग से तो कहानियां हैं देवताओं के उतरने की। तुमने बहुत सी कहानियां सुनी होंगी कि देवता आते हैं, ऋषि-मुनियों की स्त्रियों को प्रेम कर जाते हैं। बेचारे ऋषि-मुनि, उनको समझा दिया है कि ब्रह्ममुहूर्त में स्नान करने जाओ, सो वे चले ब्रह्ममुहूर्त में स्नान करने और देवी- देवता ब्रह्ममुहूर्त की प्रतीक्षा करते रहते कि जब गए ऋषि-मुनि ब्रह्ममुहूर्त में स्नान करने, तब चंद्रमा, इंद्र इत्यादि-इत्यादि आकर दरवाजा खटखटाते हैं। ऋषि-पत्नी को क्या पता, वह सोचती है ऋषि महाराज लौट आए! और देवता हैं तो वे ऋषि का रूप धर कर लौट आते हैं, जटा-जूटधारी बन कर। प्रेम-व्रेम करके नदारद हो जाते हैं। स्वर्ग से तो ऐसी कहानियां हैं पुराणों में कि देवता उतर आते हैं जमीन पर, अप्सराएं उतर आती हैं; मगर नरक से मैंने कोई कहानी नहीं सुनी। कारण साफ है। कारण बहुत मनोवैज्ञानिक है, गहरा है। दुख को आदमी छोड़ना नहीं चाहता, सुख को छोड़ दे। सुख से ऊब जाता है। सुख से धीरे-धीरे मन भर जाता है, ऊब पैदा हो जाती है। लेकिन दुख से मन नहीं भरता, क्योंकि आशा बनी रहती है। सुख में कोई आशा नहीं।
लेकिन चाहे नरक हो और चाहे स्वर्ग, हमारा सदियों का निरीक्षण यह है, मैं इस निरीक्षण से राजी हूं कि प्रत्येक व्यक्ति को मनुष्य के चौराहे पर लौट आना पड़ता है। मनुष्य चौराहा है। वहां से सब तरफ रास्ते जाते हैं--पशु की तरफ, पक्षियों की तरफ, नरकों की तरफ, देवताओं की तरफ। और अंतिम मार्ग भी वहां है--निर्वाण की तरफ, मोक्ष की तरफ--जहां सब खो जाता है; जहां योनि मात्र खो जाती है; जहां न तो मनुष्य रह जाते, न पशु, न पक्षी, न देवता; जहां तुम केवल निर्विचार, शून्य चेतना मात्र रह जाते हो। वहां से कोई कभी नहीं लौटना चाहता। वहां से लौटने का कोई सवाल नहीं, लौटने वाला ही नहीं बचता है।
विद्या तो वही है जो तुम्हें निर्वाण दे। विद्या तो वही है... "सा विद्या या विमुक्तये!" वही है विद्या जो तुम्हें मुक्त करे, मोक्ष दे। यह विद्या न रही होगी, तथाकथित ज्ञान रहा होगा। सूचना मात्र रही होगी। शिष्य

ने उसका वमन कर दिया। और अभागे देवता, ये उस वमन को भी पचा गए। तीतर बन कर पचा गए! शायद सीधे-सीधे आना अच्छा न लगा होगा, छिप कर आए, आड़ में आए, तीतर बन कर आए। उस कूड़े-कचरे को, वमन किए हुए को, उस दुर्गंधयुक्त को ये फिर से लील गए। और उसी को इकट्ठा करके तैत्तरीय उपनिषद बना।
तैत्तरीय उपनिषद मत पढ़ना। अब यह देवताओं का वमन... वमन का वमन होगा। और
सब कुछ करना, तैत्तरीय उपनिषद मत पढ़ना।
मुझसे बहुत बार कहा गया है कि मैं तैत्तरीय उपनिषद पर क्यों नहीं बोला? यही कहानी मुझे अटका देती है। इससे आगे ही बात नहीं बढ़ती। मैं तो तुम्हें उच्छिष्ट ज्ञान से मुक्त करना चाहता हूं और इसमें उच्छिष्ट ज्ञान का संग्रह है। मगर यह एक ही उपनिषद की बात होती तो भी ठीक था; तुम्हारे अधिकतर उपनिषद, तुम्हारे अधिकतर वेद, तुम्हारे कुरान, तुम्हारे बाइबिल, तुम्हारे तालमुद, इसी तरह के उच्छिष्ट ज्ञान से भरे हैं।
यह कहानी किसी हिम्मतवर आदमी ने जोड़ी होगी। रहा होगा कोई उपद्रवी मेरे जैसा, जिसने उपनिषद के ऊपर यह कहानी लगा दी। और भोंदू पंडित ऐसे हैं कि आज तक किसी ने इस कहानी को ठीक-ठीक समझने की कोशिश भी नहीं की कि यह कहानी पर्याप्त है यह बताने को कि कूड़ा-कचरा से बचो।
सब ज्ञान उच्छिष्ट है, अगर तुम्हारे अनुभव से नहीं आए।
"उपनिषद" शब्द प्यारा है। उपनिषद का अर्थ होता हैः गुरु के पास बैठना, सिर्फ गुरु के पास बैठना। उप धन निषद। उप यानी पास, निषद यानी बैठना। गुरु के पास बैठना। जिसने जाना है, उसके पास बैठना। उसकी श्वासों की श्वास बन जाना। उसकी श्वासों के साथ डोलना। उसके हृदय की धड़कन बन जाना। उसकी और तुम्हारी धड़कन के बीच का फासला समाप्त हो जाए, एक साथ हृदय धड़कने लगे। उसकी श्वास भीतर जाए तो तुम्हारी श्वास भीतर जाए। उसकी श्वास बाहर आए तो तुम्हारी श्वास बाहर आए। यह है उपनिषद, तैत्तरीय उपनिषद नहीं।
और यूं ही जिन्होंने जाना है, उन्होंने ही केवल जाना है। फिर उसे कोई छीन नहीं सकता, उसे कोई तुमसे वापस नहीं ले सकता, क्योंकि वह तुम्हारा अपना स्वभाव है, तुम्हारे स्वभाव का आविष्कार है।
स्वस्थ हो जाना उपनिषद है। वही वेद है। वेद यानी ज्ञान, बोध। वही कुरान है। कुरान यानी तुम्हारे प्राणों का गीत, तुम्हारे प्राणों की गुनगुनाहट। वही बाइबिल। बाइबिल यानी किताबों की किताब। किताब नहीं--सारी किताबों की किताब! सारे रहस्यों का रहस्य तुम अपने हृदय में संजोए बैठे हो। तीतर वगैरह बनने की जरूरत नहीं। उच्छिष्ट इकट्ठा करने की आवश्यकता नहीं।
जिनस्वरूप, तुमने इस कहानी की याद दिला कर ठीक किया। यही मेरा पूरा प्रयोग है यहां। तुम्हें मैं उच्छिष्ट कुछ भी नहीं देना चाहता। हालांकि तुम उच्छिष्ट के लिए बहुत आतुर हो, क्योंकि वह सस्ता है, मुफ्त मिल जाता है। तीतर बनना पड़े तो भी कोई हर्जा नहीं, तीतर बन जाएंगे, मुर्गा बन जाएंगे--तुम कुछ भी बन सकते हो, मुफ्त कुछ मिलता हो। लेकिन जहां कुछ चुकाना पड़ता है, जहां जीवन को दांव पर लगाना पड़ता है, वहां तुम्हारे प्राण कंपते हैं। मगर जीवन का जो राज है, वह जीवन को दांव पर लगाए बिना मिलता नहीं है। वह व्यापारियों के लिए नहीं है, वह केवल जुआरियों के लिए है।
मेरे संन्यासी को जुआरी होना सीखना ही पड़ेगा। वह व्यवसायी रहा तो विद्यार्थी रह जाएगा। जुआरी हो जाए तो शिष्य होने का अभूतपूर्व लोक तत्क्षण अपने द्वार खोल देता है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, जब तक आप कोई चमत्कार न दिखाएं, मैं आपको भगवान कैसे मानूं?

कन्हैयालाल! चमत्कार कभी हुए ही नहीं। चमत्कार हो ही नहीं सकते। चमत्कार का अर्थ होता हैः जीवन के नियम के विपरीत कुछ होना, जो कि असंभव है। जीवन का नियम यानी परमात्मा। परमात्मा के विपरीत कुछ कैसे हो सकता है? जो भी होगा, उसके अनुकूल होगा। जो भी होता है, धर्म के नियम के अनुकूल होता है। हां, तुम्हारी समझ में न आ पड़ता हो नियम, यह बात और। तुम्हें चमत्कार

जैसा लगे, यह बात और। लेकिन चमत्कार न कभी हुए हैं, न कभी होंगे। लेकिन तुम्हारे अज्ञान का शोषण किया जा सकता है।
कन्हैयालाल, तुम किसी मदारी की तलाश में हो, तो चले जाओ सत्य साईं बाबा हैं, राख वगैरह निकाल कर बता देंगे, चमत्कार हो जाएगा। स्विटजरलैंड में बनी हुई घड़ियां निकाल कर बता देंगे, चमत्कार हो जाएगा। पता नहीं, यह कैसी सरकार है! तस्करों को पकड़ती है, सत्य साईं बाबा को क्यों नहीं पकड़ती! यह तो तस्करी हुई। स्विटजरलैंड में बनी हुई घड़ियां कोई आदमी निकाले, यह तो तस्करी हुई। राख वगैरह तक ठीक है, मगर ऐसे मूढ़जन हैं इस देश में कि राख को विभूति कहेंगे। शब्दों में तो हमसे कोई बाजी नहीं मार सकता। निकलेगी राख और कहेंगे विभूति निकल रही है।
चमत्कार गढ़े जाते हैं, क्योंकि मूढ़ों को प्रभावित करने का और कोई उपाय नहीं है। जीसस ने मुर्दों को जिलाया, हालांकि खुद सूली पर अपने को बचा न सके। जीसस ने अंधों को आंखें दीं, लेकिन जो सूली पर चढ़ा रहे थे उनको अंतर्दृष्टि न दे सके! बहरों को कान दिए, लेकिन यहूदी धर्मगुरुओं को कान न दे सके! कहते हैं लंगड़े-लूलों को पहाड़ चढ़ा दिया, लेकिन खुद जब गोलगोथा की पहाड़ी पर सूली को कंधे पर रख कर चढ़ना पड़ा तो तीन बार गिरे, पांव लहूलुहान हो गए! लंगड़ों-लूलों को पहाड़ चढ़ा दिया, खुद गोलगोथा की छोटी सी पहाड़ी--टीला ही कहना चाहिए, पहाड़ी भी नहीं--उस पर भी चढ़ने में तीन बार गिर गए! कहते हो कि समुद्र को देखा और शराब बना दिया और जुदास के हृदय को न बदल सके! एकाध बूंद शराब उसमें भी गिरा देते, वह भी मस्त हो लेता! जब सागरों को शराब बना सकते हो तो आदमियों को इतनी मस्ती न दे सके? वह तीस रुपये में बेच दिया जीसस को।
ये कहानियां बाद में गढ़ी जाती हैं। तीन दिन के बाद पुनरुज्जीवित हो गए। लेकिन तीन दिन के बाद फिर क्या हुआ, ईसाइयों के पास कुछ कथा नहीं है कि तीन दिन के बाद पुनरुज्जीवित तो हो गए, फिर क्या हुआ? फिर कहां गए, फिर क्या करते रहे?
ये कथाएं गढ़ ली जाती हैं बाद में--मूढ़ों को प्रभावित करने के लिए। और मूढ़ों की भीड़ है। वही-वही इन बातों से चमत्कृत होते हैं। आदिवासी इलाकों में ईसाइयों का काफी प्रभाव है, क्योंकि आदिवासी सीधे-सादे लोग हैं, उनको छोटी-मोटी बातों से प्रभावित किया जा सकता है।
मेरे एक मित्र हैं। वे मुझे सुना रहे थे कि मैं एक गांव में गया हुआ था। संन्यासी हैं। और वहां एक ईसाई पादरी आदिवासियों को समझा रहा था कि देखो, तुम राम की पूजा इसलिए करते हो न कि वे तुम्हें बचाएंगे? उन्होंने कहाः हां। तो उस पादरी ने कहाः पहले तुम यह भी तो पक्का कर लो कि वे खुद को बचा सकते हैं कि नहीं। उसने दो मूर्तियां अपने झोले में से निकालीं--एक मूर्ति राम की, एक जीसस की। राम की मूर्ति तो बनाई थी उसने लोहे की, अंदर लोहा था, ऊपर से लकड़ी का पालिश किया गया था। और दूसरी जीसस की जो मूर्ति थी वह लकड़ी की थी और अंदर पोली थी। दोनों देखने में एक जैसी लगती थीं। एक बर्तन में पानी भरवाया और दोनों मूर्तियां उसमें डाल दीं। स्वभावतः रामजी डुबकी खा गए और जीसस तैरने लगे। गांव के लोग चमत्कृत हुए। रहे होंगे कन्हैयालाल जैसे। मान गए कि अरे हम भी किसके पीछे पड़े थे! जो खुद अपने को ही नहीं बचा सकता, वह हमको भी डुबाएगा! खुद ही डूब गए बच्चू! वे सब तैयार कि हम भी ईसाई होने को तैयार हैं।
यह संन्यासी भी सब देख रहा था। इसने कहा कि सुनो जी, इसके पहले कि कुछ निर्णय करो, आग जलाओ! इसने देख लिया कि मामला क्या है--एक लोहे की मूर्ति और एक लकड़ी की। आग जलाओ! पानी कोई परीक्षा है? --आदिवासियों से कहाः हमारे देश में तो सदा से अग्नि-परीक्षा होती रही है।
लोगों ने कहाः यह बात भी सच है।
रामचंद्र जी ने सीता की अग्नि-परीक्षा ली थी कि जल-परीक्षा? सबने कहाः अग्नि-परीक्षा ली थी।
तो उन्होंने कहाः अग्नि-परीक्षा होकर रहेगी।
अब पादरी घबड़ाया कि अब यह अग्नि-परीक्षा में तो मुश्किल हो जाएगी। और मुश्किल हो गई। आग जलाई। आग जला कर दोनों डाल दिए। राम जी तो अपना धनुषबाण

लिए खड़े रहे। क्या आग उनका बिगाड़े! मगर यीशु मसीह की मिट्टी पलीद हो गई। वे राख होकर ढेर लग गए। आदिवासी तो बड़े आनंदित होकर कूदने-फांदने लगे, नाच-गान शुरू हो गया कि अहा, हमारे रामचंद्र जी! इसी बीच पादरी भाग खड़ा हुआ।
उसने कहा अब पिटाई होगी। जब संन्यासी ने लौट कर देखा पादरी नदारद था।
इस तरह की बेहूदगी की बातें सिर्फ मूढ़ों को प्रभावित करती हैं। चमत्कार कभी नहीं हुए।
महावीर के मानने वाले कहते हैं कि जब वे रास्ते पर चलते थे तो कांटे अगर सीधे पड़े होते, तो महावीर आ रहे हैं, तत्क्षण उलटे हो जाते थे। कांटे! इतनी अक्ल फूलों को भी नहीं होती; कांटों को क्या खाक होगी! आदमियों को नहीं होती, कांटों को क्या खाक होगी! और अगर यह सच है तो जिस आदमी ने महावीर के कान में खीले ठोंके थे, उस वक्त क्या हुआ चमत्कार का? उचक कर खीले उसी आदमी के कान में ठुक जाने चाहिए थे। जब कांटों तक में इतनी अक्ल थी तो खीलों में अक्ल न रही!
बुद्ध को मानने वाले कहते हैं कि बुद्ध के ऊपर पहाड़ से एक पूरी चट्टान सरकाई गई। पूरा हिसाब लगा कर सरकाई गई थी कि वह बुद्ध को अपनी लपेट में ले लेगी। बुद्ध पहाड़ी पर बैठे ध्यान कर रहे हैं बीच में, ऊपर से चट्टान सरकाई गई। लेकिन चमत्कार हुआ। वह आई बुद्ध के पास तक, रुकी और बुद्ध को बचा कर निकल गई। उसने अपना रास्ता थोड़ा सा बदला, बुद्ध को एक तरफ छोड़ दिया और फिर सीधे रास्ते में चली गई--जहां से उसको जाना चाहिए था। गणित के हिसाब से वहीं से गई, मगर बुद्ध को जरा सा बचा कर निकल गई। अगर यह बात सच है तो बुद्ध का फिर विषाक्त भोजन से जीवन-अंत कैसे हुआ? अगर चट्टान में इतनी अक्ल थी तो विष ने कुछ कृपा न की बुद्ध पर कि भोजन में न मिलते या मिल भी जाता भोजन में तो कम से कम शरीर को विषाक्त न करता?
कहते हैं, पागल हाथी बुद्ध पर छोड़ा, जिसने न मालूम कितने लोगों को मार डाला था और वह बुद्ध के सामने आया और उनके चरणों में सिर झुका कर खड़ा हो गया। मैं तो इतना ही कह सकता हूं कि पागल हाथी या तो पागल ही था। अब पागलों का क्या भरोसा? अरे ये पागल जो कर गुजरें सो ठीक! पागलों के संबंध में कुछ निश्चित नहीं हुआ जा सकता। वह बुद्ध के सामने झुक गया, यह भी पागलपन का हिस्सा रहा होगा। चमत्कार नहीं। क्योंकि जब आदमी नहीं झुके, जिन्होंने पागल हाथी छोड़ा था, तो पागल हाथी क्या खाक झुकेगा!
लेकिन ये कहानियां पीछे गढ़ी जाती हैं।
बुद्ध का जन्म हुआ तो वे खड़े-खड़े पैदा हुए मां के पेट से। खड़े-खड़े! अब ऐसे लोग कोई साधारण ढंग से पैदा होते हैं! मां भी खड़ी थी। वह फूल तोड़ रही थी वृक्ष से, तब अचानक बुद्ध एकदम से टपक पड़े! जरा दर्द नहीं हुआ। दर्द वगैरह होता तो वह भी लेट जाती। वह फूल तोड़ती रही और बुद्ध एकदम से टपक पड़े। इतने ही तक मामला हल नहीं हुआ। अरे जब कहानी ही लोग गढ़ते हैं तो फिर क्या कंजूसी करनी! फिर वे सात कदम चले भी। इतना ही नहीं, अरे जब बात ही करनी है तो फिर पूरी हो जानी चाहिए। सात कदम चल कर आकाश की तरफ देख कर हाथ उठा कर उन्होंने कहा कि मुझ जैसा बुद्ध न तो पहले कभी हुआ है, न बाद में कभी होगा। मैं परम बुद्ध हूं! इसकी घोषणा की। गर्जना की! आकाश थर्रा गए, पृथ्वी डोल गई! कन्हैयालाल, ऐसा कोई चमत्कार देखना है? इस तरह की मूर्खतापूर्ण बातें पंडित और पुरोहित गढ़ लेते हैं। क्योंकि कन्हैयालाल जैसे लोग मौजूद हैं। इनको इस तरह की कहानियां चाहिए। और जो बहुत चालबाज हैं, वे जिंदगी में भी इस तरह की कहानियां गढ़ लेते हैं।
बंगाल में एक बंगाली बाबा बहुत प्रसिद्ध थे, क्योंकि उन्होंने एक दफे चमत्कार दिखाया। कन्हैयालाल जैसे लोगों की भीड़ लग गई होगी। चमत्कार उन्होंने यह दिखाया कि वे ट्रेन में सवार हुए, टिकट कलेक्टर आया, उसने पूछा कि टिकट दिखाइए। उन्होंने कहा कि शब्द अपने वापस ले लो। हम फकीरों से कोई टिकट नहीं मांग सकता।
टिकट कलेक्टर भी गुस्से में आ गया। अंग्रेजों के जमाने की बात है। अंग्रेज रहा होगा। उसने कहा कि इस तरह की बदतमीजी की बात नहीं चलेगी। बाबा हो अपने घर के। यह सरकारी रेलगाड़ी है। टिकट के बिना अंदर नहीं चलने दूंगा।

बाबा भी गुस्से में आ गए। बाबा ने कहाः देखूं मुझे कौन चलने से रोकता है! बात बढ़ गई। बात में से बात निकली। उस अंग्रेज कंडक्टर ने उनको धक्का देकर बाहर निकाल दिया। बाबा नीचे तो उतर गए, लेकिन अपना डंडा ऐसा टेक कर खड़े हो गए और कहा कि देखें, अब यह गाड़ी कैसे चलती है! इंच भर सरक जाए!
अब गार्ड झंडी दिखा रहा है और ड्राइवर सब तरह की कोशिश कर रहा है, सीटी
पर सीटी बज रही है, मगर गाड़ी टस से मस नहीं हो रही। तहलका मच गया। पूरे स्टेशन की भीड़ इकट्ठी हो गई, सारे यात्री इकट्ठे हो गए। बंगाली बाबा ने गजब कर दिया, गाड़ी रोक दी! ड्राइवर कहेः मैं भी चकित हूं, इंजन में कुछ खराबी नहीं है। सब ठीक है। चलता नहीं।
स्टेशन मास्टर दौड़ा फिर रहा है, आफिसर भागे फिर रहे हैं, मगर कोई उपाय नहीं। आखिर स्टेशन मास्टर ने कहा टिकट कलेक्टर को कि भैया माफी मांग लो और बाबा को कहो कि आप विराजो अंदर और गाड़ी चलने दो। लोगों को तो हजार कामों पर जाना है। अब लोग मेरी जान खा रहे हैं। कोई कहता है मुझको अदालत जाना है, कोई कहता है मुझे दफ्तर जाना है और यह गाड़ी कब तक रुकी रहेगी?
पहले तो आनाकानी की टिकट कलेक्टर ने, लेकिन जब देखा कि मार-पीट की नौबत खड़ी हो गई, भीड़ इकट्ठी हो गई, भीड़ ने कहाः पिटाई कर देंगे! हमारे साधु महाराज का तुमने अपमान किया है। माफी मांगो! जबरदस्ती माफी मंगवाई। लेकिन बंगाली बाबा ने कहा कि पहले नारियल लाओ। जब तक नारियल नहीं चढ़ेगा, बाबा भी गाड़ी नहीं चढ़ेगा। जल्दी भागा-भाग की गई, कहीं से नारियल लाया गया। नारियल, मिठाई, फूल चरणों में चढ़ाए। कहाः माफी मांगो! पैर छुओ! और आइंदा ख्याल रखना, कभी किसी फकीर को टिकट मत पूछना। पूछोगे टिकट, खतरा हो जाएगा।
फिर बाबा गाड़ी में प्रविष्ट हुए और गाड़ी चली। ये बंगाली बाबा ईमानदार आदमी थे। जिंदगी भर लोग उनसे पूछते रहे कि राज क्या था, आपने किस तरकीब से गाड़ी रोक दी? मरते वक्त उन्होंने कहाः अब तो मैं मर ही रहा हूं; अब सच्ची बात बता दूं। सच बात यह है कि टिकट कलेक्टर, गार्ड और ड्राइवर तीनों को मैंने रिश्वत दी थी। ये तीनों मेरे आदमी थे। और फिर गाड़ी रुकने में क्या दिक्कत है! और एक दफा यह चमत्कार दिखाना था, दिखा दिया कि सारे बंगाल में शोहरत फैल गई, हजारों-लाखों लोग आते थे बंगाली बाबा के दर्शन करने!
तुम जिनको चमत्कार कहते हो, वे चमत्कार वगैरह कुछ भी नहीं होते; उन सबके पीछे हिसाब होते हैं, गणित होते हैं। जादू तो एक गणित है। उसके करने की एक कला होती है। सड़कों पर मदारी दिखाते रहते हैं, उन्हीं को तुम भगवान मानो भैया।
और मैं तुमसे कहता हूं अगर चमत्कार होते भी होते, तो मैं दिखाने वाला नहीं था। क्योंकि मैं कन्हैयालाल जैसे लोगों को यहां बिल्कुल नहीं चाहता हूं। अगर चमत्कार होते भी होते और मैं कर भी सकता होता, तो भी कभी नहीं करता, क्योंकि ये गलत लोग हैं जो चमत्कार के कारण इकट्ठे होते हैं। इन लोगों को मैं दरवाजे के बाहर रखना चाहता हूं, दरवाजे के भीतर नहीं। यहां मैं चाहता हूं उन लोगों को जो जीवन में क्रांति के लिए आतुर हैं। राख वगैरह का क्या करोगे? और गाड़ी भी रोक दी तो क्या होगा? और घड़ी भी निकाल दी तो क्या होगा? इन सब बेवकूफी की बातों में मुझे उत्सुकता नहीं है।
हे कन्हैयालाल! हे देवकीनंदन! हे मुरलीवाले! भैया गौएं चराओ! यहां कहां आ गए? कोई डेअरी खोल लो! अटरली-बटरली... अमूल बटर बेचो! कुछ ढंग का काम करो, यहां कहां! यह तुम्हारे लिए जगह नहीं। बजरंगबली की सेवा करो। हनुमान चालीसा पढ़ो। हे गोवर्धन गिरधारी! कुछ न बने तो गोबर का छोटा-मोटा पहाड़ बना कर उसी को उठा लो। तुम्हारे पास ही लोग इकट्ठे हो जाएंगे, तुम्हें कहीं जाने की क्या जरूरत है?
यह चमत्कार की आकांक्षा भारत के आलस्य, बेईमानी, सुस्ती, काहिलपन का सबूत है और कुछ भी नहीं। अपने पर भरोसा नहीं रहा है, इसलिए हर उलटी-सीधी चीज पर भरोसा लाने की कोशिश की जा रही है। आत्म-भरोसा खो गया है। आत्मा पर श्रद्धा खो गई है। इसलिए ताबीज, राख, गंडे, इस तरह की चीजों पर भरोसा आ रहा है।
एक काहिल सुस्त आदमी अपने मित्र से कह रहा था कि देखो ईश्वर भी कैसे- कैसे चमत्कार करता है और कैसे-कैसे मेरी मदद करता है! मुझे कुछ पेड़ काटने

थे और तूफान ने आकर मेरी समस्या हल कर दी। फिर मुझे कूड़े-करकट का एक ढेर जलाना था और बिजली गिरी, वह भी समाप्त हो गया।
यह सुन कर उसका मित्र बोलाः भैया, अब आपका अगला प्रोग्रेम क्या है?
वह व्यक्ति बोलाः इस बार मैंने आलू की खेती करवाई है, अतः उन्हें निकलवाने के लिए भूचाल का इंतजार कर रहा हूं।

आखिरी प्रश्नः ओशो, गंभीरता और उदासीनता पर इतनी चोट आपके द्वारा पहुंचाने पर भी यह आदत छूटती नहीं। लगता है इनका छूटना मौत जैसा है। कृपया मार्गदर्शन दें।

मोहन भारती! भैया फिर छोड़ते किसलिए हो जब मौत जैसा मालूम हो रहा है? मजे से उदासीन रहो, गंभीर रहो। मैंने तुम्हें "गधा" की परिभाषा भी बता दी। ग यानी गंभीर, धा यानी धार्मिक। गधा ही रहो! गंभीर रूप से धार्मिक रहो! छोड़ने की झंझट में क्यों पड़े हो?
और तुम कहते हो कि "आपके द्वारा समझाए जाने पर भी, चोट पहुंचाए जाने पर
भी आदत छूटती नहीं।"
चोट अभी पहुंची नहीं, समझ अभी आई नहीं। समझ आ जाए तो कुछ छोड़ना नहीं पड़ता। जो समझ में आया वह छूट जाता है। चोट अभी पहुंची नहीं। खूब मोटी चमड़ी है, मोहन भारती। मैं तो चोट मारता हूं, लेकिन तुम्हारी चमड़ी में स्प्रिंग लगे हैं। मैं चोट मारता हूं, चोट तुम तक पहुंचती नहीं।
भारतीय चमड़ी बड़ी मोटी है। सदियों पुरानी है। हमने किया ही क्या है-- चमड़ी को मजबूत किया है! खोपड़ी में गोबर भरा है। मगर उसको हम गोबर नहीं कहते; हम तो अच्छे-अच्छे शब्द उपयोग करते हैं।
एक घर में मैं मेहमान था। गृहपति ने आकर मेरे हाथ में एक चम्मच से कहा
कि पंचामृत लें। मैंने कहाः भैया, पहले तुम बता दो पंचामृत यानी क्या? उन्होंने कहाः पंचामृत! अरे, पंचामृत यानी पंचामृत! आप जैसा ज्ञानी पुरुष और पंचामृत न जाने!
मैंने कहा कि नहीं, पहले तुम पंचामृत का मुझे अर्थ बतलाओ। क्योंकि इस देश में ऐसे-ऐसे अच्छे शब्द हम देते हैं ऐसी-ऐसी सड़ी बातों के लिए, जिसका हिसाब नहीं। तब थोड़े वे चौंके, क्योंकि उनको भी शर्म लगी कि अब पंचामृत का अर्थ क्या बतलाएं! पंचामृत का मतलब होता हैः गौ के द्वारा पैदा की गई पांच चीजें--गोबर, गौमूत्र, दूध, दही, घी। इन पांचों को मिला कर पंचामृत। मैंने कहाः भैया, मुझे अमृत चाहिए ही नहीं। पंचामृत की बात ही छोड़ दो। मैंने तो अमृत पा लिया। यह तुम्हीं पीओ। बांटो मोहल्ले में, कोई न कोई गधे मिल जाएंगे पीने वाले।
पंचामृत बांट रहे हैं! मैंने कहाः तुमने अच्छा किया कि कम से कम इसे
गौ माता से बनाया। तुम आदमी से बनाते तो और गजब कर देते। वह तो जो भी ले लेता, सीधा ही स्वर्ग जाता।
तुम कहते होः "आदत छूटती नहीं।"
आदत में न्यस्त कुछ स्वार्थ होंगे। गंभीर होने में इस देश में बड़ा मजा है। गंभीर आदमी को लोग अच्छा आदमी समझते हैं। गैर-गंभीर को तो कहते हैं--अरे उथला, छिछला, उसका क्या? जो गंभीर शक्ल बनाए बैठा रहता है, लंबा चेहरा, उसको लोग कहते हैं--साधु, संत। उसको कहते हैं--पहुंचा हुआ सिद्ध पुरुष। हंसते हुए को तो कोई सिद्ध पुरुष कहेगा नहीं। सिद्ध पुरुष हंसते ही नहीं।
और इसी तरह तो मैं लोगों को बिगाड़ रहा हूं। मैं सिद्ध पुरुषों को हंसा रहा हूं। हंसने वालों को सिद्ध पुरुष बना रहा हूं। मैंने सारे गणित को उलटा-सीधा कर दिया है, आगे-पीछे कर दिया है।
तुम्हारा न्यस्त स्वार्थ होगा, आदत छूटे कैसे? तुम्हें लोग आदर देते होंगे कि मोहन भारती, सिद्ध पुरुष हो तुम! अरे बस एक कदम और कि अरिहंत हो जाओगे! ज्यादा देर नहीं है। अब तुम कैसे गंभीरता छोड़ो? गंभीरता छोड़ो तो ये सब कहेंगे कि बिगड़ गए, भ्रष्ट हो गए।

एक मित्र ने मुझे लिखा है कि "ओशो, आपके कुछ संन्यासी कुछ सामाजिक स्थलों पर अशोभनीय व्यवहार करते हैं, जिससे आपके नाम पर लांछन आता है। जैसे एक संन्यासी उस दिन स्टेज पर नाचने वाली लड़की से हाथ मिलाने को आगे बढ़ गया, तो लोग चिल्लाएः ऐ रजनीश, नीचे आ! ऐसी हरकतों से आपका नाम खराब हो, यह मुझे बहुत बुरा लगता है। संन्यासी जो कि जागने की दिशा में संलग्न है, उसका ऐसा आचरण कहां तक उचित है?"
स्वामी नवल भारती, तुम वहां क्या कर रहे थे--भजन-कीर्तन? भाव-भक्ति के लिए गए थे? और मुझे तो कुछ इसमें अशोभनीय नहीं लगता। मैं खुद भी होता तो मैं खुद ही बढ़ गया होता! आखिर कोई लड़की ढंग से नाची हो तो उसको धन्यवाद देना चाहिए कि नहीं? इसमें अशोभनीय क्या है? और भला किया उस संन्यासी ने कि चलो उस जगह मेरे नाम को तो गुंजा दिया, लोग चिल्लाए कि ऐ रजनीश, नीचे आ! अरे जो ऊपर है, उसी को तो नीचे बुलाएंगे न? इसमें क्या बिगड़ गया? इसमें अशोभनीय व्यवहार लोगों ने किया उस संन्यासी के साथ, उस संन्यासी ने कोई अशोभनीय व्यवहार नहीं किया।
ऐसा हुआ कोई पंद्रह साल पहले की बात है, हर्षद मुझे अपनी कार में लेकर बंबई घुमाने निकला था। दिन भर बोलता रहा था, उसने कहा कि घंटा भर आपको हवाखोरी करा लाऊं। एक बिस्त्रो के सामने से निकल रहे थे, मैंने पूछाः यह बिस्त्रो क्या बला है?
उसने कहाः चलिएगा? उसने तो मजाक में कहा। उसने कहा: मैं क्यों बिस्त्रो जाऊंगा। उसने समझा कि मैं मजाक में ही पूछ रहा हूं कि बिस्त्रो क्या है। मैंने कहाः क्यों नहीं चलेंगे! चलो। अब उसकी जान निकली। उसने सोचा कि अगर कोई जान-पहचान का मिल जाए तो मैं फंसूंगा कि तुम क्यों उनको वहां ले गए। लोग मुझको दोष देंगे। ये तो बच जाएंगे। ये तो कहेंगे मुझे तो मालूम ही नहीं कि बिस्त्रो क्या है। फंसूंगा मैं।
मगर अब फंस ही गया, थोड़ा झिझका। मैंने कहाः तू झिझक मत। मुझे मालूम है
कि बिस्त्रो क्या है। अरे तभी तो तुझसे पूछा कि ऐसे तो तू ले नहीं जाएगा। अगर मैं कहूं कि चल बिस्त्रो में ले चल, तू गाड़ी तेजी से भगाएगा कि घर चलो। मजबूरी में बेचारा घिसटता हुआ मेरे पीछे भीतर गया। संयोग की बात, बिस्त्रो का जो मैनेजर था वह मुझे सुनने आता रहा होगा। वह एकदम आया और साष्टांग दंडवत! और जब उसने दंडवत की तो भारतीय तो छंटे हुए बुद्धू हैं, और कई लोग उठ आए, जो मुझे जानते भी नहीं थे वे भी दंडवत करने लगे! वह नाचने वाली लड़की भी आ गई दंडवत करने। उसने भी पैर छूकर दंडवत किया। और मैनेजर ने कहाः आपकी बड़ी कृपा कि पधारे! कई दफा मेरे मन में होता था कि एक बार आपके चरण यहां पड़ जाएं तो पवित्र हो जाए स्थल। मगर किस मुंह से आपसे कहता! मगर सुन ली आपने! आप भी अदभुत हैं! चमत्कार दिखा दिया! सोच भी नहीं सकता था सपने में कि मेरे बिस्त्रो में और आप कभी आएंगे!
तो स्वभावतः उसने सबसे पहले नाचने वाली लड़की के बिल्कुल पास मेरी कुर्सी लगाई। और नाचने वाली लड़की ने देखा जब मैनेजर चरण छूता है और सब लोग चरण छूते हैं, तो वह मेरे ही मेरे पास नाचे। स्वभावतः! और हर्षद की हालत ऐसी खराब, एअरकंडीशंड बिस्त्रो और पसीना चू रहा! मैंने कहाः हर्षद, तूझे क्यों पसीना चू रहा है? तुझे इतनी कैसे गरमी लग रही है? क्या बुखार चढ़ रहा है कुछ? तुझे डेंग्यू फीवर वगैरह हो गया है?
उसने कहा कि अब आप कुछ मत कहें, जल्दी से यहां से निकल चलें, क्योंकि अगर पता चल गया तो मैं फंसूंगा! मैंने कहाः तू क्यों फंसेगा? और मैं अब जाने वाला नहीं। लड़की इतना अच्छा नाच रही है... !
हर्षद बोलाः महाराज, जल्दी चलो! भाड़ में जाए लड़की! और फिर तुम्हें आना
हो तो आ जाना, मगर मुझे तो मत फंसाओ।
अब मैं नहीं सोचता... तुम पूछ रहे हो नवल भारती कि "आपके कुछ संन्यासी सामाजिक स्थलों पर अशोभनीय व्यवहार करते हैं।"
क्या अशोभनीय व्यवहार है? नृत्य कुछ अशोभन है? और लड़की कोई सुंदर नाचे तो धन्यवाद देने जाना ही चाहिए। और हाथ मिलाने मेरा संन्यासी नहीं जाएगा तो किसका संन्यासी जाएगा? मेरा संन्यासी मेरा संन्यासी है! उसके

अपने गुण-लक्षण हैं। उसको अपनी परिभाषा देनी है दुनिया को। मेरा संन्यासी कोई भगोड़ा नहीं है कि धूनी रमाए बैठा हुआ है जंगल में!
और तुम कहते होः "आपके नाम पर लांछन आता है।"
मेरे नाम पर तुम क्या लांछन लाओगे, मैं ही इतना लाता हूं! तुम लाख उपाय करो, तुम मुझे हरा नहीं सकते।
तुम कहते होः "ऐसी हरकतों से आपका नाम खराब होता है।"
अरे मेरा क्या नाम खराब करोगे? नाम है ही किसका, जो खराब कर लोगे? खराब
हो तो उसका नाम हो, मेरा क्या नाम खराब होगा? वही है! मैं तो जमाना हुआ तब का मिट गया!
और तुम्हें क्यों बुरा लगा? तुम्हारे अहंकार को चोट लगी होगी कि अरे, मैं भी संन्यासी हूं! लोग इसको बुरा-भला कह रहे हैं तो वह बुरा-भला मुझसे भी कहा जा रहा है; क्योंकि लोग देख तो रहे हैं ये भी गैरिक वस्त्रधारी माला पहने हुए, ये भी एक स्वामी खड़े हुए हैं। तुम्हारे अहंकार को चोट लगी होगी। ऐसे हमारे न्यस्त स्वार्थ हैं।
मोहन भारती, न्यस्त स्वार्थों के कारण आदतें नहीं मिटतीं।
सेठ चंदूलाल की कब्र पर उनकी पत्नी ने एक संगमरमर का पत्थर लगवाया, जिस पर लिखा थाः शांति से सोओ। तीन दिन बाद जब सेठ चंदूलाल की वसीयत पढ़ी गई और पता चला कि वे अपनी पत्नी के नाम एक पैसा भी नहीं छोड़ गए हैं, तो सेठानी को बहुत गुस्सा आया। आगबबूला, भागी, मरघट पहुंची और कब्र के पत्थर पर आगे लिखवायाः शांति से सोओ--जब तक मैं नहीं आती।
न्यस्त स्वार्थ जब हों तो "सो लो शांति से थोड़े दिन, फिर आकर वह मजा चखाऊंगी कि याद रहेगा अनंतकाल तक!"
तुम उदासीनता नहीं छोड़ पा रहे, गंभीरता नहीं छोड़ पा रहे हो--उसी कारण आदर पाते होओगे। वही तुम्हारा अहंकार होगा। तो मैं लाख चोट करूं, जब तक तुम यह न समझ लो कि अहंकार को छोड़ना है तब तक तुम बचाए ही रखोगे।
तुम अपनी मांग में हरे रंग का सिंदूर क्यों लगाती हो? विवाहित स्त्रियां तो अपनी मांग में लाल सिंदूर भरती हैं? मैंने एक स्त्री से पूछा?
वह बोलीः मेरे पति इंजन ड्राइवर हैं। जब मैं लाल सिंदूर लगाती हूं तो
वे मुझे देख कर रुक जाते हैं, दूर ही रुक जाते हैं। इसीलिए मैं हरा सिंदूर लगाती हूं। हरा सिंदूर लगा देख कर एकदम आलिंगन कर लेते हैं।
न्यस्त स्वार्थ जब होंगे तब सिंदूर देखना है कि लाल है कि हरा, कि अपने पति को देखना है? अरे हरा हो कि लाल, पति को आलिंगन करने के लिए निमंत्रण देना है। तुम अपनी गंभीरता में अपने स्वार्थ खोजने की कोशिश करो, नहीं तो मैं कुछ कहूंगा, तुम कुछ सुनोगे, कुछ समझोगे।

शाम हो रही थी, परंतु चंदूलाल की पत्नी शापिंग समाप्त करने का नाम ही नहीं ले रही थी। चंदूलाल थक कर चूर हो गए थे और दिल ही दिल में बिलों का हिसाब जोड़ रहे थे। देवी जी ने उनकी बोरियत मिटाने के लिए कहाः देखो तो चांद कितना सुंदर लग रहा है!
चंदूलाल एकदम भड़क उठे, बोलेः अब उसे खरीदने के लिए मेरे पास बिल्कुल पैसे नहीं हैं!
अपने-अपने स्वार्थ, भीतर-भीतर चल रहे हैं, ऊपर से तुम कुछ कहो। वह घबड़ा गया। जो चीज को कहे "देखो कितनी सुंदर", वही खरीदनी पड़ती। यह साड़ी सुंदर, यह फलां चीज सुंदर, यह हार सुंदर, अब यह दुष्ट कह रही है कि चांद सुंदर! अब मारा इसने! बिल्कुल दीवाला निकलवा देगी। अब चांद खरीदने के लिए पैसे कहा हैं!
चंदूलाल ने एक भिखारी को देखा। भिखारी बोलाः मालिक! ऐ मालिक!! जो दे उसका भी भला, जो न दे उसका भी भला।
चंदूलाल जा रहे थे किसी जरूरी काम से। सोचते थे अगर भला हो जाए तो अच्छा। काम ही ऐसा था कि एक दफा हो जाए तो बस जिंदगी भर के लिए निपट गए। बोले भिखारी सेः क्यों भाई, अगर मैं तुम्हें पांच रुपये दे दूं और फिर वापस ले लूं तो मेरा क्या होगा? दे तो सकते नहीं, पांच रुपये छोड़ तो सकते

नहीं। मगर वह जो उसने कहा, जो दे उसका भी भला और जो न दे उसका भी भला, तो सोचा दोहरे भले मुफ्त हो जाएं। पांच रुपये पहले दे दें, सो भला; और फिर पांच रुपये ले लें, सो भला! दोहरा भला छोड़ने की हिम्मत चंदूलाल की भी न पड़ी।
भिखारी भी मारवाड़ियों के गणित जानता है। भिखारियों को भी मामला चौबीस घंटे मारवाड़ियों से पड़ता है। भिखारी ने कहाः सेठ जी, पहले आपकी लाटरी खुलेगी।
अरे--चंदूलाल ने कहा--गजब कर दिया, गजब कर दिया! तू भिखारी नहीं है, ज्योतिषी है रे ज्योतिषी! मैं लाटरी की ही टिकट खरीदने तो जा रहा हूं। लेकिन दूसरी बात भी बता दे कि फिर जब पांच रुपये वापस ले लूंगा तो क्या होगा?
तो उसने कहाः पहले तो लाटरी खुलेगी और फिर आपका हार्टफेल हो जाएगा। चंदूलाल ने कहाः पहला भला तो मेरी समझ में आया, दूसरा भला?
उसने कहाः दूसरा भला तो अंतिम भला है--आवागमन से छुटकारा! फिर इस दुखसागर में, भवसागर में नहीं आना पड़ेगा।
चंदूलाल ने कहाः ऐसी की तैसी तेरे भले की! न चाहिए मुझे लाटरी और न मुझे आवागमन से छुटकारा करवाना है।
मोहन भारती, जरा सोचो। मेरी बातें अगर ठीक लगती हैं तो अटक कहां जाते हो? जरूर कहीं कोई न्यस्त स्वार्थ की चट्टान इन छोटे-छोटे झरनों को रोक लेती होगी। उस चट्टान को हटा दो।
मैं तो जो कह रहा हूं, बहुत सीधा-साफ है। तिरछे हो तो तुम हो। मैं तो जो
कह रहा हूं, वह तीर की तरह तुम्हारे हृदय में चुभे, लेकिन तुम बच-बच जाते हो।
बचो मत। व्यर्थ समय मत गंवाओ। समय थोड़ा है। और फिर पता नहीं, मुझ जैसे व्यक्ति से कब मिलना हो--हो या न हो।

आज इतना ही।

बहुरि न ऐसो दांव
पांचवां प्रवचन

डूबने का आमंत्रण

पहला प्रश्नः ओशो, आपने आचार्य तुलसी और मुनि नथमल पर अपने विचार व्यक्त किए। क्या इनकी साधना, आध्यात्मिक ज्ञान एवं अनुभव के विषय में भी बताने की अनुकंपा करेंगे? इनके साधना-स्थल बिल्कुल सूने पड़े हैं। अभी जैन विश्व भारती, लाडनूं देखने का अवसर मिला, सुजानगढ़ शिविर के समय। दो करोड़ की लागत से खड़ी संस्था में इमारतें तो बहुत हैं, लेकिन साधक बहुत ही कम। आचार्य तुलसी एवं मुनि नथमल दोनों वहां हैं, फिर भी कोई भीड़ साधकों की नहीं है। मुनि नथमल आपकी तरह शिविर भी लेने लगे हैं और उनके ध्वनि-मुद्रित प्रवचन भी तैयार होने लगे हैं। मुनि नथमल कहते हैंः संगीत से ध्यान में गति एक सीमा से आगे नहीं होती है। आचार्य तुलसी ने अपने शिष्यों को कहा है कि वे आपका साहित्य न पढ़ें। लेकिन जैन साधु एवं साध्वी मेरे यहां ठहरते हैं, आपकी पुस्तकें पढ़ते हैं और टेप सुनते हैं और वे आपसे प्रभावित हैं। फिर इनके आचार्य आपका क्यों विरोध करते हैं? कृपया समझाएं।

स्वामी धर्मतीर्थ! धर्म की आत्मा संस्थाओं में नहीं होती, जीवंत व्यक्तियों में होती है। जब फूल खिलता है तो तितलियां अपने आप उसका रस पीने उड़ती चली आती हैं। मधुमक्खियां मीलों से खबर पा जाती हैं। भौंरे दूर-दूर से यात्रा पर निकल पड़ते हैं। मगर फूल खिलना चाहिए। फूल की जगह तुम प्लास्टिक के फूल रख दो, तो न तो मधुमक्खियां आएंगी, न तितलियां आएंगी, न भंवरे गुंजार करेंगे।
महावीर के पास दूर-दूर से साधक, अन्वेषक, मुमुक्षु इकट्ठे हुए थे; बुद्ध के पास इकट्ठे हुए थे। हजारों मील की यात्राएं करके लोग आए थे। यह गंध ऐसी है कि विश्व के कोने-कोने तक व्याप्त हो जाती है। लेकिन संस्थाओं में प्राण कहां! तुम दो करोड़ नहीं, पचास करोड़ की संस्था खड़ी कर लो--इमारतें ही होंगी। और ठीक है इमारतें होंगी तो कुछ काहिल, सुस्त, आलसी, जिन्हें कुछ नहीं करना है, वे जरूर साधक के नाम की ओट में वहां इकट्ठे भी हो जाएंगे। या कुछ नौकर-पेशा लोग, जिनके लिए वे संस्थाएं केवल रोजगारी का साधन हो जाएंगी, रोटी-रोजी कमाने का उपाय बन जाएंगी, वे इकट्ठे हो जाएंगे। साधक वहां नहीं मिलेगा।
तुम कहते होः "बहुत थोड़े साधक वहां दिखाई पड़े।"
जो तुम्हें दिखाई पड़े वे भी साधक नहीं हैं। वे भी वहां हैं, लेकिन साधना के लिए नहीं हैं।
मुझे एक शंकराचार्य ने आमंत्रित किया था। उनका सेक्रेटरी मुझे लेने आया, निमंत्रण देने आया। मैंने पूछाः कितने दिन से उनके पास हो? उसने कहाः दो साल से उनके पास हूं।
क्या सीखा?
उसने कहाः सीखने के लिए उनके पास है ही कौन! उलटे वे मुझसे सीख रहे हैं। मुझे तनख्वाह मिलती है, इसलिए वहां हूं।
दो साल पहले कहां थे? मैंने पूछा।
कहाः दो साल पहले आचार्य तुलसी के पास था। लेकिन वहां से यहां अब तनख्वाह ज्यादा मिलती है, तो यहां हूं। कल कहीं और तनख्वाह ज्यादा मिलेगी तो वहां पहुंच जाऊंगा।
पहले वे तुलसी का प्रचार करते थे। जब पहली दफा मुझे मिले थे तो तुलसी
के भक्त थे; तब वे जैन धर्म की बातें करते थे, तेरापंथ का गुणगान करते थे, तुलसी की स्तुति गाते थे। इस बार मिले तो सब बदल गया था। हिंदू धर्म की चर्चा थी, शंकराचार्य का गुणगान था। मैंने पूछाः इतनी जल्दी सब बदल डाला? उसने कहाः हमें लेना-देना क्या? जिसका नमक खाते हैं उसकी बजाते हैं।
कल कोई और हमें ज्यादा तनख्वाह देगा, हम वहां चले जाएंगे।
जब यह कम्यून बनना शुरू हुआ, उनका पत्र यहां भी आया--उनका नाम है हरिभजन लाल शास्त्री--कि आपकी सेवा में आना चाहता हूं। बस अब आप अपने पास

बुला लें। इतना ही है कि पत्नी-बच्चे हैं, बूढ़े मां-बाप हैं; इनके योग्य थोड़ी व्यवस्था मेरे लिए कर दें, तो बस अब आपका गुणगान गाऊं, आपकी स्तुति करूं और जीवन व्यतीत करूं।
मैंने उन्हें खबर करवाई यह जगह नहीं जहां तुम जैसे मित्रों का कोई स्थान हो सके। यह पेशेवर लोगों की जगह नहीं है। यहां तो सत्यान्वेषी, सत्य की अभीप्सा से भरे हुए लोगों के लिए ही केवल निमंत्रण है। तुम तो रोटी के चाकर हो। जो दो रोटी फेंक देगा, उसके पास पूंछ हिलाने लगोगे। मुझसे तुम्हारा कोई संबंध न बन सकेगा।
फिर उनका पता ही नहीं चला। अगर सत्य की ऐसी अभीप्सा पैदा हुई थी तो आना था और कहना था कि नहीं मैं नौकरी के लिए नहीं आना चाहता। अब वे किसी तीसरे संत के पास पहुंच गए हैं। अब जिस संत के पास हैं, उसको वे राष्ट्रसंत घोषित करते हैं।
पंडित, पुरोहित, शास्त्री--इस तरह के लोग इकट्ठे तुम्हें मिल जाएंगे। कुछ सीधे-सादे लोग भी मिल जाएंगे, जिनको कुछ समझ नहीं कि साधना क्या है; जो परंपरागत रूप से जन्म से कुछ बातें सुनते रहे हैं और उनको मानने लगे हैं। क्योंकि जन्म से एक ही बात सिखाई गई हैः "विश्वास करो।" खोज की तो कोई कहता ही नहीं; खोज के पहले ही मान लो। अन्वेषण की यात्रा पर निकलने के लिए तो कोई आमंत्रण नहीं देता; चुपचाप स्वीकार करो, थोप लो अपने ऊपर, आरोपित कर लो। तो कोई जैन है, कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है--ये सब आरोपित लोग हैं। फिर नाम बड़े-बड़े... इस देश में नाम बड़े-बड़े देने का तो बड़ा आकर्षण है। यहां छोटे-मोटे काम तो होते ही नहीं। किसी मोहल्ले में कवि-सम्मेलन होगा, मोहल्ले के कवि इकट्ठे हो गए--वे भी सब इकट्ठे नहीं होते क्योंकि उनमें भी दलबंदियां और गुटबंदियां होती हैं, झगड़े-झांसे होते हैं, मुकदमे चलते हैं--मगर नाम होगाः अखिल विश्व कवि सम्मेलन, अंतर्राष्ट्रीय कवि सम्मेलन। तो नाम तो तुम्हारे हाथ में है जो देना हो दे दो।
एक सज्जन के पहले लड़के का नाम थाः अंतर्रंजन। दूसरे लड़के का नाम थाः संतरंजन। तीसरे लड़के का नाम थाः पंतरंजन। अब चौथा लड़का पैदा हुआ तो बड़ी समस्या खड़ी हुई कि क्या नाम रखना! मुझसे पूछने लगे। मैंने कहाः दंतमंजन! अरे नाम तो तुम्हारे हाथ में है और दंतमंजन ज्यादा चलेगा। क्या संतरंजन? अब संत ही नहीं है, क्या संतरंजन? और क्या अंतर्रंजन, क्या लेना-देना इसको भीतर के प्रवेश से? दंतरंजन, दंतमंजन--ऐसा कुछ नाम रखो। यथार्थवादी होगा। नाराज हो गए कि आप भी क्या बातें सुझाते हैं! कैसा नाम आप सुझाते हैं!
अब मैं कुछ भी नाम रख लूं तो भी मैं यह दंतमंजन को नहीं भूल सकूंगा। यह मेरे ख्याल में रहेगा ही, यह लड़का जब भी मुझे दिखाई पड़ेगा, मुझे दंतमंजन की याद आएगी।
तो मैंने कहाः जब भी दंतमंजन याद करो तो हमेशा ख्याल रखना--बंदर छाप काला दंतमंजन।
नाम... "जैन विश्व भारती!" कितने जैन हैं? कुल पैंतीस लाख। वे भी केवल
इस देश में। क्या विश्व में उनकी स्थिति है? मेरी एक छोटी सी चुनौती को तो जैन मुनि--न आचार्य तुलसी, न आनंद ऋषि, न एलाचार्य विद्यानंद, न कोई और-- स्वीकार करने को राजी है। मेरी छोटी सी चुनौती है कि तुम विश्व की बातें करते हो, एक गांव तो जैनों का बसा कर बता दो--सिर्फ एक गांव, जिसमें सारे काम जैन करते हों। तभी तुम्हें हक होगा यह कहने का कि यह समाज है।
समाज का अर्थ क्या होता है? कौन जैन चमार का काम करेगा? जूते तो जरूरी होंगे। और कौन जैन पाखाना साफ करेगा? और कौन जैन सड़क पर बुहारी लगाएगा? और कौन जैन, छोटे-मोटे हजार काम हैं, जिनको करने को राजी होगा? एक बस्ती जैन नहीं बसा सके पच्चीस सौ वर्षों में--एक गांव। विश्व की बातें कर रहे हो! मैं जैनों को समाज नहीं कहता, न सभ्यता कहता हूं, न संस्कृति कहता हूं। यह तो केवल एक विचारधारा मात्र है--और ऐसी विचारधारा, जिसकी कोई जड़ें नहीं हैं। यह दूसरों की छाती पर बैठी विचारधारा है। खेती-बाड़ी भी जैन नहीं कर सकते, और तो और, क्योंकि उसमें हिंसा हो जाएगी। तो कैसे यह समाज है? ये तो हिंदुओं पर, मुसलमानों पर, ईसाइयों पर जी रहे हैं। कोई ईसाई नर्स का काम कर रही है महिला, कोई जैन महिला तो नर्स का काम करने को राजी हो! मवाद साफ

करना, मरीजों का पाखाना साफ करना... छिः-छिः! कहां के भ्रष्ट कार्य, मलेच्छ कार्य! नरक जाएंगे ये सब!
यह बड़ा मजा है। मल-मूत्र करने वाले स्वर्ग जाएंगे और मल-मूत्र की सफाई करने वाले मलेच्छ नरक जाएंगे। यह कौन सा तर्क है, कौन सा गणित है? सफाई करने वाले स्वर्ग जाएंगे, गंदगी करने वाले नरक जाएं तो समझ में आता है। जो सफाई कर रहे हैं इनको नरक भेजोगे! तो अगर जैनों का कोई स्वर्ग भी होगा तो वहां कौन सफाई करेगा?
इस छोटी सी चुनौती को मैं दस साल से दोहरा रहा हूं, कोई जैन मुनि हिम्मत करके स्वीकार नहीं कर सका। और उनकी छाती फटी जा रही है, क्योंकि मैं एक कम्यून बनाने के लिए तैयारी दिखा रहा हूं। तो कम्यून बन न सके इसके लिए हजार तरह की बाधाएं डाली जा रही हैं। क्योंकि जो चुनौती मैंने दी है, वे तो पूरी कर नहीं पाए; लेकिन मैं पूरी करके दिखा सकता हूं। कोई अड़चन नहीं है। आज इस छोटे से कम्यून में जूते बनाने वाले संन्यासी हैं; वे उतने ही सम्मानित हैं जितना कोई और। पाखाना साफ करने वाले संन्यासी हैं; कोई उनको भंगी नहीं कहता, न हरिजन कहता। अच्छे-अच्छे नाम रखने से कुछ होता है, कि भंगी को हरिजन कह दिया, कि चमार को हरिजन कह दिया! नाम का हमें बड़ा आग्रह है! अच्छा सा नाम लिख दिया कि बात सब ठीक हो गई। मगर काम तो वही है, मुसीबत तो वही है। पहले शूद्र की, अछूत की स्त्री पर बलात्कार होता था; अब हरिजन की स्त्री पर बलात्कार होता है। बलात्कार जारी है। मगर हरिजन की स्त्री के साथ बलात्कार करना तो धार्मिक कृत्य समझा जाना चाहिए। हरिजन... तो नरसिंह मेहता ने कहा ही हैः पीर परायी जाने रे! जो दूसरे की पीर जानता है, वही हरिजन है।
अच्छे-अच्छे शब्द गंदी से गंदी बातों पर थोप देते हैं और फिर सोचते हैं बात हल हो गई।
जैनों की बड़ी इच्छा है विश्व धर्म बनने की। मगर एक बस्ती बसा नहीं सकते। विश्वविद्यालय बनाने हैं इन्हें। जैन जहां इकट्ठे होते हैं, इनके जहां सम्मेलन होते हैं, वहीं चर्चा होती हैः जैन विश्वविद्यालय होना चाहिए--जैसे हिंदू विश्वविद्यालय, काशी और मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़--ऐसा जैन विश्वविद्यालय होना चाहिए। मगर जैन विश्वविद्यालय में मेढक कौन काटेगा, चिकित्साशास्त्र कौन पढ़ाएगा? उसके लिए अ-जैन बुलाने पड़ेंगे--वे जो कि नरक जाएंगे! बस जैन विश्व भारती! और कहां लाडनूं, जिसका नाम भी किसी ने कभी न सुना हो! एक छोटा-मोटा गांव, वहां जैन विश्व भारती! पैसा है जैनों के पास, सो दो करोड़ नहीं, वे पचास करोड़ लगा दें। मगर पैसे से दुनिया में सभी चीजें नहीं खरीदी जा सकतीं।
इस जगत में जो भी मूल्यवान है, वह सिर्फ प्रेम से मिलता है, पैसे से नहीं। प्रेम से पैसा भी मिल सकता है, लेकिन पैसे से प्रेम नहीं मिल सकता। तुम पूछ रहे हो कि इनके साधना-स्थल बिल्कुल सूने पड़े हैं। पड़े ही रहेंगे। ये मकान बना सकते हैं बेचारे, साधक कहां से लाएंगे? इमारतें खड़ी कर लेंगे, उसमें कुछ अड़चन नहीं है। तीर्थ बना लेंगे, मगर तीर्थंकर न हो तो तीर्थ कैसा? यह जरा सोचो, बिना तीर्थंकर के तीर्थ नहीं होता। तीर्थंकर पहले, तीर्थ पीछे। सिद्ध पहले, फिर साधक आते हैं। सदगुरु पहले, फिर शिष्य का जन्म होता है। सदगुरु के गर्भ से ही शिष्य का जन्म होता है।
तो ये बेचारे थोथे कामों में लगे रहते हैं। बस अहंकार को फैलाने के लिए कुछ न कुछ करना है तो करते हैं।
अब तुम पूछ रहे हो कि इनकी साधना, आध्यात्मिक ज्ञान एवं अनुभव के संबंध में कुछ कहूं। क्या खाक कहूं! कुछ हो तो कहूं! न इनकी कोई साधना है, न कोई आध्यात्मिक ज्ञान है, न कोई अनुभव है। कहने को कुछ भी नहीं है। कोरी किताबी जानकारी है। उसको अगर तुम आध्यात्मिक ज्ञान कहते हो तो तुम्हारी मर्जी। वह आध्यात्मिक ज्ञान नहीं। किताब तो कोई भी पढ़ ले। किताब पढ़ने में क्या अड़चन है? जिसको पढ़ना आता है वह पढ़ ले। न पढ़ना आता हो, किसी और से सुन ले। ब्रह्म की चर्चा सीख ले, अध्यात्म की बातें करने लगे। आत्मा-परमात्मा का सैद्धांतिक ऊहापोह करने लगे। लेकिन इससे कुछ आध्यात्मिक ज्ञान नहीं होता। आध्यात्मिक ज्ञान तो स्वानुभव से ही होता है--जो अपने भीतर उतरे,

अपने भीतर डूबे; जो अपने को पा ले, अपनी अंतर-ज्योति को जगा ले; जिसके भीतर छिपा हुआ कमल खिले, सुगंध उड़े; जिसके जीवन में ऐसा प्रकाश का उदय हो कि खुद ही आलोकित न हो जाए, जो उसके पास बैठे वह भी आलोकित हो उठे; जिसके भीतर ऐसा संगीत बजे कि जिन्होंने कभी संगीत नहीं जाना, उसके पास आ जाएं तो उनकी हृदयतंत्री के तार भी झनझना उठें। और यह संगीत तो कुछ ऐसा संगीत है-- वाद्यों से पैदा नहीं होता। बांसुरी ओंठ पर रखनी नहीं पड़ती और बजने लगती है। पैर में घूंघर बांधने नहीं पड़ते और बजने लगते हैं।

मैंने पैरों में पायल तो बांधी नहींः
मैंने पैरों में पायल तो बांधी नहीं
क्यों सदा आ रही है झनन-झन झनन-झन झनन-झन

मैंने हाथों में कंगन तो पहना नहीं
पहना नहीं
मैंने हाथों में कंगन तो पहना नहीं क्यों सदा आ रही है झनन-झन झनन-झन झनन-झन मैंने पैरों में पायल तो बांधी नहीं

न कोई आरजू न कोई आस है,
न कोई आरजू न कोई आस है,
मेरे दिल ये बता कैसा अहसास है
दिल में अनचाहा सा एक अरमान है
कुछ दिनों से यहीं दिल परीशान है मैंने छेड़ी नहीं प्यार की रागिनीः मैंने छेड़ी नहीं प्यार की रागिनी क्यों सदा आ रही है झनन-झन झनन-झन झनन-झन मैंने पैरों में पायल तो बांधी नहीं

न कोई आरजू न कोई आस है
मेरे दिल ये बता यह कैसा अहसास है,
कोई देने लगा है सदाएं मुझे
आ गई हैं कहां से अदाएं मुझे
कुछ दिनों से अजब आरजू जग उठी गुदगुदाने लगी हैं हवाएं मुझे
मेरा आंचल तो बांहों के घेरे में है
मेरा आंचल तो बांहों के घेरे में है
क्यों सदा आ रही है झनन-झन झनन-झन झनन-झन
मैंने पैरों में पायल तो बांधी नहीं

न कोई आरजू न कोई आस है
मेरे दिल ये बता यह कैसा अहसास है

कुछ होना शुरू होता है जो अदृश्य है; जो पकड़ में नहीं आता साधारण इंद्रियों की, लेकिन फिर भी घटता है। रोआं-रोआं तरंगित हो उठता है। आध्यात्मिक ज्ञान एक अहसास है; ज्ञान नहीं, एक अनुभूति। बाहर के जगत
का इससे कुछ लेना-देना नहीं है। न शास्त्रों में है, न शब्दों में है-- विपरीत, निःशब्द में है, शून्य में है।
मैं इन्हें जानता हूं--तुलसी को भी, नथमल को भी। इनके न मालूम कितने साधु मेरे पास आए, गए। अब तो उनकी हिम्मत टूट गई, अब तो आने में भी डरते हैं। अब तो घबड़ाहट होती है, क्योंकि मेरे पास आना मतलब श्रावकों से दुश्मनी लेनी है। अभी कच्छ से जैन मुनियों की खबरें आनी शुरू हुईं कि हम आपके पक्ष में हैं और वक्तव्य देना चाहते हैं, मगर फिर हमारे भविष्य का क्या होगा? क्योंकि हमने अगर इतना भी कहा कि हम आपके पक्ष में हैं तो जैन

समाज हमें तत्क्षण निष्कासित कर देगा। हमें रोटी-पानी तक के लाले पड़ जाएंगे। तो हमारी मजबूरी है, हम चुप हैं। हम आपके पक्ष में कहना चाहते हैं, नहीं कह सकते; क्योंकि हमारे जीवन-मरण का भी यह सवाल है।
मैंने उन्हें खबर भिजवा दी कि तुम बेफिकरी से कहो। मेरे हजारों संन्यासी हैं, इनमें तुम भी सम्मिलित हो जाना। बस एक ही बात ख्याल रखो कि यहां तुम अपने जैन ढांचे को न ला सकोगे। उतना भर तुम्हारा साहस हो तो अंगीकार हो, ये द्वार तुम्हारे लिए खुले हैं। मगर तुम कहो कि हम यहां मुंहपट्टी बांध कर घूमेंगे, हमें बैठने के लिए अलग तख्त चाहिए, हम इस तरह का भोजन करेंगे, उस तरह का भोजन करेंगे, यह भोजन किसने बनाया, इटेलियन है कि फ्रेंच है कि ईसाई है कि हिंदू है, हम तो सिर्फ जैन श्राविका के हाथ का भोजन लेंगे, कि हम तो इतने देर का लगा हुआ दूध पीएंगे, हम तो इतने दिन पुराना घी खाएंगे--अगर तुम ये झंझटें लाओ तो ये झंझटें अंगीकार नहीं कर सकता हूं। तुम आ जाओ, झंझटें बाहर छोड़ आओ। अगर तुम्हें मेरी बात प्रीतिकर लगती है और तुम्हारा मन हो रहा है कि तुम कहो स्पष्ट... ।
अब तुम चकित होओगे जान कर, लक्ष्मी अभी लौटी कच्छ होकर तो मैंने पूछा
कि क्या स्थिति है? उसने कहा--वह चकित हुई है। चकित हुई यह बात जान कर कि अखबारों में इतना शोरगुल मचाया जा रहा है मेरे विरोध में, लेकिन कच्छ के लोग आंखें बिछाए बैठे हैं। लक्ष्मी केवल पंद्रह मिनट के लिए मांडवी गई और एक हजार आदमी इकट्ठे हो गए और उन्होंने कहा कि शीघ्र आओ, जल्दी आओ देखें कौन रोकता है!
रोकने वाले, वक्तव्य देने वाले लोग कौन हैं? इनके निहित स्वार्थ हैं।
और उन्होंने कहा कि तू आधा घंटा रुक जा तो हम दस हजार आदमी अभी इकट्ठे कर देते हैं स्वागत के लिए। अभी! जब सारा आश्रम आएगा तब तो पूरा कच्छ हम इकट्ठा कर देंगे।
लेकिन ये वक्तव्य देने वाले लोग कौन हैं? कोई महंत, कोई संत, कोई पंडित, कोई पुजारी, कोई राजनेता, कोई जनसंघी, कोई मतांध हिंदू, कोई मतांध जैन, कोई मुनि, कोई आचार्य--इस तरह के लोग। और मजा यह है कि इनमें से भी कितने लोग वस्तुतः राजी हैं विरोध के लिए, यह भी साफ करना मुश्किल है। क्योंकि उनके अपने न्यस्त स्वार्थ हैं। वे डरे हुए हैं, घबड़ाए हुए हैं। क्या इनकी साधना, क्या इनका साहस? ऐसे कमजोर लोग! और इनकी पूजा चल रही है हजारों वर्षों से!
तुम पूछते होः "इनकी साधना के संबंध में कुछ कहूं।"
इनकी कोई साधना नहीं है। मैं इसको साधना नहीं कहता कि एक बार भोजन कर लिया। मैं इसको साधना नहीं कहता कि चार ही कपड़े रखे। मैं इसको साधना नहीं कहता कि रात में न चले, कि प्रकाश न जलाया। ये सब बचकानी बातें हैं, इनसे जीवन-रूपांतरण नहीं होता। साधना तो सिर्फ एक है और वह है अंतर्यात्रा; वह है ध्यान। और उसका इन्हें कोई भी पता नहीं है, दूर का भी पता नहीं है। इनके कानों में भी खबर नहीं पड़ी। वह झनन-झन की आवाज इन्हें सुनाई नहीं पड़ी है। तभी तो इस तरह की व्यर्थ की बातें ये कह सकते हैं।
तुमने पूछा धर्मतीर्थ कि नथमल कहते हैंः "संगीत से ध्यान में गति एक सीमा से आगे नहीं होती।"
इन्हें क्या पता है संगीत का? इन्हें क्या पता है ध्यान का? इन्हें क्या पता है गति का? तो पागल थे वे जिन्होंने यह कहा कि समाधि की परम अवस्था में नाद का विस्फोट होता है? वस्तुतः संगीत का अनुभव ही समाधि में होता है, उसके पहले कभी होता ही नहीं। उसके पहले तुम जिसे संगीत कहते हो वह संगीत नहीं है, बस संगीत की दूर की प्रतिध्वनि है। बहुत दूर की प्रतिध्वनि। जैसे किसी पहाड़ी पर जाकर तुम आवाज लगाओ तो पहाड़ियों में से आवाज गूंजे। वह जो पहाड़ों से आवाज गूंज रही है, प्रतिध्वनि है, ध्वनि नहीं। ऐसे ही जब तुम सितार के तार छेड़ देते हो तो जो आवाज गूंजती है, वह प्रतिध्वनि है, ध्वनि नहीं, संगीत नहीं है। संगीत को तो सिर्फ थोड़े से लोगों ने जाना है। जिन्होंने जाना है, उन्होंने कहा हैः एक ओंकार सतनाम! ओंकार उस परम संगीत का नाम है। वह तो सुना जाता है भीतर और सुना जाता
है तब जब सब शून्य हो जाता है। जब एक विचार नहीं रह जाता, एक वासना नहीं रह

जाती, मोक्ष की भी वासना नहीं, आवागमन से मुक्ति होने की भी वासना नहीं, बैकुंठ और स्वर्ग जाने की भी आकांक्षा नहीं--उस परम मौन के क्षण में, जब भीतर कोई हलन-चलन नहीं, जब सब थिर है, तब नाद का विस्फोट होता है। तब आदमी जानता है संगीत क्या है--ईश्वरीय संगीत! वही नाद-ब्रह्म है। उसी संगीत से सारी सृष्टि का सृजन हुआ है। वही संगीत सघन होकर अस्तित्व बना है। तुम उसी संगीत से निर्मित हो। तुम्हारे रोएं-रोएं में वह बज रहा है, मगर सुनने वाला नहीं है कोई; तुम मूर्च्छित हो या अपने विचारों के शोरगुल में खोए हुए हो। बाजार भरा है तुम्हारे सिर में। फिर ये बाजार में तुम खाते-बही का हिसाब कर रहे हो, कि कुंदकुंदाचार्य के समयसार का विचार कर रहे हो, कि महावीर, बुद्ध, कृष्ण इनके शब्दों पर ऊहापोह कर रहे हो--इससे फर्क नहीं पड़ता। तुम कंकड़-पत्थर के संबंध में सोच रहे कि हीरे-जवाहरातों के संबंध में, कुछ फर्क नहीं पड़ता। जब तक सोच-विचार की प्रक्रिया जारी है, संगीत का कोई अनुभव नहीं होगा।
नथमल को क्या संगीत का अनुभव है जो ये कहें कि संगीत से ध्यान में गति
एक सीमा से आगे नहीं होती? लेकिन इस तरह की मूढ़तापूर्ण बातें कही जा सकती हैं, क्योंकि सुनने वाले कौन हैं, उनको क्या पता है? कुछ भी कहो, लोग सुन लेंगे। उन्हें भी पता नहीं है, तुम्हें भी पता नहीं है। अंधे अंधों को मार्गदर्शन दे रहे हैं।
तुमने पूछा है धर्मतीर्थ कि "तुलसी ने अपने शिष्यों को कहा है कि वे आपका साहित्य न पढ़ें।"
क्या घबड़ाहट है मेरे साहित्य से? अगर मेरा साहित्य गलत है तो तुम्हारे शिष्य, तुम्हारे साधु, तुम्हारी साध्वियां, जो कि ध्यान में ऐसी पराकाष्ठा को पहुंचे हैं कि यह भी बता सकते हैं कि संगीत थोड़ी दूर तक साथ देता है, जिनका ऐसा आत्मसाक्षात्कार है, मेरा साहित्य उनका क्या बिगाड़ लेगा? क्या घबड़ाहट है? क्या डर है? डर यही है... पहला डर तो यह है कि मेरा साहित्य जो भी लोग पढ़ लेंगे, वे इनकी थोथी बातों में नहीं आएंगे। इनकी बातें उन्हें थोथी मालूम पड़ने लगेंगी, दो कौड़ी की मालूम पड़ने लगेंगी। यह घबड़ाहट है। और दूसरी और भी एक गहरी घबड़ाहट है कि ये जो बातें कह रहे हैं वे मेरा साहित्य पढ़ कर कह रहे हैं। तो अगर लोग भी मेरा साहित्य पढ़ें तो वे फौरन पहचान लेंगे कि अरे, आप तो वही बातें दोहरा रहे हैं तोतों की तरह; शब्द बदल लेते हैं, शास्त्रों के उद्धरण दे देते हैं, थोड़ा शास्त्रों का आस-पास बागुड़ लगा देते हैं, मगर जो आप कह रहे हैं यह तो वही है। तो भी दिक्कत होगी। तो भी अड़चन होगी।
जो लोग मुझे सुनते हैं, मुझे पढ़ते हैं, उन्होंने निरंतर इन मुनियों से जाकर पूछा है कि आप जो कह रहे हैं, यह तो वही है।
मेरे एक संन्यासी, स्वराज्यानंद, जैन थे, वृद्ध जैन थे। और जैनियों में बहुत प्रख्यात, खासकर दिगंबर जैनियों में प्रख्यात कानजी स्वामी के पहले भक्त थे। कानजी स्वामी का दिगंबरों में प्रख्यात होने का कुल कारण इतना है कि वे पैदा हुए थेश्वेतांबर और फिर वे श्वेतांबर मार्ग को छोड़ कर दिगंबर हो गए। जब भी कोई आदमी किसी धर्म को छोड़ कर दूसरे धर्म में प्रवेश करता है तो दो कौड़ी का आदमी एकदम हीरा हो जाता है, क्योंकि उस धर्म के लोग बड़े आह्लादित होते हैं कि देखो फिर एक प्रमाण मिला कि हमारा धर्म ही ठीक है, दूसरा धर्म गलत था! तोश्वेतांबरों ने तो बहुत विरोध किया, लेकिन दिगंबरों ने बहुत सहायता दी।
स्वराज्यानंद भी दिगंबर थे। फिर मेरे संन्यासी हो गए, तो कानजी स्वामी को मेरे संन्यासी होने के बाद मिलने गए--सिर्फ यह निवेदन करने कि मुझे क्षमा करें, अब मैं और आपके साथ न चल सकूंगा। और कानजी स्वामी निरंतर मेरे खिलाफ उनको समझाते रहे थे; यह भी कहते रहे थे कि मेरी किताबें न पढ़ें। उस दिन वे बिना कुछ कहे, बिना कुछ पूर्व सूचना दिए पहुंच गए। देखा कानजी स्वामी साधना-पथ पढ़ रहे हैं! कानजी स्वामी भी घबड़ा गए। जल्दी से किताब को उलट कर रख दिया, जिसमें उसका शीर्षक दिखाई न पड़े। मगर जो लोग मेरी साधना-पथ से परिचित हैं वे तो उसके उलटे हिस्से को भी जानते हैं। स्वराज्यानंद ने कहाः क्या पढ़ रहे हैं आप? तो छिपाना भी मुश्किल हो गया। कहा कि जरा देख रहा

हूं कि यह व्यक्ति क्या कहता है, जिसके कारण इतने लोग भ्रष्ट हो रहे हैं! मगर तुम इसे मत पढ़ना। इस व्यक्ति की किताब को छूना भी पाप है।
तो स्वराज्यानंद अब तो बिगड़ ही चुके थे, वे मेरे संन्यासी हो चुके थे। उन्होंने कहाः मैं तो अब बिगड़ ही चुका और अब आपसे मेरा कोई लेना-देना भी नहीं रहा, गुरु-शिष्य का कोई संबंध भी नहीं रहा, अब आपसे दो बातें सच्ची- सच्ची हो जाएं, कि जब से मैंने उनकी किताबें पढ़ी हैं तब से मैं यह जान कर हैरान हुआ कि आप जो-जो समझाते रहे हैं वह उन्हीं की किताबों में से है; सिर्फ फर्क इतना है कि उसके लिए उद्धरण आप शास्त्रों में से देते हैं, वे सीधा कहते हैं। तुम शास्त्रों में लपेट कर उसी बात को गोलमोल करके पेश करते हो। और हम उनके शास्त्र को छुएं तो पाप और तुम उनकी किताब पढ़ो तो पुण्य! अभी यह किताब छुई, अब इसका पाप कौन भोगेगा?
कानजी तो बहुत हैरान हुए। कहाः कैसी बातें कर रहे हो आज अटपटी?
कहाः अटपटी बातें नहीं कर रहा हूं, आज सच्ची-सच्ची बातें कर रहा हूं,
जो मुझे पहले ही करनी थीं लेकिन संकोचवश नहीं किया।
तुम जान कर हैरान होओगे कि सारे जैन मुनि, इस देश में एक ऐसा जैन मुनि नहीं है और जैन साध्वी नहीं है, जिसने मेरी किताबें न पढ़ी हों। उसे पढ़नी ही हैं। चोरी से पढ़ता है, चोरी से बुला कर पढ़ता है, छिपा कर पढ़ता है। शास्त्रों में दबा लेता है, ऊपर से शास्त्रों के कवर चढ़ा लेता है। मगर यह कैसा अजीब वातावरण है जहां साधु इतना भी मुक्त नहीं है कि अध्ययन कर सके! साधना की तो बात दूर, अध्ययन-मनन करने को भी मुक्त नहीं है! यह साधु हुआ या परतंत्र हो गया, कैदी हो गया?
मैं तुमसे कहता हूंः ये कैदी हैं--ये तुम्हारे आचार्य, ये तुम्हारे मुनि, ये तुम्हारे महाराज, ये कैदी हैं। और कैदी हैं दो रोटी के। सस्ते में इन्होंने अपनी आत्मा बेची है। मगर इनकी अड़चन यह है कि अब जाएं तो जाएं कहां! प्रतिष्ठा, सम्मान, सत्कार, वह मिल ही इसलिए रहा है। और मेरी किताबें पढ़ने के लिए दो जरूरी बातें हैं, उनको पढ़नी इसलिए पड़ती हैं, क्योंकि बहुत से मेरे लोग हैं, हजारों की संख्या में लोग मुझे पढ़ रहे हैं, वे जा-जा कर सवाल खड़े करते हैं, उनके जवाब भी कहां से दें! और पढ़नी इसलिए भी पड़ती हैं कि उन्हीं को पढ़-पढ़ कर तो इनको रोज प्रवचन देने हैं, नहीं तो ये प्रवचन कहां से दें! इनके पास अपनी कोई पूंजी नहीं। इनके पास अपना कोई जलस्रोत नहीं, अपनी कोई अनुभूति नहीं। ये सब उधार जी रहे हैं। इतनी मूर्च्छित इनकी दशा है कि दयायोग्य है।
चंडूखाने में तीन अफीमची बैठे अफीम पी रहे थे। उनमें से एक बोलाः चलो
आज एक खेल खेलते हैं। कुछ देर बाद हम तीनों में से एक उठ कर घर चला जाए, बाकी दो को यह पता लगाना होगा कि तीनों में से कौन सा घर गया है? अफीमची ऐसे खेल खेल सकते हैं। अफीमचियों की अपनी दुनिया है। वहां यही पता लगाना मुश्किल होता है कि कौन कौन है।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन हज की यात्रा को गया। हाजी होने की बड़ी इच्छा थी। किस मुसलमान की नहीं होती! बड़ी भीड़-भाड़ थी वहां। बमुश्किल ही धर्मशाला में जगह मिली, वह भी बहुत हाथ-पैर जोड़ कर। मगर मैनेजर ने कहा कि जगह तो दे देते हैं लेकिन एक अड़चन हैः एक ही बिस्तर पर एक दूसरे आदमी के साथ सोना पड़ेगा। उसको भी मुफ्त जगह दी है, इसलिए वह अड़चन नहीं डाल सकता। लेकिन सोना पड़ेगा दोनों को एक ही बिस्तर में, जगह और है नहीं।
नसरुद्दीन ने कहाः यह तो बड़ी झंझट की बात है। मगर खैर कोई बात नहीं, कोई रास्ता निकाल लेंगे। गया। अपनी टोपी लगाए, जूता पहने, कपड़े पहने और लेटने लगा बिस्तर पर, तो वह दूसरा आदमी बोला कि भाईजान, वैसे ही दिक्कत होगी दो आदमियों के एक बिस्तर में सोने में, मगर मैं भी मुफ्त इसलिए कुछ कह सकता नहीं, नहीं तो वह मैनेजर निकाल बाहर करेगा, मगर आप कृपा करके टोपी, कोट, जूता तो कम से कम निकाल ही दें! नहीं तो कैसे आपके साथ सोऊंगा? नसरुद्दीन ने कहाः यह तुम बात ही मत उठाना। ये मैं उतार ही नहीं सकता, क्योंकि मैं ये उतार दूं तो सुबह मैं पहचानूंगा कैसे कि कौन कौन है? इन्हीं की वजह से तो मुझे पहचान रहती है कि यह मैं ही हूं। जब दर्पण के

सामने खड़ा देखता हूं--वही टोपी, वही कोट, वही जूता, सब वही--तो मैं निश्चिंत रहता हूं कि मैं वही हूं।
वह आदमी को जरा मजाक सूझा कि यह आदमी तो बड़ा अजीब सा दिखता है। उसने कहाः एक काम करो, इन सबको उतार दो। इस कमरे में पहले लोग ठहरे होंगे, उनका बच्चा रहा होगा, दिखता है फुग्गा छोड़ गया है एक। वह पड़ा है कोने में फुग्गा फूला हुआ। उसको हम तुम्हारी टांग में बांध देते हैं। सो सुबह तुम्हें जब टांग में फुग्गा बंधा हुआ मिले, समझ जाना यह तुम्हीं हो।
नसरुद्दीन ने कहाः यह बात तुमने अच्छी बताई, क्योंकि मैं भी दिक्कत में था कि टोपी, कोट, जूता पहने नींद कैसे आएगी! एक तो एक आदमी के साथ सोना, फिर ऊपर से सब कपड़े पहने सोना। यह अच्छी तुमने तरकीब बताई। सब उतार कर कपड़े... ।
और जब नसरुद्दीन ने कपड़े उतारे तो बिल्कुल ही उतार दिए। दिगंबर होकर पैर में फुग्गा बांध कर सो रहा। उस दूसरे आदमी को रात मजाक सूझा, उसने आधी रात को उठ कर फुग्गा खोल कर अपने पैर में बांध लिया और सो रहा। सुबह नसरुद्दीन उठा, उसने क्या हू-हुल्लड़ मचाया! नंग-धड़ंग भागा बाहर! भीड़ इकट्ठी कर ली और पूछने लगा कि बड़ी मुश्किल खड़ी हो गई। मैनेजर को बुलाओ। अब कैसे तय हो? यह तो पक्का है कि नसरुद्दीन वह दूसरा आदमी है, जिसके पैर में फुग्गा बंधा है; लेकिन मैं कौन हूं, यह कुछ पता नहीं चल रहा। जिसके पैर में फुग्गा है वह नसरुद्दीन है, यह बात तय है; मगर फिर मैं कौन हूं?
तुम्हारी पहचानें भी बस इसी तरह की हैं। मुंह पर पट्टी बांध कर कोई आ गया--एकदम महाराज जैन मुनि आ रहे हैं। जरा मुंह पर से पट्टी निकाल लो, बात खत्म, खेल खत्म! बात गई। मुंह-पट्टियां भी कई तरह की होती हैं। स्थानकवासी की अलग ढंग की होती है और तेरापंथी की अलग ढंग की होती है। किसी की चौड़ी, किसी की संकरी। चौड़ी बांध लो तो गए, संकरी बांधी तो पहुंचे। दूसरे के हिसाब से संकरी बांधी तो गए, चौड़ी बांधी तो पहुंचे। क्या-क्या खेल बना रखा है! क्या ऊलजलूल खेल बना रखे हैं! और इन खेलों को साधना समझा जा रहा है। ये सब मूर्च्छाएं हैं, और कुछ भी नहीं।
एक व्यक्ति चंडूखाने के पास से गुजर रहा था कि एक अफीमची बाहर निकला
और उस व्यक्ति से पूछने लगाः भाई, क्या बता सकते हैं इस समय टाइम क्या है? अफीमची ने कहाः तीन बजे हैं।
दोनों अलग-अलग दिशाओं में कुछ कदम चले कि अफीमची जोर से चिल्लाया कि रुको भाई रुको! यह तो बताओ कि आज आज है कि कल? समय तो तीन बजा है, यह तो पक्का है, घड़ी में साफ है; मगर मेरी घड़ी में दिन का कैलेंडर नहीं है, तो मैं यह पूछना चाहता हूं कि आज आज है कि कल?
क्या आध्यात्मिक प्रश्न पूछा उसने भी! अब बैठे पंडित और विचार करें
कि आज आज है कि कल। मगर इसी तरह के ऊहापोह में पड़े हैं--सृष्टि को किसने बनाया, क्यों बनाया? पहले क्यों नहीं बनाया, उसी दिन क्यों बनाया? इतने दिन तक परमात्मा क्या करता रहा? फिर उसमें संसार को बनाने की वासना क्यों उठी?
जैनों को तो बड़ी दिक्कत है, क्योंकि परमात्मा में वासना नहीं होनी चाहिए। चूंकि परमात्मा में वासना नहीं होनी चाहिए, इसलिए जैन नहीं मानते कि परमात्मा ने सृष्टि को बनाया। तो फिर सृष्टि कैसे बनी? अपने आप बनी? अब उनको और झंझट खड़ी होती है कि अपने आप चीजें बन कैसे गईं! अपने आप एक घड़ी तो बन जाए। तुम रेगिस्तान में चले जा रहे हो और तुम्हें एक घड़ी पड़ी मिल जाए, क्या तुम सोच भी सकोगे कि यह अपने आप बन गई होगी पड़े-पड़े-पड़े-पड़े, रेत इस तरह होते-होते हजारों-लाखों सालों में घड़ी बन गई होगी? कांटे बन गए होंगे, टाइम बताने लगी होगी, टिकटिकाने लगी होगी? अगर घड़ी नहीं बन सकती अपने आप तो इतना नाजुक जीवन कैसे निर्मित हो गया है? और किस व्यवस्था से चल रहा है! फिर यह सृष्टि क्यों? प्रयोजन? लक्ष्य? फिर आत्माएं अगर बनी नहीं तो आईं कहां से? तो जैनों को एक सिद्धांत खोजना पड़ाः निगोद से आईं। निगोद का अर्थ हैः एक ऐसा अंधकार-लोक, जहां अनंत आत्माएं पड़ी हैं, फिर धीरे-धीरे निगोद से छूटती जाती हैं और संसार में आती-जाती हैं। मगर निगोद कहां से आया? और निगोद में ये अनंत आत्माएं क्यों पड़ी हैं और कब से पड़ी हैं? और कुछ

ही क्यों छूटती हैं? और अनंत पड़ी ही रहती हैं! अनंत तो रखनी ही पड़ेंगी वहां, नहीं तो एक दिन धीरे-धीरे निगोद खत्म! निगोद खत्म तो संसार खत्म! इधर संसार में लोग मोक्ष पाते जाएंगे धीरे-धीरे और निगोद से कोई आएगा नहीं, बस्ती उजड़ती जाएगी, उजड़ती जाएगी। फिर जैन मुनि क्या करेगा? फिर जैन शास्त्रों का क्या होगा? और फिर "विश्व जैन भारती" का क्या होगा? सब मामला ही गड़बड़ हो जाएगा। तो इधर मोक्ष है, अनंत आत्माएं मुक्त हो चुकी हैं! अब जरा मजा देखना अनंत आत्माएं मुक्त हो चुकी हैं, मोक्ष में जा चुकी हैं! अब ये लौट नहीं सकतीं। और अनंत आत्माएं निगोद में पड़ी हैं, उनको मुक्त होना है। वे होती रहें मुक्त, कभी खतम नहीं होंगी!
यह सारा खेल अफीमचियों की बकवास मालूम होती है। क्यों सीधे-सीधे स्वीकार नहीं करते कि हमें पता नहीं? क्या जरूरी है कि तुम्हें सब पता हो? और मैं तुमसे यह कहता हूंः आत्मज्ञान से इनका कोई संबंध नहीं। मुझे आत्मज्ञान हुआ, न मुझे निगोद का पता चला, न मुझे यह पता चला कि ईश्वर ने संसार बनाया, कब बनाया, क्यों बनाया? स्वयं को जाना--एक परम संतुष्टि, एक परम आनंद, एक परम आलोक फैल गया! कुछ पूछने को न रहा, कुछ जानने को न रहा। मगर इन फिजूल की बातों को ज्ञान समझा जाता है। अगर धर्मतीर्थ तुम पूछते हो ऐसी बातें, तो जरूर इन लोगों को बहुत आती हैं। वे तुम इन्हीं से पूछ लेना। मगर कोई इन्हें आध्यात्मिक अनुभव नहीं है। आध्यात्मिक अनुभव तो इन सारी बातों से छुटकारा दिला देता है। ये सब अंधेरे में टटोलते हुए लोग हैं। और एक से एक कल्पनाएं कर रहे हैं। और एक से एक सुझाव दे रहे हैं। एक से एक समाधान खोज रहे हैं। और मैं तुमसे कहता हूंः सिवाय समाधि के और कोई समाधान नहीं है। और जिसको समाधि उपलब्ध नहीं हुई, उसके सब समाधान बचकाने हैं, खतरनाक हैं; उससे सावधान रहना।
संथाल परगना आदिवासियों का क्षेत्र है। एक दिन इस क्षेत्र में एक बड़े नेता का आगमन हुआ। नेताजी लोगों को समझाने लगेः हमारे देश की जनसंख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती जा रही है। आप लोगों को जानना चाहिए कि किसी न किसी स्थान में एक स्त्री हर मिनट पर एक संतान उत्पन्न कर रही है।
भीड़ को चीर कर एक भोला सा व्यक्ति सामने आया और नेताजी से कहने लगाः महाशय, क्यों न उस स्त्री को तुरंत मार दिया जाए। एक बारगी में सफाया कर दो! क्या सरल तरकीब उसने निकाली! मगर बेचारा आदिवासी और क्या कर सकता है! वह यही समझा कि एक स्त्री किसी न किसी स्थान में हर मिनट एक बच्चे को जन्म दे रही है, वही उपद्रव का कारण है। उस स्त्री को क्यों नहीं खत्म कर देते? नाहक इतना संतति-नियमन समझा रहे हो और इतना उपद्रव कर रहे हो, लोग भूखे मर रहे हैं! उस स्त्री को खत्म कर दो। बात तो उसने पते की कही। मगर अज्ञान में बस बात इस तरह की ही हो सकती है।
तुमने यह भी पूछा कि "यद्यपि तुलसी कहते हैं कि आपका साहित्य कोई न पढ़े; लेकिन जैन साधु एवं साध्वी मेरे यहां ठहरते हैं तो आपकी पुस्तकें पढ़ते हैं, टेप सुनते हैं और आपसे प्रभावित हैं।"
लेकिन ये बेचारे कैदी हैं। इनको सहायता दो। और जैसे ही हमारा बड़ा कम्यून निर्मित हो जाता है, इनको मुक्त करो। जितने जैन साधु-साध्वियों को, हिंदू संन्यासियों को, महंतों को, संतों को, जितनों को मुक्त कर सकते हो मुक्त करो। ये सड़ रहे हैं। इनकी आत्मा के विपरीत ये वहां अटके हुए हैं। लेकिन कहां जाएं अब, क्या करें अब? संसार में लौटें तो अपमान होता है। वह ऐसा लगता है जैसे थूका और फिर चाटा। वह जरा बेहूदा लगता है। और लोग मजाक उड़ाएंगे कि अरे बड़े संन्यास लिए थे, बड़ा सब छोड़ कर चले गए थे, अब कैसे लौट आए? भूल गई चौकड़ी? आ गई अक्ल? और हमें भी समझा रहे थे। खुद ने भी पूंछ कटा ली थी, हमारी भी कटवाने फिर रहे थे। अब कैसे वापस लौटे? किस मुंह से वापस लौटे?
हिंदुओं के कोई पचास-साठ लाख संन्यासी हैं भारत में। और मैं कितने लोगों को मिला हूं! बीस वर्षों की यात्राओं में हजारों संन्यासियों से मिला हूं। और सब पीड़ित हैं और परेशान हैं। छूटना चाहते हैं। संसार से छूट गए, कुछ पाया नहीं; अब ये संन्यास से छूटना चाहते हैं, मगर अब जाएं कहां? इनके लिए विकल्प मैं खोज रहा हूं। बस इतनी ही शर्त इनको समझा देना कि जब

मेरे जगत में प्रवेश करो तो अपने संस्कारों को बाहर ही छोड़ आना। तुम्हारे संस्कारों को लेकर भीतर प्रवेश नहीं हो सकता है। तुम अगर अपने संस्कार छोड़ने को राजी हो तो मैं तुम्हें तुम्हारे कारागृह से मुक्त कर सकता हूं। मैं एक मुक्त आकाश दे सकता हूं, जहां तुम खिलो, फूलो; भूमि दे सकता हूं, जहां तुम्हारे बीज पड़ें, जहां तुम्हारे जीवन में हरियाली आए; जहां तुम पहली बार अनुभव करो जीवन का अर्थ, गरिमा, गौरव; जहां तुममें भी चांद-सितारे जुड़ जाएं!
और मेरे संन्यासियों को इस कार्य में लगना होगा, क्योंकि इन साधु- साध्वियों में कई भले लोग हैं, सीधे लोग हैं, अच्छे लोग हैं--जो इसीलिए उलझ गए हैं कि भले हैं, सीधे-सादे हैं और जिन्होंने सोचा कि संसार में दुख है तो चलो आनंद की तलाश में। और आनंद की तलाश के नाम पर ऐसी जंजीरों में जकड़ गए हैं कि संसार से छूटना भी आसान था, अब इस संन्यास से छूटना मुश्किल पड़ रहा है उन्हें।
मैं संन्यास की एक नई अवधारणा को जन्म दे रहा हूं, जिसमें संसार को छोड़ना नहीं है, बल्कि संसार को जीने की एक नई कला सीखनी है। यूं जीयो संसार में जैसे कमल जल में जीता है। रहे जल में और जल छुए भी नहीं। इसके अतिरिक्त संन्यास की सब धारणाएं व्यर्थ हैं।

दूसरा प्रश्नः ओशो, कल कुछ बैंगलोर के उद्योगपति आश्रम देखने परिवार सहित आए। उन्हें घूम कर आश्रम दिखाया। बाद में दूसरे दिन वे अकेले प्रवचन सुनने आए। मुझे देखते ही हाथ पकड़ कर कहा कि चलो आप भी प्रवचन सुनने। मैंने कहाः मैं बाद में आऊंगी। प्रवचन पूरा हुआ तो वे तुरंत आए और कहा कि मुझे किस चाहिए। मैंने बड़ी-बड़ी आंखें दिखा कर कहाः क्या कहा? तो तुतलाए कि कैसेट चाहिए।

रंजन भारती! ऋषि-मुनियों का यह देश है! यहां ऋषि-मुनि यही करते रहे सदियों से। यहां के सारे पुराण अनीति से भरे पड़े हैं, अश्लील हैं। यहां के सारे धर्मग्रंथ अशोभन हैं। और मजा तो यह है कि इन्हीं धर्मग्रंथों के आधार पर भारत अपनी सच्चरित्रता, अपनी धार्मिकता, अपने सदाचरण का ढोल पीटता है। और ढोल में बड़ी पोल है--ऊपर कुछ, भीतर कुछ।
इस तरह के लोग दया योग्य भी हैं, सजा योग्य भी। इस तरह के लोगों को देख
कर हंसी भी आती है और रोना भी। और रंजन को तो इस तरह के लोगों से रोज मिलना होता है, क्योंकि उसका काम है लोगों को आश्रम दिखाना। रंजन मुझे अक्सर लिख कर भेजती है कि क्या किया जाए इन लोगों के साथ? आते तो हैं आश्रम देखने, मगर मौका मिल जाता है तो रंजन को धक्का ही दे देते हैं, च्यूंटी ले देंगे। आए हैं आश्रम देखने। नेता हैं, शुद्ध खादीधारी हैं, गांधीटोपी लगाए हुए हैं, उद्योगपति हैं, धनपति हैं--आए हैं आश्रम देखने और रंजन को प्रेमपत्र भेजने लगेंगे।
दो बातें ख्याल रखनी जरूरी हैं। एक तो भारत का चित्त बहुत दमित है। दमित है और इतना ईमानदार भी नहीं कि कह सके कि हम दमित हैं। दमित है और ऊपर से आवरण थोपा हुआ है कि हम बड़े सच्चरित्र हैं। स्त्रियों के प्रति भारत के मन में कोई सदभाव नहीं है, कभी नहीं रहा। छोटे-छोटे लोगों की छोड़ दो, बड़े- बड़े लोगों को भी नहीं रहा। स्त्री तो पैर की जूती है! उसका जैसा चाहो वैसा उपयोग करो!
राम जैसे व्यक्ति ने भी युद्ध किया तो कोई भी सोचेगा कि युद्ध सीता के लिए किया। मगर तुम गलती में हो। वाल्मीकि रामायण में--जो कि ज्यादा प्रामाणिक है तुलसी से, क्योंकि पहले लिखी गई... वाल्मीकि रामायण में, जब सीता को जीत लिया जाता है वापस और राम सीता को अपने खेमे में ले आते हैं, रावण पराजित हो गया, समाप्त हो गया, तो जो पहले वचन राम ने कहे हैं, वे बड़े अभद्र हैं। वे इतने बेहूदे हैं कि हैरानी होती है कि राम से और ऐसे वचन कैसे निकले होंगे! मगर निकले ही होंगे, क्योंकि वाल्मीकि जैसा भक्त राम का लिख रहा है, तो ठीक ही लिख रहा होगा। राम ने सीता से कहा कि ऐ स्त्री, ऐ औरत, तू यह मत समझना कि युद्ध मैंने तेरे लिए किया है। यह युद्ध तो किया है कुल

की मर्यादा के लिए। यह तो प्रतिष्ठा का सवाल था। तू तो सिर्फ बहाना थी प्रतिष्ठा का।
क्या अभद्र बात कही! स्त्री सिर्फ बहाना थी, असली सवाल था कुल-मर्यादा, वंश-परंपरा, प्रतिष्ठा राज्य की, सदियों-सदियों से पुरखों की! इस गरीब स्त्री से कुछ लेना-देना नहीं है। और फिर इस गरीब स्त्री पर जोर-जबरदस्ती डाली कि वह अग्नि से गुजरे, परीक्षा दे। लेकिन हमारे मापदंड हमेशा दोहरे रहे। राम में अगर थोड़ी भी मनुष्य के प्रति सम्मान की दृष्टि होती तो वे स्वयं भी आग से गुजरते, क्योंकि अगर कुछ वर्षों तक सीता रावण के खेमे में रही थी, अकेली रही थी, तो राम भी तो अकेले रहे थे। अगर सीता किसी पुरुष के साथ संबंधित हो सकती थी तो राम भी किसी स्त्री के साथ संबंधित हो सकते थे।
और मेरे एक मित्र, प्रोफेसर नावलेकर ने एक अदभुत किताब लिखी हैः ए न्यू एप्रोच टु रामायणा। और उसमें यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि शबरी बूढ़ी औरत नहीं थी; सुंदर आदिवासी जवान स्त्री थी। और राम और उसके बीच लगाव था।
नावलेकर को बहुत गालियां पड़ीं। किताब उनकी इस तरह छिप गई कि कहीं पढ़ी
ही नहीं गई। छपी भी तो भी बिकी नहीं। कौन खरीदेगा ऐसी किताब! और नावलेकर ने बात बड़ी मेहनत की खोजी है और बड़े प्रमाणों से सिद्ध की है। मैं नहीं कहता कि सही है या गलत, लेकिन एक बात तो तय है कि तुम दोनों अलग-अलग रहे थे वर्षों तक, तो अगर सीता को अग्नि-परिक्षा से गुजार रहे हो तो वही नियम स्वयं पर भी लागू होना चाहिए। दोनों गुजर जाते साथ ही साथ, जैसे भांवर पड़ी थी साथ ही साथ, साथ ही साथ आग से गुजर जाते। मगर सीता आग से गुजरी, सीता की तो अग्नि-परीक्षा हुई और राम की कोई अग्नि-परीक्षा नहीं। हम कहते हैंः पुरुष की बात ही और! मर्द बच्चा! स्त्रियों का क्या ठिकाना। स्त्रियों का क्या भरोसा! इनकी कोई इज्जत थोड़े ही है।
हर स्त्री के प्रति हमारी दृष्टि ऐसी है जैसे वह वेश्या है। और अग्नि- परीक्षा के बाद भी राम ने जो दुर्व्यवहार किया सीता के साथ, भारत में किसी ने उसकी निंदा नहीं की। फिर सीता का परित्याग कर दिया। एक धुब्बड़ के कहने से! और अग्नि-परीक्षा किसलिए ली थी फिर? मगर एक धोबी की औरत रात भर घर नहीं आई और उसने सुबह कहा कि तू यह मत समझना कि मैं राम जैसा हूं कि सालों सीता नदारद रही और फिर भी उसको स्वीकार कर लिया। मैं ऐसा नहीं हूं। ये घर के द्वार तेरे लिए बंद। तू कहां रही रात भर?
बस इतनी बात काफी हो गई।
अग्नि-परीक्षा के बाद भी सीता का परित्याग कर दिया--गर्भवती सीता को! उससे कहा भी नहीं। उसे झूठा धोखा देकर जंगल में छुड़वा दिया।
हमारास्त्री के साथ बड़ा दुर्व्यवहार रहा है।
पांचों पांडवों ने एक ही स्त्री को बांट लिया। दिन बांट लिए, जैसे स्त्री न हुई कोई सामान हुआ, कि आज तुम उपयोग कर लेना, कल मैं उपयोग कर लूंगा, परसों तीसरा उपयोग कर लेगा! स्त्री न हुई, यह तो वेश्या ही हो गई फिर। पांच भाइयों ने हिसाब बांट लिया कि पांचों उपयोग कर लेंगे, ताकि भाइयों में कोई झगड़ा न खड़ा हो। यह दुर्व्यवहार जारी रहा है।
एक ऋषि ने अपने बेटे को कहा कि जाकर मां की गर्दन काट आ, तो वह मां की गर्दन काट लाया। बाप की आज्ञा ज्यादा मूल्यवान है मां की गर्दन से! बड़ी हैरानी की बात है।
बाप बिल्कुल आदमी की ईजाद है। मां प्राकृतिक है। एक जमाना था जब बाप नहीं होते थे और एक जमाना फिर आएगा जब बाप नहीं होंगे। बाप संस्था है, लेकिन मां संस्था नहीं है। मां नौ महीने तुम्हें पेट में रखती है, फिर वर्षों तुम्हें बड़ा करती है। बाप का काम ही क्या है? एक इंजेक्शन कर सकता है वह काम जो बाप करता है। बस बाप की उतनी कीमत समझो जितनी इंजेक्शन के सिरिंज की होती है, इससे ज्यादा नहीं। सिरिंज ने कह दिया कि मां की गर्दन काट आओ और चले! और मां की गर्दन काट आए! क्योंकि पुरुष की प्रतिष्ठा है। पुरुष की आज्ञा, पुरुष का बल! स्त्री की क्या कीमत है! वह तो पैर की जूती है! जैसा चाहो वैसा उसके साथ उपयोग करो!

ये अजीब लोग थे, मगर ये लोग इस देश की आधारशिलाएं रख गए हैं और ये अजीब-अजीब बातें समझा गए हैं। पुरुष का पूरा का पूरा कब्जा स्त्री को दे गए हैं। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि स्त्रियों ने इनसे छिपे रास्ते से बदला लेना शुरू किया, जो कि अनिवार्य था। आखिर स्त्री के भीतर भी आत्मा है! तो भारत का जो दांपत्य-जीवन है, उसमें सुख नाममात्र को नहीं है।
मैं हजारों जोड़ों से परिचित हूं, लेकिन मुश्किल से दो-तीन जोड़ों को मैं जानता हूं जिनके जीवन को मैं कह सकता हूं कि वहां सुख है। करोड़ों दंपतियों के जीवन में कोई सुख नहीं है। हालांकि हम कहते हैंः दांपत्य सुख। कहना चाहिएः दांपत्य दुख। यह सुख शब्द बिल्कुल झूठा है। अपवाद को नियम नहीं बनाना चाहिए। कभी संयोगवशात दो व्यक्तियों के बीच ऐसा संबंध बन जाता है--संयोगवशात। न तो ज्योतिषी मिला सकते हैं यह संबंध, न तारे मिला सकते हैं, न हाथ की रेखाएं मिला सकती हैं, न कोई भविष्यवाणियां मिला सकती हैं--बस संयोगवशात। क्योंकि हमने प्रेम को तो मूल से ही काट दिया है। इस प्रेम को काट देने का परिणाम यह हुआ कि वेश्या अनिवार्य हो गई। पुरुष ने अपने लिए इंतजाम कर लिया कि वह वेश्या के पास जाने लगा। इधर सदगृहस्थ भी बना रहता है, वहां वेश्या को भी पैसे से खरीदता रहता है। लेकिन इस सबका अनिवार्य परिणाम जो होना था हुआ; वह यह हुआ कि स्त्री क्रोध से भर गई और उसके क्रोध का हर जगह से विस्फोट होने लगा।
तूने लिखा रंजन कि ये बैंगलोर के उद्योगपति आश्रम देखने आए सपरिवार। सपरिवार आए तो तुझे धक्का नहीं दे पाए, तुझसे चुंबन नहीं मांग पाए, तेरा आलिंगन नहीं कर पाए, दूर-दूर रहे होंगे, बड़े भले संत-साधु मालूम हुए होंगे, क्योंकि पत्नी जो मौजूद थी। पत्नी की मौजूदगी में पुरुष बिल्कुल पूंछ दबाया हुआ कुत्ते जैसा हो जाता है। होना ही पड़ता है, क्योंकि पत्नी के साथ उसने जो दुर्व्यवहार किया है, उसका एक ही बदला पत्नी ले सकती है कि उसको जहां मौका मिल जाए वहां इसकी गर्दन दबाए।
नसरुद्दीन चंदूलाल से कह रहा थाः अरे चंदूलाल, अरे उल्लू के पट्ठे, तो
तू अपनी पत्नी को छोड़ कर भाग आया! अरे भगोड़े कहीं के! शर्म खा, चुल्लू भर पानी में डूब मर!
चंदूलाल ने कहा कि नसरुद्दीन, मत ऐसी बातें करो, मत मुझे तीख चढ़ाओ, मत मुझे जोश दिलाओ। तुम मेरी पत्नी को नहीं जानते। अगर तुम मेरी पत्नी को जानते होते तो कभी तुम ऐसा न कहते। मैं भगोड़ा नहीं हूं, शरणार्थी हूं!
एक पुलिस आफिसर एक स्त्री से कह रहा थाः देवीजी, हम आपके साहस की प्रशंसा करते हैं। आपने चोर पर हमला किया, वह भी अंधेरे में! और उसकी ऐसी ठुकाई-पिटाई की कि हड्डी-पसली तोड़ डाली!
उस महिला ने कहाः जी, बात ऐसी है कि मुझे मालूम नहीं था कि वह चोर है। अंधेरे में दिखाई नहीं पड़ा। मैंने तो समझा कि मेरा पति है।
सरहद पर एक कार रुकी। कस्टम आफिसर ने पासपोर्ट तथा अन्य सामान चेक करने के बाद पूछाः बड़े मियां, बाकी सब तो ठीक है, परंतु यह कैसे साबित होगा कि यह स्त्री आपकी पत्नी ही है?
इस पर मुल्ला नसरुद्दीन ने अपनी पत्नी कोदेखा और कस्टम अधिकारी से बोलाः अगर आप यह साबित कर दें कि यह मेरी पत्नी नहीं है, तो मैं आपको सौ रुपये इनाम देने को अभी राजी हूं। है कोई माई का लाल जो साबित कर दे कि यह मेरी पत्नी नहीं है? उसी की मैं तलाश में घूम रहा हूं!
पत्नियों से पति डरते हैं, कंपते हैं। कारण पत्नी नहीं है, कारण पति
ही हैं। इन्होंने जो दुर्व्यवहार किया है सदियों-सदियों से, उससे इनको कंपना ही पड़ता है। इनके कंपन में इनका दुर्व्यवहार ही है।
ढब्बू जी चंदूलाल से कह रहे थेः भाई, तुम अपनी पत्नी से लड़ा मत करो, क्योंकि पति-पत्नी गृहस्थी रूपी गाड़ी के दो पहियों के समान होते हैं। चंदूलाल ने कहाः यह बात तो ठीक है ढब्बू जी। परंतु जब एक पहिया ट्रैक्टर का हो और दूसरा साइकिल का, तो बताओ गाड़ी कैसे चले?
मगर यही हालत है। तुम्हें पत्नी कैसे मिली, पति कैसे मिला? कोई मूर्ख पंडित तुम्हारी जन्मपत्री देख कर हिसाब बिठाता है, कि तुम्हारे मां-बाप तय करते हैं--कौन सा परिवार प्रतिष्ठित है, कहां से धन ज्यादा मिलेगा, कहां

से दहेज ज्यादा मिलेगा? कैसी-कैसी अजीब बातों से तय हो रहा है विवाह! फिर इस विवाह में प्रेम के फूल नहीं खिलते। नहीं प्रेम के फूल खिलते तो दमित वासना सब तरफ से बह निकलना चाहती है। तो गंदी किताबें लोग पढ़ते हैं, अश्लील साहित्य पढ़ते हैं, अश्लील फिल्में देखते हैं। और जब मौका मिल जाए, जहां मौका मिल जाए। मंदिर जाते हैं, जाते हैं पूजा को, मगर वस्तुतः देते हैं धक्का स्त्रियों को। रामलीला देख रहे हैं, मगर रामलीला से उन्हें कोई मतलब नहीं है; वे अपनी लीला में संलग्न हैं।
जहां तुम देखो, पुरुष स्त्री के साथ दुर्व्यवहार कर रहा है। लेकिन अभी भी हमें इतना होश नहीं कि हम इस सत्य को ठीक से समझ पाएं और इसकी मूल जड़ को पहचानें और मूल जड़ को काटें।
तो वे बेचारे... रंजन, उन पर दया करना, क्रोध मत करना। पत्नी को छोड़ कर दूसरे दिन आए होंगे। देखा होगा, सुंदर युवती है रंजन... और यहां मेरे संन्यासियों में तो सुंदर ही सुंदर लोग हैं। सच तो यह है कि मेरा जो संन्यासी हुआ, संन्यासी होते ही सुंदर हो जाता है। आखिर मुक्ति सौंदर्य लाती है, प्रसाद लाती है, एक लावण्य लाती है, जीवन को एक नई ऊर्जा देती है, एक नई चमक, एक नई दमक, एक नई गंध! भीतर कुछ दीया जलने लगता है, उसकी किरणें बाहर भी फूटने लगती हैं।
और फिर इस आश्रम के संबंध में जो अफवाहें उड़ाई गई हैं, तो सोचा होगा उद्योगपति ने कि यहां आश्रम में तो मुक्त जीवन-व्यवहार है, स्वच्छंद आचरण है, चलो रंजन से थोड़ा प्रेम प्रकट कर आएं! तो बेचारे आ गए। क्रोध मत करना उन पर। जब अब दुबारा तुमसे कोई किस मांगे, तो संत महाराज को किसलिए बिठा रखा है बाहर? फौरन संत को आवाज दिए कि इनको एक किस दो! और संत ऐसा पंजाबी किस देगा कि वे जीवन भर नहीं भूलेंगे, कि कम से कम उनकी हड्डियां चरमरा जाएं, दो-चार पसलियां टूट जाएं कि यहां से सीधे अस्पताल जाएं, और कहीं जा ही न सकें। और यहां तो आश्रम में कितने कराटे के जानकार हैं, समुराई हैं, अकीदो के पहचानने वाले हैं। अगर एक किस से उनकी तबीयत न मानती हो तो चार-छह बुला लिए इकट्ठे कि चारों तरफ से किस दे दो इनको, हर दिशा से इनको ऐसा किस दो कि जीवन भर के लिए फिर कभी किस का इनको ख्याल ही न उठे। जिसको अंग्रेजी में कहते हैं न--किस ऑफ डेथ! मृत्यु का चुंबन! इनको चखा ही दो। और इनको कहना कि आते-जाते रहें, ऐसा न करना कि अब न आओ; अगली बार आओगे तो और भी बड़ा किस दिलवाएंगे। तब तक हमारे संत और डंड-बैठक लगा कर तैयार हो जाएंगे।
ये बेचारे लोग बचकाने हैं। इनके बाल धूप में पके हैं।

यही जज्बात हर एक दिल में भड़क सकते हैं
तेरे आंसू तेरी आंखों से टपक सकते हैं।

गम से लबरेज है दिल, अश्क से आंखें मायूर
ये भरे जाम किसी वक्त छलक सकते हैं।

बात कहनी हो अगर सख्त भी नरमी से कहो
लफ्ज कांटों की तरह दिल में खटक सकते हैं।

जगमगाने पर न इतराएं सितारों से कहो
रोशनी पाएं तो जर्रे भी चमक सकते हैं।

अक्ल की उम्र से निस्बत हो जरूरी तो नहीं
बाल फसलों की तरह धूप में पक सकते हैं।

कहिए अश्कों की जबां में गमे दिल आज "शमीम"
सूख सकता है गला, लफ्ज अटक सकते हैं।

तूने रंजन, उनका गला सुखा दिया। बोल रहे थे बेचारे किस और कहना पड़ा कैसेट। वैसे इससे एक लाभ हुआ। अब यह तू ख्याल रख कि कैसेट बेचने की अच्छी

तरकीब मिली। कोई न भी कहे किस, तो एकदम धमकी दे दीः तूने किस कहा कि कैसेट? और जोर से बोलेगी तो घबड़ाहट में कह ही देगा कि कैसेट। फौरन कैसेट बिकवा दिया। कोई किस कहे कि न कहे रंजन, मौका पाकर एकदम से पकड़ लिया कि तुमने क्या कहा, किस कि कैसेट? किस तो वह कह ही नहीं सकता कि अब पिटे, वह कहेगा ही कैसेट। विकल्प ज्यादा देना ही मत।
अगर जर्मनी तुम जाओ तो वहां का बैरा तुमसे पूछेगाः चाय लेंगे? लेकिन जापान अगर जाओ तो जापान का बैरा यह नहीं पूछता कि चाय लेंगे; जापान का बैरा पूछता हैः चाय लेंगे या कॉफी? तुम फर्क समझते हो? मनोवैज्ञानिक रूप से बड़ा फर्क हो गया। जर्मनी में जब कोई पूछता है कि चाय लेंगे तुम चाहो तो नहीं कह सकते हो, सीधा विकल्प यह है--हां या नहीं। अगर लेना है तो हां, नहीं लेना है तो नहीं। लेकिन जापानी बैरा ज्यादा मनोवैज्ञानिक बात पूछ रहा है। वह यह पूछ रहा है... वह हां या नहीं का तो मौका ही नहीं दे रहा है तुम्हें, इतना अवसर ही नहीं दे रहा है; वह कह रहा है कि चाय लेंगे या कॉफी? और अक्सर इस बात की संभावना है कि तुम या तो कहोगे चाय या कॉफी; तुम शायद ही इस बात को कह सकोगे कि मुझे कुछ नहीं लेना, मुझे लेना ही नहीं। नहीं का तो वह मौका ही नहीं दे रहा है तुम्हें। वह तो सिर्फ विकल्प दे रहा है चाय और कॉफी का। और जर्मन बैरा तुम्हें विकल्प दे रहा है नहीं और हां का।
तो थोड़े मनोविज्ञान को उपयोग किए। यह तो अच्छी तरकीब तेरे हाथ लगी।
और भी जितनी स्वागत-कक्ष में महिलाएं हैं, उन सबको समझा दे कि जब भी मौका एकांत का मिल जाए, एकदम चिल्ला दिए कि तुमने क्या कहाः किस कि कैसेट? और तू चकित होगी देख कर कि वे सभी कहेंगेः कैसेट! और तब उनको ले जाकर फौरन कैसेट बिकवा दिया। कम से कम कैसेट ही बिकेगा। और इनको, किस इन्होंने चाहे न भी कहा हो, लेकिन भीतर तो मन रहा ही होगा कहने का। उसको भी चोट पड़ जाएगी। उसकी भी अक्ल आ जाएगी।
मगर फिर भी ये दया योग्य लोग हैं, दीन-हीन लोग हैं। अब उद्योगपति हैं, क्या खाक उद्योगपति हैं! धन है, लेकिन क्या खाक धन है! अभी किस मांगते फिर रहे हैं--भिक्षापात्र लिए, भिखारियों की तरह! और क्या हो जाएगा, अगर किसी स्त्री ने इनको चुंबन भी दे दिया तो क्या मिल जाने वाला है? क्या पा जाएंगे? थोड़े से कीटाणु ओंठों से, एक ओंठों से दूसरे ओंठों पर चले जाएंगे? और किस ही देना हो तो फ्रेंच किस देना हमेशा। अगर किसी को देने का ही दिल हो जाए कि चलो दे ही दो बेचारे को, इतनी दूर से आया, बैंगलोर से आया, कोई ऋषि-मुनि हो, कोई साधु-संत हो, कहां-कहां से तड़प-तड़प कर आया है, दे ही दो, तो फ्रेंच किस देना। क्योंकि जितने फ्रेंच किस में कीटाणु एक-दूसरे से जाते हैं, उतने किसी से नहीं जाते। लाखों की संख्या में! इतनी दूर से आया है, कुछ तो ले जाए!
तुम जान कर हैरान होओगे, दुनिया में ऐसी कुछ कौमें हैं जहां चुंबन होता ही नहीं। और जब पहली दफा इन आदिम जातियों को पता चला कि दुनिया में ऐसे लोग भी हैं जो चुंबन लेते हैं, तो वे बहुत हंसे, बहुत खिलखिलाए कि यह भी हद हो गई! गंदगी की भी हद हो गई कि एक-दूसरे के ओंठ से ओंठ रगड़ना, थूक से थूक रगड़ना! और यही नहीं, फ्रेंच किस में तो जीभ भी एक-दूसरे से रगड़ना! हद हो गई, बेवकूफी की हद हो गई!
तुम इनका काम देखोगे तो तुमको हंसी आएगी। मगर इनका काम ज्यादा सात्विक है। जब इनको प्रेम बहुत उमड़ आता है तो एक-दूसरे से नाक रगड़ते हैं। यह ज्यादा सात्विक है, हालांकि तुम्हें बहुत बेहूदा लगेगा कि ये क्या कर रहे हैं नालायकी कि एक-दूसरे से नाक रगड़ रहे! लेकिन यह ज्यादा सात्विक है, स्वास्थ्यप्रद है, चिकित्सा की दृष्टि से योग्य है क्योंकि नाक में कोई कीटाणु नहीं होते। और कोई एक-दूसरे की नाक में नाक थोड़े ही घुसेड़ दोगे, नाक से नाक रगड़ ली कि अपने घर गए। तुम अपने घर गए, वे अपने घर गए, खत्म हुआ मामला।
मगर चुंबन तो सच में ही रोगों का घर है। मगर वहम जो-जो सवार हो जाएं, एक
से एक वहम सवार हो जाते हैं। और जो संस्कार पकड़ जाएं। और यही वे लोग हैं जो फिल्मों में चुंबन को न चलने देंगे कि कहीं हमारे बच्चे न बिगड़ जाएं। ये बिगड़े, इनके बाप बिगड़े, इनके बाप के बाप बिगड़े। खजुराहो के मंदिर कोई

फिल्म देखने वालों ने बनाए थे। खजुराहो गए हो? नहीं गए हो तो जाना चाहिए खजुराहो, पुरी, कोणार्क। इनके मंदिर देखने चाहिए। यहां जो-जो तुम्हें मूर्तियां देखने मिलेंगी, तुम भी चौंकोगे कि गजब कर दिया लोगों ने! तुमने सपने भी नहीं देखे होंगे ऐसे अंट-शंट, जैसे संतों ने ये मंदिर बनवाए। इसलिए मैं संतों को अंट-शंट कहता हूं। क्या-क्या गजब के काम इन मंदिरों की मूर्तियों में हैं कि देख कर चकित हो जाओगे! फ्रायड भी आया होता तो वह भी शर्माता कि मैंने भी क्या किया, कुछ खाक नहीं, इसके मुकाबले क्या रखा है! हैवलक एलिस भी अगर भारत आया होता--जिसने कि काम-शास्त्र पर सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण किताबें लिखी हैं--तो वह भी सिर झुका कर खड़ा हो जाता, नमस्कार कर लेता इन ऋषियों को। ऋषि-मुनियों की संतान, महर्षि वात्स्यायन और पंडित कोका, इनकी संतानों ने क्या गजब कर दिया! ये सब पहले ही हरा चुके हैं हजारों साल पहले एलिस और फ्रायड और इन सबको, कई हजारों साल पहले पानी पिला चुके हैं। क्या-क्या गजब की मूर्तियां हैं! कल्पना के बाहर। स्त्री शीर्षासन कर रही है, उसके साथ पुरुष संभोग कर रहा है। क्या गजब के ऋषि-मुनि थे! एक-एक स्त्री के साथ दो-दो तीन-तीन आदमी संभोग कर रहे हैं। क्या पहुंचे हुए लोग थे! इनको तो सिद्धपुरुष कहा है--नमो अरिहंताणं! नमो सिद्धाणं! नमो लोएसव्वसाहूणं! ये ही तो सब साधु हैं जिनको नमस्कार करना चाहिए।
और मैं अगर सत्य कहता हूं तो आग लगती है। ये किन मूढ़ों ने सब किया है?
और पंडित कोक ने जो किताबें लिखीं, कोकशास्त्र--यह भी शास्त्र है! और वात्स्यायन ने जो कामसूत्र लिखे, ये जरूर भारत की दमित वासना का प्रस्फुटन है। जैसे कि मवाद भरी होशरीर में और फूट-फूट कर निकलने लगे।
इन पर दया करना। ये दया योग्य हैं। ये कष्ट में जी रहे हैं। ये रुग्ण लोग हैं।
एक महिला की एक अंगुली एक्सीडेंट में कट गई। उसने बीस हजार रुपये हर्जाने का दावा किया। जज ने कहाः बीस हजार रुपया, क्या कह रही हैं आप! बहुत ज्यादा होता है। एक अंगुली के कट जाने का बीस हजार रुपया!
महिला बोलीः यह अंगुली असाधारण थी। इसके ऊपर ही मैं अपने पति को नचाती थी।
अब ये स्त्रियां पतियों को अंगुलियों पर नचा रही हैं। नाचना पड़ रहा
है उनको। नाचना पड़ रहा है इसलिए कि स्त्रियों को गुलाम बना कर रखा है, तो उसके बदले में कुछ चुकाना पड़ेगा।
मुल्ला नसरुद्दीन चंदूलाल से पूछ रहा थाः जो व्यक्ति गलती करके मान ले, क्षमा मांग ले, उसे आप क्या कहेंगे?
चंदूलाल ने कहाः अक्लमंद, शरीफ, नैतिक और भला आदमी।
नसरुद्दीन ने कहाः और जो गलती न करने पर भी उसे मान ले, वह कौन है? चंदूलाल ने कहाः विवाहित पुरुष।
यहां इस तरह के लोग आएंगे।
यह भारत पूरा का पूरा कामवासना से रुग्ण है, बहुत पीड़ित है। और बड़े वहमों में जी रहा है, बड़े भ्रमों में जी रहा है। और हम जो प्रयोग करने यहां इकट्ठे हुए हैं, वह प्रयोग इतना अनूठा है कि न इनकी समझ में आता है। क्योंकि उसके समझने के लिए भी यहां रुकते नहीं, बैठते नहीं। उसके विपरीत बोलते रहेंगे जगह-जगह, क्योंकि विपरीत बोलने में प्रतिष्ठा है। लेकिन यहां आएंगे तो उनकी असलियत प्रकट होनी शुरू हो जाती है।
रोज भारत में बलात्कार हो रहे हैं, रोज, ऐसा एक दिन नहीं जाता जिस दिन अखबार में खबर न हो कि बलात्कार नहीं होते। और फिर भी यह भारत कहे चला जाता है कि हम पुण्य-भूमि हैं, धर्म-भूमि हैं; हमारा कार्य यही है कि सारी दुनिया को कैसे धार्मिक बनाना! पहले तुम खुद तो धार्मिक हो जाओ। तुमसे ज्यादा रुग्ण और विक्षिप्त इस समय पृथ्वी पर कोई भी नहीं है। पहले तुम तो स्वस्थ हो जाओ। फिर तुम औरों को स्वस्थ करने लगना।
लेकिन जब ये मैं बातें कहता हूं तो लोगों के प्राणों पर तीर चुभ जाते हैं, तो लगता है कि मैं उनके समाज का दुश्मन, सभ्यता का दुश्मन, संस्कृति का दुश्मन, धर्म का दुश्मन। और बात बिल्कुल उलटी है। दुश्मन वे हैं। मुझसे बड़ा कोई मित्र नहीं है संस्कृति और धर्म का! लेकिन मुझसे उन्हें खतरा

मालूम होता है, क्योंकि मैं चीजों को उघाड़ कर रखना चाहता हूं, सत्य को जैसा है वैसा ही रखना चाहता हूं। सत्य को सत्य की भांति जान कर ही हम जीवन में कोई क्रांति कर सकते हैं।
इसलिए रंजन, ऐसे मौके बार-बार आएंगे। घबड़ाना मत। चिंता भी नहीं लेना। इससे तेरा आत्मबल बढ़ेगा। मेरे संन्यासी के ऊपर बहुत सी झंझटें आने वाली हैं, तरह-तरह की झंझटें आने वाली हैं। क्योंकि हमने यह तय किया है कि अंधों के बीच हम आंख वाले रहेंगे। हमने यह तय किया है कि हम रुग्ण और विक्षिप्त लोगों के बीच अपने को रुग्ण और विक्षिप्त नहीं होने देंगे। हमने स्वस्थ होने की कसम खाई है। तो निश्चित ही उसके लिए हमें बहुत सी मुसीबतें झेलनी पड़ेंगी। और बहुत कुछ दांव पर लगाना जरूरी है। मगर इस सबसे तुम्हारी आत्मा का जन्म होगा, तुम्हारे जीवन में क्रांति होगी। यही तुम्हारे जीवन में मोक्ष का द्वार बन जाएगा। इसलिए चिंता जरा भी नहीं है। चिंता लेना भी मत।

आखिरी प्रश्नः ओशो,
मस्त करना है तो खुम से मुंह लगा दे साकी
तू पिलाएगा कहां तक मुझे पैमाने से।
पिछले कुछ दिनों से मुझे यूं महसूस होता है कि जिंदगी में बहार आने वाली है।

दिनेश भारती! आने वाली है? आ गई है! तुम क्यों पीछे-पीछे घसिट रहे हो? तुम लंगड़ाते क्यों हो? आने वाली है!
यहां तो हम भविष्य में जीते ही नहीं। यहां तो वर्तमान ही एकमात्र अस्तित्व है। बहार आ गई है! सकुचाओ मत, संकोच मत करो। खिलो!
और तुम कहते होः "मस्त करना है तो खुम से मुंह लगा दे साकी।"
मैं तो लगाता हूं, तुम मुंह इधर-उधर मोड़ लेते हो। मैं तो सुराही ही लगा रहा हूं तुम्हारे मुंह से। मैं तो खुद भी भरोसा नहीं करता... क्या छोटे- छोटे कुल्हड़ों में पिलाना! मैं तो खुद ही चाहता हूं कि तुम सुराही से पीओ। और सुराही भी क्या, तैयारी हो तो सागर से ही पीओ! लेकिन तुम ही मुंह मोड़ लेते हो। और अपने कसूर को मुझ पर थोप देते हो। जरा सोचो, जरा विचारो।

कहते हो मुझसे इश्क का अफसाना चाहिए
अफसाना चाहिएः कहते हो मुझसे इश्क का अफसाना चाहिए
रुसवाई होगी आपकोशर्माना चाहिए
ऐशर्माना चाहिएः रुसवाई होगी आपकोशर्माना चाहिए
खुद्दार इतनी फितरते रिंदाना चाहिए
साकी ये खुद कहेः साकी ये खुद कहे कोई पैमाना चाहिए
साकी ये खुद कहे साकी ये खुद कहे कोई पैमाना चाहिए खुद्दार इतनी फितरते रिंदाना चाहिए

मिट्टी खराब करते हो तुम बीमारे हिज्र की
मिट्टी खराब करते हो तुम बीमारे हिज्र की
बीमारे हिज्र की... बीमारे हिज्र की... मिट्टी खराब करते हो क्यों बीमारे हिज्र की
जो तुम पर मर गया उसे दफनाना चाहिए
दफनाना चाहिएः जो तुम पर मर गया उसे दफनाना चाहिए खुद्दार इतनी फितरते रिंदाना चाहिए
साकी ये खुद कहे कोई पैमाना चाहिए
कहते हो मुझसे इश्क का अफसाना चाहिए

आंखों में दम रुका है किसी के लिए जरूर
किसी के लिए जरूर, किसी के लिए जरूर
आंखों में दम रुका है किसी के लिए जरूर वरना मरीजे हिज्र को मर जाना चाहिए

खुद्दार इतनी फितरते रिंदाना चाहिए
साकी यह खुद कहे कोई पैमाना चाहिए

वादा अंधेरी रात में आने का था "कमर"
वादा अंधेरी रात में आने का था "कमर"
अब चांद छुप गया उन्हें आ जाना चाहिए
आ जाना चाहिए, अब चांद छुप गयाः अब चांद छुप गया,
उन्हें आ जाना चाहिए
कहते हो मुझसे इश्क का अफसाना चाहिए
खुद्दार इतनी फितरते रिंदाना चाहिए
साकी ये खुद कहे कोई पैमाना चाहिए

तुम अपने भीतर पियक्कड़ की हैसियत पैदा करो। "साकी यह खुद कहे कोई पैमाना चाहिए!" मैं तुमसे कहूंगा कि यह लो सुराही। मगर तुम इतनी हिम्मत तो पैदा करो! सुराही को पचाने की हिम्मत तो पैदा करो। तुम प्रेम तो मांगते हो, मगर प्रेम को लेने की पात्रता तो पैदा करो।
"कहते हो मुझसे इश्क का अफसाना चाहिए।" और मैं तुम्हें दे क्या रहा हूं? मेरे पास देने को कुछ है भी नहीं। प्रेम है। प्रेम की शराब है। और कुल्हड़-कुल्हड़ पिलाने में मुझे भरोसा नहीं। तुम्हें डुबा देना चाहता हूं शराब में। "मगर खुद्दार इतनी फितरते रिंदाना चाहिए!" तुम डूबने को तैयार हो?
योग तीर्थ ने मुझे एक पत्र लिखा है। और लिखा है कि मैं अहमदाबाद में श्री पूनमचंद भाई के घर मेहमान था। उनके घर में अरविंद आश्रम की माताजी का चित्र एक कमरे में लगा हुआ है। मैं ध्यान करने वहां बैठा। चित्र से आवाज आईः मुक्त हो जाओ। ऐसा मुझे अनुभव में हुआ। मैंने पूनमचंद भाई से पूछा, इसका क्या अर्थ है? तो उन्होंने कहाः इसी तरह की आवाज मुझे आई थी। वे भी पहले मेरे संन्यासी थे। इसी तरह की आवाज तस्वीर से मुझे आई थी--मुक्त हो जाओ। तो मैं तो तत्क्षण समझ गया कि संन्यास से मुक्त हो जाओ। सो मैं संन्यास से मुक्त हो गया। अब तुम भी संन्यास से मुक्त हो जाओ। क्योंकि मैं तुमसे कहता हूं कि भगवान डुबा तो सकते हैं, पार नहीं लगा सकते।
योग तीर्थ ने मुझे पूछा हैः "अब मैं क्या करूं!"
मैं तो कहूंगा भैयाः मुक्त हो जाओ। मैं निश्चित ही डुबा सकता हूं, पार मैं लगा सकता नहीं। पार लगाने में मेरा भरोसा नहीं है, पार कहीं कोई है नहीं। जो डूब गया वही पहुंच गया। जो पार लगा वह फिर चूक गया। डूबना है, परमात्मा में डूबना है! परमात्मा का कोई किनारा है? मोक्ष का कोई किनारा है? निर्वाण का कोई किनारा है? यहां तो जो डूब जाए मझधार में उसी को किनारा मिलता है। मझधार ही साहिल है! मझधार ही किनारा है!
योग तीर्थ, तुम तो पूनमचंद की मानो। अहमदाबाद में बहुत अहमक हैं, मगर पूनमचंद पहुंचे हुए अहमक हैं! वह तस्वीर वगैरह से आवाज नहीं आई थी। संन्यास लेकर वे मुश्किल में पड़ गए थे। उनकी पत्नी उनकी जान लिए ले रही थी और उनके मित्र उनकी जान लिए ले रहे थे। और कमजोर आदमी हैं। अहमदाबादी तुम जानते ही हो--फुफ्फस! आत्मा वगैरह अहमदाबादियों में होती है, यह भी शक की बात है। ढोल ही ढोल। भीतर कुछ तलाशो, मिले ही नहीं।
आवाज आई होगी पत्नी से, बता रहे हैं तस्वीर से। और तुमको भी आवाज आई, बड़ा ही अच्छा हुआ! यह तस्वीर बड़ा काम कर रही है। मेरी नाव में जगह भी ज्यादा नहीं है। यह नाव मझधार में डूबने वाली है। इसमें जगह भी ज्यादा नहीं है। तुम खाली करो। तुम मुक्त हो जाओ। मेरी नाव में मुझे उनको ही ले जाना है जो डूबने को राजी हैं।
दिनेश, डूबने को राजी हो जाओ। मैं तो डुबाने को प्रतिपल तैयार हूं।

आज इतना ही।

बहुरि न ऐसो दांव
छठवां प्रवचन

मैं तो एक चुनौती हूं

पहला प्रश्नः ओशो, सितारवादक पंडित रविशंकर से जब हालैंड के प्रसिद्ध दैनिक पत्र वोल्क्सक्रान्ट के प्रतिनिधि ने आपके संबंध में पूछा, तो उन्होंने जो वक्तव्य दिया, वह इस प्रकार हैः "इस लोकतांत्रिक जगत में प्रत्येक व्यक्ति वह काम करने को स्वतंत्र है, जिसे वह उचित मानता है। इसलिए लोग अगर ओशो के पास जाना चाहते हैं तो उन्हें स्वयं ही तय करना होगा। मैं उन्हें व्यक्तिगत रूप से नहीं जानता हूं, लेकिन वे पाश्चात्य लोगों के बीच बहुत लोकप्रिय मालूम पड़ते हैं। आपको कुछ त्याग नहीं करना पड़ता है और पाश्चात्यजन जो चाहते हैं वे उसे सर्वाधिक मात्रा में वहां उपलब्ध करते हैं। अगर आपको यह द्वंद्व है तो यह चीज आपके सर्वथा योग्य है। वहां आपको सभी चीजें मिल सकती हैं--सेक्स, गांजा-भांग और आध्यात्मिक मुक्ति, सब एक साथ।"
ओशो, इतने बड़े कलाविद रविशंकर का आपको जाने बिना आप पर यह वक्तव्य देना क्या उचित था? क्या आप इस पर कुछ कहने की अनुकंपा करेंगे?

आनंद रागेन! मैं, जो मुझे जान ले उसके लिए अबूझ पहेली हो जाता हूं। फिर
तो उसे वक्तव्य देना बहुत मुश्किल हो जाए। जो मुझे नहीं जानता वही मेरे संबंध में आसानी से वक्तव्य दे सकता है; जितना कम जानता है--उतनी सुनिश्चितता से; अगर बिल्कुल नहीं जानता--तो पूर्णता से।
रविशंकर निश्चित ही बड़े कलाविद हैं। उनके सितारवादन का मैं प्रशंसक हूं। लेकिन वह जो ब्राह्मणपन है, वह जो पांडित्य है भीतर, वे जो संस्कार हैं हिंदू के, वे छूटे भी नहीं छूटते। संस्कार अचेतन होते हैं। उनकी अंतर-धारा होती है।
भारत में वे आते हैं, पूना भी आते हैं। और पूना जब आते हैं तो उनको सुनने वालों में नब्बे प्रतिशत मेरे संन्यासी होते हैं। फिर भी इस आश्रम आने की हिम्मत वे नहीं जुटा पाए। और ऐसा नहीं है कि वे नहीं जाते हैं महात्माओं के पास, गुरुओं के पास। सत्य साईं बाबा के पास जाते हैं। वहां भारत की जो जड़, मुर्दा संस्कृति है उसको समर्थन मिलता है।
मैं तो आग की तरह मालूम होता हूं पंडितों को। मेरे पास आना साहस की बात है। तैयारी हो जिसमें अतीत से मुक्त होने की, वही केवल मुझसे परिचित हो सकता है। मैं तो एक चुनौती हूं। और जो डूबेगा वही पार जाएगा। और पंडित इसी पार बैठा रहता है और उस पार की बातें करता है। और इसी पार बैठे-बैठे उस पार की बातें करने में कुछ खर्च लगता है? हल्दी लगे न फिटकरी, रंग चोखा हो जाए!
और इस देश में तो हड्डी-मांस-मज्जा में ज्ञान भर गया है। जिन्होंने कुछ भी नहीं जाना है, वे भी परम सत्यों के संबंध में अपने को अधिकारी मानते हैं। क्योंकि कुछ वेद, कुछ गीता, कुछ रामायण के सूत्र उन्हें तोतों की तरह कंठस्थ हो जाते हैं।
रविशंकर जैसे लोग भारत के अतीत से ऐसे जकड़े हैं कि मुझे पहचानना और समझना तो बहुत दूर की बात, मेरे निकट आने की क्षमता भी उनकी नहीं है। मेरे पास तो वे ही आ सकते हैं जो परवाने हैं, क्योंकि यह तो शमा है। जो जलने को तत्पर है, उसके लिए ही आमंत्रण है। क्योंकि जल कर ही तो कोई नया होता है। मिट कर ही तो कोई पुनर्जन्म होता है।
फिर एक बात ख्याल रखना कि कोई सितार कितना ही अच्छा बजाए, इससे तुम उससे कोई ऑपरेशन करवाने को राजी नहीं हो जाओगे; क्योंकि वह बड़ा सितारवादक है, इसलिए चलो इसी से अपेंडिक्स निकलवा लें। तुम कहोगेः सितारवादक होगा, और कितना ही बड़ा हो, लेकिन इससे अपेंडिक्स निकालने का क्या संबंध है? लेकिन जीवन के बहुत से संबंधों में हमारा सोचना ऐसा ही भ्रांत है। एक आदमी बहुत बड़ा रसायनविद है या भौतिकशास्त्री है। अगर वह ईश्वर के संबंध में कुछ कहता है तो उसकी बात अधिकारपूर्ण मानी जाती है। यह बात उतनी ही

मूर्खतापूर्ण है जितनी कोई रविशंकर से अपेंडिक्स निकलवाए, क्योंकि वे बड़े सितारवादक हैं। कोई व्यक्ति भौतिकशास्त्र का ज्ञाता होगा, लेकिन इससे कोई ब्रह्म से परिचय नहीं हो जाता। और कोई व्यक्ति बड़ा गणितज्ञ होगा, इससे बड़ा संगीतज्ञ नहीं हो जाता। और कोई व्यक्ति बड़ा संगीतज्ञ होगा, इससे कोई बड़ा जौहरी नहीं हो जाता। ये जीवन के छोटे-छोटे पहलू हैं। एक को जानने के लिए, सच तो यह है और बहुत सी बातों से अनजाना रह जाना पड़ता है। एक को जानने के लिए बहुत सी बातों को जानने से वंचित रहना पड़ता है। यहां तो चुनाव करने पड़ते हैं। चुनाव में निश्चित ही कुछ पाओगे तो कुछ गंवाओगे। और ज्यादा गंवाना पड़ता है।
विज्ञान की परिभाषा की जाती हैः नोइंग मोर एण्ड मोर अबाउट लेस एण्ड लेस। कम से कम के संबंध में ज्यादा से ज्यादा जानना--यह विज्ञान की परिभाषा है। परिभाषा बिल्कुल ठीक है। अगर यह विज्ञान की परिभाषा है तो धर्म की क्या परिभाषा होगी? नोइंग लेस एण्ड लेस अबाउट मोर एण्ड मोर। कम से कम जानना ज्यादा से ज्यादा के संबंध में। फिर अध्यात्म की क्या परिभाषा होगी? नोइंग नथिंग अबाउट ऑल! समग्र के संबंध में कुछ भी न जानना। पूर्ण के संबंध में शून्य हो जाना।
मेरी सारी शिक्षा इतनी ही हैः पूर्ण को जानना हो, शून्य हो जाओ। ज्ञान
से आपूरित होना हो, अज्ञानी हो जाओ।
लेकिन भारत की प्राचीन परंपरा ऐसी नहीं है। वह पंडितों द्वारा निर्मित है। नहीं कि कभी-कभी किसी बुद्ध ने उठ कर क्रांति की उदघोषणा नहीं की है; मगर उन बुद्धों को हमने राह से हटा दिया। हटाने की हमने अलग-अलग तरकीबें उपयोग की हैं। सबसे सुगम तरकीब है पूजा। जो व्यक्ति ज्यादा उपद्रव करे, उसकी पूजा करो। पूजा करना हमारा इस बात का निवेदन है कि आपकी बात बिल्कुल सच है, मानते हैं, जिद नहीं करते, मगर अभी हमारी सामर्थ्य नहीं। अभी तो हम दो फूल चढ़ाते हैं; जब सामर्थ्य होगी तब जरूर आपके मार्ग पर चलेंगे। यह छुटकारे का उपाय है। आप महान हो। हम साधारण जन, पृथक जन! आप अलौकिक, हम सांसारिक! आप हो अवतार, तीर्थंकर, बुद्ध और हम ऐरे-गैरे-नत्थू- खैरे, हमारा काम इतना है कि आपकी पूजा करें, स्मरण करें, अरे आप तिराओगे तो तर जाएंगे! आप तारणहार हो, खेवनहार हो! आप मांझी हो! हमारे किए कुछ न होगा। सो भारत प्रतीक्षा करता है।
किसी मित्र ने पूछा है कि हमेशा जब भी धर्म पर संकट आया और जब भी देश में अंधेरा घिरा और जब भी देश में अनाचार हुआ, तो भगवान ने अवतार लिया। अब भगवान अवतार क्यों नहीं लेते?
कभी अवतार नहीं लिया और कभी अवतार नहीं लेंगे। भगवान कोई व्यक्ति थोड़े ही है कि अवतार ले ले। भगवान तो एक अनुभूति है भगवत्ता की कि जीवन पदार्थ पर समाप्त नहीं है। लेकिन काहिल, सुस्त, आलसी, बेईमान लोग, जो कुछ भी नहीं करना चाहते, जो जीवन की क्रांति से बचना चाहते हैं, उन्होंने यह तरकीब ईजाद की है कि जब संकट होगा, अंधेरा होगा, धर्म की ग्लानि होगी, तो आएंगे कृष्ण, आएंगे महावीर, आएंगे बुद्ध और हमारे सब कष्टों का हरण हो जाएगा। पहले हुआ था हरण? बुद्ध तो आ चुके, महावीर भी आ चुके, कृष्ण भी आ चुके, राम भी आ चुके, कितने तो अवतार हो चुके, कितने तो तीर्थंकर हो चुके, तुम्हारी मुसीबतों का हरण कब हुआ? तुम्हारा अंधेरा कब मिटा? दीये तो बहुत सुनते हैं जले, मगर तुम तो दीये के नीचे रहे और दीये के नीचे अंधेरा है। तुम तो दीये के नीचे से ही स्तुतियां करते रहे।
मैं विश्वविद्यालय में विद्यार्थी था। पहली ही विश्वविद्यालय की सभा थी। डाक्टर त्रिपाठी, एक बहुत बड़े इतिहास-विद, आक्सफोर्ड में भी प्रोफेसर रहे थे, और भी दुनिया के अनेक विश्वविद्यालयों में, वे उपकुलपति थे। पक्के शराबी! मगर थे पंडित। थे ज्ञानी! शास्त्रों के ज्ञाता। और इतिहास पर उनकी गहरी पकड़ थी। बुद्ध-जयंती थी तो उन्होंने बुद्ध पर प्रवचन दिया और कहा कि कभी-कभी मेरे मन में यह सवाल उठता है कि कैसा धन्यभाग होता, अगर मैं बुद्ध के समय में हुआ होता तो जरूर उनके चरणों में जाकर बैठता, सुनता उनकी अमृतवाणी, आह्लादित होता, आनंदित होता, रूपांतरित होता! मैं तो विद्यार्थी था। लेकिन मुझसे ऐसी झूठी बातें नहीं सुनी जातीं। मैं खड़ा

हुआ। मैंने उनसे कहा कि मेरा एक निवेदन है कि आप इस पर पुनर्विचार करें। एक दो मिनट आप आंख बंद करें और इस पर पुनर्विचार करें। क्या यह सच है कि अगर आप बुद्ध के समय में होते तो उनके चरणों में बैठते? क्या आप सोचते हैं आज कोई भी व्यक्ति बुद्ध नहीं है? क्या आप किसी भी व्यक्ति के चरणों में इस जीवन में बैठे हैं?
वे थोड़े झिझके। मैंने कहाः आंख बंद करें और थोड़ी देर सोचें। मैं जल्दी जवाब नहीं चाहता। मैं जवाब में उतना उत्सुक नहीं हूं, जितना आप थोड़े मनन में उतर जाएं इसमें उत्सुक हूं।
मैंने कहाः आपकी जिंदगी में रमण महर्षि मौजूद थे। या तो मुझसे कहो कि रमण बुद्ध नहीं थे। कह दो कि रमण बुद्ध नहीं थे तो बात खत्म हो जाएगी। और या फिर कहो कि क्यों नहीं गए उनके चरणों में? और यह मत कहना कि सुविधा नहीं मिली। आक्सफोर्ड जाने की सुविधा है, अमरीका जाने की सुविधा है, जापान जाने की सुविधा है, सारी दुनिया के कोने-कोने में जाने की सुविधा है, सिर्फ अरुणाचल जाने की सुविधा न मिली।
यह तो उनकी हिम्मत न थी कहने की कि कह दें कि रमण बुद्ध न थे। और तब बड़ी मुश्किल में पड़ गए। और मैंने उनसे कहाः कृष्णमूर्ति अभी जिंदा हैं, आप उनके चरणों में बैठे? आप किसी के चरणों में बैठे हैं? मगर मजा आता है यह बात कहने में कि पच्चीस सौ साल पहले अगर मैं होता तो बुद्ध के चरणों में बैठता।
मैंने कहाः आप बुद्ध को गालियां देते। आप उन्हीं लोगों में होते जिन्होंने बुद्ध को गालियां दी हैं। आपने पत्थर फेंके होते। आपने बुद्ध का अपमान किया होता। ये वे ही लोग, जो बुद्ध जीवित होते हैं तो अपमान करते हैं, गालियां देते हैं और बुद्ध मर जाएं तो पूजा के फूल चढ़ाते हैं। बड़े काइयां हैं लोग, बड़े बेईमान हैं लोग! और फिर याद करते हैं कि आएं बुद्ध, हमें छुटकारा दिलाएं। मुसीबतें तुम खड़ी करो और बुद्ध छुटकारा दिलाएं! अंधेरा तुम फैलाओ और बुद्ध रोशनी करें! यह किस ढंग का हिसाब है? इसमें कौन सी तर्कसरणी है?
लेकिन पंडित की एक अकड़ होती है, एक अहंकार होता है। और पंडित हमेशा अतीत पर जीता है; उसका कोई भविष्य नहीं होता, कोई वर्तमान नहीं होता। रविशंकर पंडित हैं। पंडित होने से यहां मेरे पास आने में अड़चन है। और पंडित आए तो मैं उसकी गर्दन बेरहमी से काटता भी हूं, क्योंकि पंडित की जब तक गर्दन न काटो तब तक पंडित की तुम कोई भी सेवा नहीं कर सकते। उसकी गर्दन कट जाए तो उसे जीवन मिल जाए।
सितारवादक होने से मेरे संबंध में वक्तव्य देने का उनको कोई अधिकार नहीं है। मुझे जान कर वक्तव्य दें। लेकिन और भी अड़चने हैं। पश्चिम में बढ़ती मेरी लोकप्रियता उन सारे लोगों के लिए ईर्ष्या का कारण बन गई, जो किसी कारण पश्चिम में लोकप्रिय हैं। महर्षि महेश योगी को अड़चन है। अभी परसों ही मेरे पास एक मित्र का पत्र था कि मैं महर्षि महेश योगी के पास गया तो उन्होंने मुझसे कहा कि मैं तो परंपरा का अंग हूं, मेरी तो जड़ें शंकराचार्य तक फैली हुई हैं। तुम हो उखड़े हुए लोग, क्योंकि तुम जो प्रश्न पूछ रहे हो, ये परंपरा-विरोधी हैं। अगर इस तरह के प्रश्न पूछने हों तो रजनीश के पास जाओ। तुम जैसे भ्रष्ट लोगों के लिए बस वही जगह है और कहीं कोई जगह नहीं है। यहां आना है तो परंपरागत ढंग से आना होगा, परंपरा के ढंग से आना होगा, यहां उखड़े हुए लोगों के लिए कोई जगह नहीं है।
महर्षि महेश योगी को तकलीफ है। मुक्तानंद के प्राणों में संकट छाया हुआ है। मगर उन लोगों के जीवन में भी अड़चन है, जैसे कि रविशंकर। उनसे मेरे क्षेत्र का कोई लेना-देना नहीं है। मैं सितारवादक नहीं हूं, उन्होंने कोई जीवन-सत्य का अनुभव नहीं किया है। लेकिन किसी की भी लोकप्रियता ईर्ष्या का कारण हो जाती है। अहंकार को चोट लगने लगती है। वे जहां जाते हैं वहां उनसे पूछा जाता है। मुझे अनेक मित्रों ने कहा है कि हमने जब भी रविशंकर से पूछा, वे क्रुद्ध होकर जवाब देते हैं और आपके खिलाफ कुछ बोलते हैं। और मजा यह है कि वे जो भी कह रहे हैं बिल्कुल अज्ञान पर आधारित है। मुझसे बिल्कुल भी परिचित नहीं हैं, दूर से भी परिचित नहीं हैं, खुद भी कहते हैं कि मैं

उन्हें व्यक्तिगत रूप से नहीं जानता हूं। बात वहीं खत्म हो जाती है। और कोई जानने का ढंग भी होता है दुनिया में? किसी को जानना हो तो व्यक्तिगत रूप से ही जाना जाता है, सन्निधि में जाना जाता है, निकटता में जाना जाता है, सामीप्य में जाना जाता है। और यह तो जानना कुछ ऐसा है कि कुछ ऐसा नहीं कि आप आए और किसी ने परिचय करा दिया, घड़ी आधा घड़ी में जानना हो गया। इसमें दिन लगते हैं, सप्ताह लगते हैं, महीने लगते हैं, वर्षों लग सकते हैं, जीवन लग सकता है। कितनी त्वरा और कितनी तीव्रता से कोई जानने बैठा है, कितनी अभीप्सा और कितनी मुमुक्षा है--इस पर निर्भर करता है।
मगर वक्तव्य देने में तो भारतीयों से कोई टक्कर नहीं ले सकता। किसी
के भी पक्ष और विपक्ष में बुलवाना हो, कोई उन्हें अड़चन नहीं है। अगर उनकी लोकप्रियता बढ़ती हो तो पक्ष में बोलने को तैयार हैं और अगर लोकप्रियता को हानि पहुंचती हो तो विपक्ष में बोलने को तैयार हैं। अहंकार के लिए जो उचित मालूम पड़े, वे उसके पक्ष में बोलने को तैयार हैं।
मेरे कारण बहुतों के अहंकारों को चोट पहुंच रही है। मेरी भी मजबूरी है। यह हमेशा होता रहा है। मैं इसमें कुछ कर सकता नहीं। जिस व्यक्ति का अहंकार मिट जाएगा, उसके कारण बहुतों के अहंकार को चोट पहुंचेगी। तुम्हारे अहंकार को केवल वही भर सकता है और मक्खन लगा सकता है जिसका खुद का भी अभी अहंकार शेष हो। क्योंकि वह तुमसे प्रतिकार की आशा करेगा कि मैं तुम्हारी स्तुति करूं, तुम मेरी स्तुति करो। मैं तो किसी की स्तुति करता नहीं। इसलिए स्वभावतः लोगों को मेरी मौजूदगी कांटे की तरह चुभ रही है। वह चुभन तरह-तरह से निकलती है। वह मवाद बह-बह जाती है।
और जो उन्होंने कहा है वह अत्यंत मूढ़तापूर्ण है। उन्होंने कहा कि वहां आपको कुछ त्याग नहीं करना पड़ता है। किसने कहा पंडित रविशंकर शुक्ल को यह कि यहां कुछ त्याग नहीं करना पड़ता है? यहां ही त्याग करना पड़ता है! पांडित्य का त्याग करना पड़ता है, ज्ञान का त्याग करना पड़ता है, अहंकार का त्याग करना पड़ता है। और बाकी चीजें तो बहुत आसान है छोड़ देना। पत्नी को छोड़ देना बहुत कठिन नहीं। पंडित रविशंकर अपनी पत्नी को छोड़ भागे हैं। उनकी पत्नी ने ही मुझे आकर निवेदन किया रोते हुए कि मेरे साथ जो अनाचार हुआ है, मुझे जिस तरह दीन-हीन छोड़ गए हैं... । पत्नी को क्यों छोड़ भागे हैं? उसमें कुछ अड़चन न थी। असल में भागने में ही सुविधा थी, क्योंकि तब स्वच्छंद व्यवहार की आसानी हो जाती थी।
और ध्यान रखना, लोग धन छोड़ सकते हैं, क्योंकि धन बाहर है। लेकिन ज्ञान नहीं छोड़ सकते, क्योंकि ज्ञान भीतर है। ज्ञान को जोर से पकड़ते हैं, वही तो उनकी जीवन-संपदा है। तो उन्हें लगता होगा यहां कुछ नहीं छोड़ना पड़ता है, क्योंकि यहां मैं किसी से नहीं कहता पत्नी छोड़ो, बच्चे छोड़ो, घर-द्वार छोड़ो; क्योंकि मानता हूं मैं कि जिन्होंने पत्नी छोड़ी, घर-द्वार छोड़े, बच्चे छोड़े, वे कायर थे, भगोड़े थे। और मैं मानता हूं कि वे धार्मिक तो कतई नहीं थे। क्योंकि धर्म से इन सबके छोड़ने का कोई संबंध नहीं है। और मैं यह भी मानता हूं कि जिन्होंने इस जीवन के सारे संबंधों को छोड़ कर जंगल की राह पकड़ी, ये कमजोर थे; ये जीवन के संग्राम के प्रति पीठ कर रहे थे; ये कायर थे; ये जूझ न सके। और मैं यह भी मानता हूं कि इन लोगों के कारण दुनिया में बहुत दुख फैला। कितनी स्त्रियां पतियों के रहते हुए विधवा हो गईं! कितने बच्चे बापों के रहते हुए अनाथ हो गए! कितनी स्त्रियों को भीख मांगनी पड़ी और कितने बच्चों को भीख मांगनी पड़ी, और कितनी स्त्रियां वेश्याएं हो गई होंगी इन संन्यासियों कि वजह से, उसका कुछ हिसाब लगाया है?
हिंदुओं के इस समय कोई पचपन लाख संन्यासी हैं। ये जिन स्त्रियों और बच्चों को छोड़ कर भाग आए हैं, उनका कोई ब्योरा तो इकट्ठा करे। तो तुम चकित होओगे कि इस दुनिया में जितना पाप इन तथाकथित त्यागियों के कारण हुआ है उतना पाप किसी और चीज के कारण नहीं हुआ है। और मजा यह है कि फिर ये सारे त्यागी जीते तो इन्हीं गृहस्थों पर हैं। इनका भोजन कौन जुटाता है, इनकी रोटी कौन जुटाता है, इनके कपड़े कौन लाता है? इनके लिए मंदिर और तीर्थ कौन खड़े करता है? इनके मंदिरों पर स्वर्ण-कलश कौन चढ़ाता है? वे ही लोग, जिनकी ये निंदा कर रहे हैं, जिनको ये छोड़ भागे हैं।

रविशंकर कहते हैं कि वहां आपको कुछ त्याग नहीं करना पड़ता। यह सौ प्रतिशत बात गलत है। यहां कुछ त्याग करना पड़ता है, जो सूक्ष्म है, जो दिखाई नहीं पड़ता--लेकिन जो असली त्याग है! अहंकार छोड़ने से किसी को पता नहीं चलेगा। घर छोड़ोगे, पत्नी रोएगी, बच्चे चिल्लाएंगे, मोहल्ले को, गांव को पता चलेगा। और मूढ़ों की यह दुनिया है, अखबारों में फोटो छपेगी कि देखो क्या महान त्यागी! अहंकार छोड़ोगे, कानोंकान खबर भी नहीं होगी। धन छोड़ोगे, तो धन के लोभियों से भरा हुआ यह समाज है, गिद्ध की तरह टूट रहे हैं धन पर, दीवाने हैं, मंदिर भी जाते हैं तो धन मांगते हैं।
रामकृष्ण कहते थे कि चील चाहे कितनी ही ऊपर उड़े, उसकी नजर नीचे लगी रहती है घूरों पर--कोई मरा चूहा पड़ा हो, कोई मरा सांप पड़ा हो! उड़ती है आकाश में, नजर लगी रहती है घूरों पर, मरे चूहों पर।
तुम मंदिर जाते हो, उड़ते आकाश में हो, मगर मांगते क्या हो? और धन मिल जाए, और पद मिल जाए, और प्रतिष्ठा मिल जाए। मरते दम तक आकांक्षा नहीं जाती। कल मैं मोरारजी देसाई का वक्तव्य पढ़ता था। बड़ा मजेदार वक्तव्य है। कहा है उन्होंने कि पैंतालीस साल जिसकी उम्र न हो, उसको भारतीय संसद का सदस्य होने का अधिकार नहीं होना चाहिए। पैंतालीस साल की उम्र हो तब भारतीय संसद का सदस्य! दूसरी बात भी अब कह ही दें, काहे को छिपाए बैठे हैं-- जब पचासी साल का हो जाए, तब भारत का प्रधानमंत्री! सो वे अकेले प्रधानमंत्री हो सकते हैं। और पैंतालीस साल में जब कोई भारतीय संसद का सदस्य होगा तो स्वभावतः पचासी साल तक भी हो जाए अगर प्रधानमंत्री तो बहुत। ज्यादा संभावना तो यही है कि मृत्यु के पश्चात, पोस्थूमस प्रधानमंत्री! मर गए, कब्र में हो गए, तब प्रधानमंत्री हुए। जैसे मरणोपरांत पुरस्कार दिए जाते हैं न--नोबल प्राइज और और तरह के पुरस्कार, ऐसे ही फलां आदमी मर गया, चलो अब इनको प्रधानमंत्री बना दो। अब इनसे कुछ भूल-चूक तो हो ही न सकेगी, एक बात तो पक्की है। अब ये किसी का नुकसान तो कर ही न सकेंगे।
क्या मूर्खतापूर्ण बातें हैं! पैंतालीस साल में भारतीय संसद का कोई सदस्य बने, जब कि मरने के करीब होने लगता है आदमी, जीवन से उसके संबंध टूटने लगते हैं, छूटने लगते हैं, जीवन की ऊर्जा क्षीण होने लगती है। भारत की औसत उम्र छत्तीस वर्ष है। तो औसत अर्थों में तो भारत की संसद का कोई सदस्य ही नहीं हो सकता। और जिस देश की औसत उम्र छत्तीस वर्ष हो, उस देश में अगर यह शर्तबंदी लगाई जाए तब तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी।
लेकिन अतीत के मोही, मृत्यु के पूजक बुढ़ापे के भी पूजक होते हैं। जितना कोई बूढ़ा हो, उतनी उसकी बात कीमती हो जाती है। हालांकि गधे भी बूढ़े होते हैं, लेकिन गधों के बूढ़े होने से कुछ वे ज्ञानी नहीं हो जाते। गधा बूढ़ा होगा तो गधा ही रहता है, खच्चर बूढ़ा होगा तो खच्चर ही रहता है। और घोड़ा जवान भी होगा तो भी जवान होता है। सच तो यह है कि बच्चों के पास जो प्रतिभा होती है, वह बूढ़ों के पास कभी नहीं होती। बहुत थोड़े से ऐसे सौभाग्यशाली लोग हैं, जो अपने बचपन की प्रतिभा को बचा पाते हैं; नहीं तो यह समाज ऐसा है कि यह सबकी प्रतिभाओं पर जंग लगा देता है। जब जंग लग जाती है, जब तलवारों की धार मर जाती है, तब हम कहते हैंः अहा, कैसी प्राचीन तलवार है! मेरी बातें तो इतनी नई हैं जितनी सुबह की ओस, इतनी नई जैसे अभी-अभी खिले हुए फूल! पंडितों को ये बातें नहीं समझ में आ सकतीं। उनको तो पत्थर चाहिए पुराने और जितने पुराने हों और उन पर लेख अगर ब्राह्मी-लिपि में लिखे हों, तो फिर तो कहने ही क्या? फिर तो उनका सिर एकदम नतमस्तक हो जाता है। प्राचीन के पूजक, मुर्दा के पूजक, मरघटों के पूजक!
और अनिवार्य है यह कि पंडित अतीतवादी हो, क्योंकि उसकी संपदा क्या है--स्मृति! ज्ञान तो उसकी कोई संपदा नहीं है।
मेरे पास जो लोग इकट्ठे हो रहे हैं, वे ही त्यागी हैं, क्योंकि वे कुछ अंतर्तम में त्याग कर रहे हैं। और मेरे हिसाब में, मेरे गणित में जो भीतर त्याग करता है उसके भीतर भोग का जन्म होता है, क्योंकि त्याग कोई अपने आप में मूल्य नहीं है। त्याग कोई अपने आप में लक्ष्य नहीं है। त्याग का अर्थ इतना ही है, जिससे हमें परमात्मा की रसधार में बहने का मौका मिले, हम उसके

आनंद को उपलब्ध हों। त्याग साधन है, साध्य नहीं है। साध्य तो भोग ही है-- महाभोग! भागवत भोग! जो भीतर का त्यागता है, वही भीतर के भोग को उपलब्ध होता है।
तो मेरे पास जो व्यक्ति हैं, उनमें एक अपूर्व घटना घटेगी। एक अर्थ में भीतर त्याग होगा। उस त्याग को ही मैं ध्यान कहता हूं। उसमें अहंकार मरेगा, मन विसर्जित होगा, ज्ञान छूटेगा। कचरा-कूड़ा सब बाहर निकाल देंगे। शून्यता का जन्म होगा। और शून्यता पात्रता है। उस पात्रता में फिर परमात्मा के अमृत की वर्षा होती है। वह भोग है।
जिन्होंने त्यागा उन्होंने ही भोगा। तेन त्यक्तेन भुंजिथाः! जिन्होंने त्यागा उन्होंने ही भोगा। इस उपनिषद-वचन को मैं बहुत मूल्य देता हूं। दुनिया में थोड़े ही वचन हैं जो इस कोटि में आते हैं; जो इस महत्ता को, इस गरिमा को प्रकट करते हैं। मगर पंडितों के पास तो थोथा मन होता है। इनकी समझ कितनी?
तो उन्होंने कहा कि वहां कुछ त्याग नहीं करना पड़ता। और पाश्चात्य जन
जो चाहते हैं, वे उसे वहां सर्वाधिक मात्रा में उपलब्ध कर सकते हैं। भारतीय अहंकार छूटता ही नहीं। अब रविशंकर रहते पश्चिम में हैं। मैं रहता हूं भारत में। और ये भारतीय संस्कृति के पोषक! क्या करते हो पश्चिम में? धन इकट्ठा कर रहे हैं। सब तरह का भोग, जिसकी निंदा भारतीय करते हैं, जिसकी निंदा वे खुद भी करेंगे! भारतीय मन ऐसा पाखंडी और चालाक है, जिसका हिसाब नहीं। बूढ़े देशों का मन ऐसा हो जाता है। बुढ़ापे से चालाकी आती है, बेईमानी आती है, सरलता खो जाती है। पश्चिम को कहेंगे भौतिकवादी। और ये सारे अध्यात्मवादी पश्चिम की तरफ भागे जाते हैं।
मुक्तानंद बैठे हैं मियामी बीच पर। भाड़ झोंक रहे हो वहां? क्योंकि भलीभांति मालूम है कि वह गोबरपुरी में जो आश्रम बना रखा है, वहां कौन आएगा? गोबरपुरी के गणेश हैं--गोबरगणेश! मगर मियामी बीच पर भारत से कोई आ गए हैं सिद्ध महात्मा, बस इतना प्रचार करना काफी है। और मियामी बीच पर क्यों? क्योंकि वहां पर्यटक आते हैं, खर्च ही करने आते हैं। जिनके पास खर्च करने को है, वे ही आते हैं। वहां आश्रम बना रखा है। वह आश्रम क्या है, होटल है। और वहां मुक्तानंद चौबीस घंटे करते क्या हैं?
मेरे एक संन्यासी निर्ग्रंथ अभी वहां होकर आए हैं। तो मुक्तानंद पूरे समय चौके में खड़े रहते हैं और भारतीय ढंग का भोजन बनवाते रहते हैं, क्योंकि अमरीकी लोगों को भारतीय भोजन आकर्षित करता है। यह अध्यात्म का प्रचार हो रहा है! भारतीय भोजन तैयार करवाया जा रहा है, भारतीय मिष्ठान्न तैयार करवाए जा रहे हैं और उनकी बिक्री हो रही है। और अमरीकी जन प्रसन्न हो रहे हैं, कि यह भारतीय भोजन, इसका स्वाद, इसकी विशिष्टता और फिर इसमें अध्यात्म की भी पुट मिली है कि बनवाने वाला कोई सिद्ध पुरुष, कोई परमहंस! मगर परमहंस न हुए, बावर्ची हुए!
रविशंकर को सितार की साधना करने में भारत में कोई अड़चन है? अमरीका में बैठने की क्या जरूरत है? लेकिन धन वहां है और गाली भी धन को है!
बर्ट्रेंड रसल कहा करते थे कि अगर कहीं किसी ने जेब काट ली हो और शोरगुल मचे कि किसी की जेब कट गई, पकड़ो, तो जो आदमी सबसे ज्यादा चिल्ला रहा हो कि पकड़ो चोर को, मारो चोर को, कहां है--उसी को पहले पकड़ लेना। क्योंकि जहां तक संभावना है उसी ने जेब काटी होगी। क्योंकि बचने की तरकीब यही है। क्योंकि जो इतने जोर-शोर से चिल्ला रहा है कि पकड़ो चोर को, मारो चोर को, निकल न जाए--स्वभावतः उसको कोई नहीं पकड़ेगा कि यह तो बेचारा साहूकार मालूम होता है। यह तो भला आदमी है, सज्जन आदमी है, चोर को पकड़वाने को उत्सुक है। बचने का यही रास्ता है।
ये सारे भौतिकवादी लोग पश्चिम को गाली देते हैं, मगर इस गाली में भी
एक बड़ा मनोविज्ञान है। यह मनोविज्ञान दिखाई नहीं पड़ता। इसके बड़े सूक्ष्म और नाजुक पहलू हैं।
जैन मुनि को जो लोग सुनने जाते हैं, उनके जो श्रावक हैं, वे सब धनी हैं। और जैन मुनि का काम है धन को गाली देना और धन की निंदा करना। और श्रावक सिर हिलाते हैं, कहते हैं कि जी महाराज, सत्य महाराज! धन्य हो

महाराज! क्योंकि इन सबको भी लगता तो है कि किस कचरे में पड़े हैं, मगर छोड़ भी नहीं सकते। तो जो इनको कह रहा है, ठीक ही कह रहा है। जितनी गाली देता है यह जैन मुनि, जितनी निंदा करता है धन की, उतने ही धनी उसके पास जाते हैं। यह बड़ी हैरानी की बात है कि धनियों को धन को दी गई गाली इतनी प्रीतिकर क्यों लगती है--इसलिए कि उनको भी लग तो रहा है कहीं गहरे में कि हम मूढ़ता कर रहे हैं। मगर जो धन को गाली दे रहा है वह भी जानता है तुम्हारे मनोविज्ञान को। वह धन की गाली तुमको प्रभावित करने के लिए ही दे रहा है। तो दोनों के बीच अच्छी सांठ-गांठ हो गई।
भारत के आध्यात्मिक शास्त्रों को तुम पढ़ोगे तो बहुत हैरान होओगे। स्त्रियों के नख-शिख का ऐसा वर्णन है कि क्या कोई अश्लील साहित्य लिखने वाले लोग करेंगे। और आध्यात्मिक पुरुषों ने, सिद्धों ने किया है वर्णन। किसी चीज को छोड़ा नहीं है। एक-एक चीज का वर्णन किया है। उनके शरीर के अंग-अंग का वर्णन किया, अनुपात का, उनके शरीर के उठने-बैठने का वर्गीकरण किया है। स्त्रियों का जैसा सुंदर वर्णन भारतीय धर्मशास्त्रों में मिलेगा, कहीं भी नहीं मिल सकता। और साथ में गाली! और साथ में निंदा! यह वर्णन ही इसलिए किया जा रहा है कि वे तुम्हें सजग कर रहे हैं कि सावधान, इन-इन चीजों से सावधान रहना, ये-ये चीजें स्त्री की तुम्हें आकर्षित करती हैं। सावधान करने के बहाने वर्णन भी किए दे रहे हैं।
अब जरा सोचने जैसी बात है कि इतना क्या इनको रस होगा! इतना रसपूर्ण वर्णन, इसमें जरूर भीतर कहीं कोई लगाव, कहीं कोई दबाव, कहीं कोई दमन पड़ा है। इस बहाने रस ले रहे हैं। कामिनी और कांचन को ऐसी गाली... बस दो चीजों को गाली देते हैं; धन को, सोने को और स्त्री को। क्योंकि पूरा भारतीय मन इन दो ही चीजों से भरा हुआ है। और इन गालियों के आधार पर भारतीय सोचते हैं कि हम त्यागी, व्रती, अध्यात्मवादी!
ये पंडित रविशंकर अपनी पत्नी को यहां छोड़ कर वहां न मालूम कितनी स्त्रियों के साथ रहे हैं, रह रहे हैं! ऐसा उनकी पत्नी ने मुझे कहा। यहां भी उनके स्त्रियों से संबंध थे, इसलिए पत्नी से नहीं बन सका। इसलिए भारत छोड़ा। और वे लोगों को समझा रहे हैं कि पश्चिम के लोग जो पाना चाहते हैं वह वहां सर्वाधिक मात्रा में उपलब्ध है। क्या मूर्खतापूर्ण बातें कर रहे हो! अगर पश्चिम के लोगों को स्त्रियां चाहिए तो पूना आने की जरूरत है? पश्चिम में स्त्रियों की कुछ कमी है, कि इतनी लंबी यात्रा करें? पश्चिम में स्त्रियां ही स्त्रियां हैं। समुद्र-तट नग्न स्त्रियों से भरे पड़े हैं। उन्हें यहां भारत आकर पूना का नरक झेलने की जरूरत है? कि हजार तरह की बीमारियां झेलें, अमीबा से परेशान रहें, डीसेंट्री और हैपेटाइटिस और न मालूम किस-किस तरह की बीमारियां भोगें, जो उन्होंने पश्चिम में कभी भोगी नहीं थी! शरीर को दुर्बल करें। स्त्रियों के लिए! ऐसी कुछ स्त्रियों की तलाश करनी हो तो पश्चिम में स्त्रियां ज्यादा आसानी से उपलब्ध हैं। रविशंकर वहां तलाश कर रहे हैं स्त्रियों की और वहां के लोग तलाश करने पूना आ रहे हैं! कोई महाराष्ट्रियन स्त्रियों से कुश्ती लड़नी है? शराब पीने के लिए पूना आ रहे हैं, जहां कि शराब पर पाबंदी है! अच्छी से अच्छी शराब पश्चिम में उपलब्ध है बिना किसी कानूनी बाधा के। शराब वहां पीएंगे या यहां आएंगे? और गांजा, भांग और मारिजुआना और एल एस डी और हशिश पश्चिम में नहीं मिल रहा है? यहां तो कोई चीज शुद्ध नहीं है।
यहां तो मुल्ला नसरुद्दीन एक रात जहर खाकर मरना चाहता था, तो रात में
कई बार घड़ी देखे कि अभी तक मरा कि नहीं मरा! सुबह भी होने लगी, दूध वाला भी दरवाजा खटखटाने लगा। उसने कहाः हद हो गई, यह भी कौन सा मरना हुआ! हद हो गई, बैकुंठ में भी दूध वाला आया हुआ है! घड़ी भी वही, कमरा भी वही, मामला क्या है, क्या पूरा का पूरा कमरा ही बैकुंठ चला आया है?
और जब पत्नी कमरे में घुसी तो उसने कहा कि यह कभी... यह बैकुंठ वगैरह नहीं है। यह वही का वह घर है। छाती पीट ली। भागा हुआ गया केमिस्ट की दुकान पर और गर्दन पकड़ ली उसकी, कहा कि दुष्ट, रात भर जगाए रखा, पैसे के पैसे ले लिए, यह कैसा जहर दिया?

उसने कहाः भई गर्दन छोड़ो, मैं क्या कर सकता हूं? इस देश में कोई चीज शुद्ध मिलती है? अरे पानी शुद्ध नहीं मिलता, जहर कहां से शुद्ध मिलेगा? मैं क्या कर सकता हूं? जहां हर चीज में मिलावट है, उसमें मेरा क्या कसूर है? कोशिश करते रहो, कभी संयोगवशात अगर हाथ लग जाए शुद्ध चीज तो लग जाए। यहां हशिश शुद्ध मिलेगा? यहां गांजा-भांग कोई चीज शुद्ध मिल सकती है? यहां कोई चीज शुद्ध नहीं मिलती। हर चीज अशुद्ध है।
मैं एक मित्र के घर मेहमान था। उनकी साबूदाने की फैक्टरी थी। मैंने कहाः साबूदाने की फैक्टरी! मैं तो सोचता था साबूदाना पौधों में लगता होगा।
उन्होंने कहाः अरे वे जमाने गए जब पौधों में लगता था। अब तो चावल से
ही साबूदाना बनाते हैं।
तो तुम जो साबूदाना खा रहे हो वह साबूदाना वगैरह नहीं है; उस चावल को पीस कर, उसकी लुगदी बना कर, उसकी छोटी-छोटी गोलियां बना कर उसको साबूदाने की शक्ल दी जाती है। अब बड़ा मजा है, यहां मरीजों को हम साबूदाना खिला रहे हैं! चावल से बचाएंगे और साबूदाना खिला रहे हैं। और साबूदाना और भी गर्हित! कम से कम चावल शुद्ध भी है, साबूदाने का कोई भरोसा ही नहीं। यहां कोई चीज शुद्ध मिल सकती है?
कश्मीर का नाम ही केसर के कारण पड़ा है, क्योंकि वहां केसर सारे कश्मीर में पैदा होती थी। मगर भारत में केसर और शुद्ध मिल जाए--असंभव! मेरे दूध के लिए केसर लाती है तो मंजू लाती है अफ्रीका से। यहां तो केसर शुद्ध मिल सकती नहीं। भुट्टे के दाने पर जो घास-पात उगी रहती है, उसको काट-काट कर केसरिया रंग में रंगते हैं और थोड़ी सी केसर छिड़क देते हैं उसके ऊपर, जिसमें थोड़ी गंध आने लगे। बस केसर हो गई! भुट्टे के बालों का तुम मजा ले रहे हो केसर के नाम से।
पश्चिम में सब शुद्ध उपलब्ध है। उसको पाने के लिए पूना आना पड़ेगा? क्या मूर्खतापूर्ण बात रविशंकर ने भी कही! और यहां सारी तकलीफें झेलनी पड़ती हैं, हजार तकलीफें, हजार मुसीबतें। मेरे संन्यासी जितनी मुसीबतें यहां आकर झेल रहे हैं, उन्होंने जीवन में कभी नहीं झेली थीं। जो तपश्चर्या उनको यहां करनी पड़ रही है वह उनको कभी भी नहीं करनी पड़ी थी।
कौन उन्हें यहां रोके हुए है? और इस आश्रम में रविशंकर आ तो जाते, कम
से कम देख तो लेते! मैं गांजा-भांग को तरसा जा रहा हूं; न गांजा मिलता है, न भांग। कितने ही तरसो, कितने ही तरसो, कोई उपाय नहीं। आश्रम में गांजा-भांग का प्रवेश ही निषिद्ध है! लेकिन कुछ भी कह देते हैं; जो मुंह में आए कह देते हैं। ऐसा लगता है गांजा-भांग पीए रहे होंगे जब ये बातें कहीं।
सेक्स के लिए किसी को यहां आने की क्या जरूरत है? गांजा-भांग के लिए यहां आने की क्या जरूरत है? अगर यहां लोग आ रहे हैं तो आ रहे हैं--आत्मिक विकास के लिए। यहां न मालूम कितने लोगों का आकर गांजा-भांग छूट गया है, मांसाहार छूट गया है, शराब छूट गई है। हालांकि मैं कुछ भी छोड़ने को नहीं कहता हूं, लेकिन मेरी जीवन-दृष्टि यही है कि तुम्हारी समझ से कुछ छूटे तो ही छूटता है। मैं कहूं और तुम छोड़ दो, फिर कल कोई कहेगा, तुम फिर शुरू कर दोगे। तुम्हारी ही समझ से छूटे तो दुनिया में फिर तुम्हें कोई कुछ भी कहता रहे, तुम दुबारा शुरू न कर सकोगे।
लोग यहां आ रहे हैं, क्योंकि यहां उन्हें कुछ जीवन का स्वाद मिल रहा है।
तुमने पूछा है कि "इतने बड़े कलाविद को आपको बिना जाने क्या आप पर वक्तव्य देना उचित था।"
भारतीयों के लिए सभी कुछ संभव है। भारतीयों को बकवास करना जितना आसान
है उतना दुनिया में किसी के लिए नहीं।
कहते हैं कि अगर दो अंग्रेज शराब पी लें, तो बिल्कुल चुपचाप बैठ जाएंगे, फिर बोलेंगे ही नहीं। वैसे ही नहीं बोलते, मगर अगर शराब पी लें तो बिल्कुल चुप हो जाएंगे। उनका अंतर्तम बिल्कुल ही प्रकट हो जाएगा। रस ही न लेंगे दूसरे में। दो जर्मन अगर शराब पी लें, तो झगड़ा-झांसा होना निश्चित है, मार-पीट होगी, हड्डी-पसली टूटेगी, शोरगुल मचेगा। और दो भारतीय अगर शराब

पी लें, तो आध्यात्मिक चर्चा करेंगे। फिर और कुछ बचता नहीं। फिर तो एकदम वेदांत! फिर तो एकदम आकाश में उड़ते हैं।
मेरे एक मित्र हैं, उनकी पत्नी ने मुझे आकर कहा कि और सब तो ठीक है, किसी तरह बीस साल बरदाश्त कर लिए पति के साथ, लेकिन जब से इन्होंने आपको सुनना शुरू किया है तब से मेरी मुसीबत बहुत बढ़ गई। मैंने कहाः मैं कुछ समझा नहीं। उसने कहा कि ये शराबी हैं, रोज रात को शराब पीना। मगर ठीक है, पी-पा कर सो जाते थे। जब से आपको सुनने लगे हैं, तब से एक बड़ी मुसीबत हो गई है, न सोते हैं, न सोने देते हैं। जब ये डट कर पी लेते हैं तो ये भूल ही जाते हैं ये कौन हैं। ये समझते हैं कि ये आप ही हो गए। और मैं ही एक श्रोता। और आप तो बोलते भी हो तो कम से कम तीन हजार लोग होते हैं तो बंट जाता है; मैं अकेली! और फिर ये घंटों क्या प्रवचन देते हैं, मेरी खोपड़ी खा जाते हैं! हिला-हिला कर, उठा-उठा कर बिठा देते हैं कि बैठ, समझ इस बात को, क्या भगवान ने कहा है! और मुझे ऐसा गुस्सा आता है कि गर्दन काट दूं इस दुष्ट की। एक तो पीएं हैं, मुंह से बास आ रही है और अध्यात्म की बकवास लगा रखी है!
तो मैंने उनको कहा कि अगर तुम्हें ऐसा ही है तो तुम... बड़ा मकान है, तुम बगल के कमरे में रहने लगो, अलग-अलग कमरों में। एक दिन चला यह। दूसरे दिन उनकी पत्नी ने कहाः यह और एक मुसीबत है। वह उसी कमरे में ठीक है।
मैंने कहाः क्यों?
क्योंकि ये रात में आकर दरवाजा खटखटाते हैं, कि दरवाजा खोल, अरे वह गजब की बात याद आई है! और न मालूम कहां-कहां की बातें ले आते हैं और आपकी बातों में मिला देते हैं! फिल्मी गाने आ जाते हैं, पूरी फिल्म की कहानी आ जाती है उदाहरण स्वरूप! पहले तो कम से कम मैं बिस्तर में पड़ी रहती थी, बकता रहता था यह इसको जो बकना हो, बक। मगर अब यह दरवाजा खटखटाता है। न खोलूं तो दरवाजे के बाहर से शोरगुल मचाता है। उससे बच्चे जग जाते हैं, मोहल्ले वाले भी कहने लगे कि भई यह क्या है!
यह तो भारतीयों का लक्षण है, आनंद रागेन। इनको अध्यात्म से ज्यादा और किसी चीज की बकवास करने में रस नहीं है। और बकवास है सब। अनुभव कुछ भी नहीं, सब बकवास है। अगर सामर्थ्य हो पंडित रविशंकर में तो मैं उन्हें चुनौती करता हूं, वे यहां आए, मेरे सामने बैठें। यहां जरा बात हो ले। तो जरा देखूं कितना अध्यात्म है, कितना ज्ञान है, कितना पांडित्य है, कितनी समझ है! ज्यादा समझ नहीं हो सकती, क्योंकि जो व्यक्ति सत्य साईं बाबा के पास जाता है उसकी गिनती मैं गधों में लिख देता हूं। हालांकि इससे मैं चमत्कृत होता हूं कि गधा सितार अच्छा बजाता है! यह और चमत्कार की बात है, क्योंकि आमतौर से गधे सितार नहीं बजाते। चीपों-चीपों, एक ही संगीत जानते हैं, मगर सितार... !
मैं चुनौती देता हूं, वे आएं। मैं हमेशा तैयार हूं। यहां बैठ कर दो-दो बातें हो लें। जरा बात साफ हो जाए कि क्या अध्यात्म है और क्या बकवास है। पति पत्नी को हरेक बात पर "ऐ जी, सुनिए" कहने की आदत को देख कर उनका चार वर्षीय मुन्ना भी उन्हें मम्मी-पापा न कह कर "ऐ जी, सुनिए" कहने लगा। इस पर पति-पत्नी बेहद चिंतित हुए। अंत में पति ने सुझाव दिया कि तुम मुझे पापा कहा करो और मैं तुम्हें मम्मी कहा करूंगा, तब यह नालायक सुधरेगा, नहीं तो यह सुधरने वाला नहीं है।
ऐसे ही इस देश का अध्यात्म है--"ऐ जी, सुनिए।" सुनते-सुनते छोटे-छोटे बच्चे कह रहे हैं--"ऐ जी, सुनिए।" लोगों की जबान पर रखा है अध्यात्म।
और मुझसे घबड़ाहट पैदा हुई है, बहुत घबड़ाहट पैदा हुई है। क्योंकि मैं किसी अध्यात्म की बात कर रहा हूं, जो उनकी जबान पर नहीं है। उन्हें मुझसे बड़ी चिंता हो गई है। उनकी सुरक्षा खतरे में पड़ गई है। उनका पांडित्य खतरे में पड़ गया है। अगर मैं सच हूं तो लाखों-करा.ेडों पंडितों की रोटी-रोजी जाएगी। इसलिए मेरा विरोध है। अगर मैं सच हूं तो लाखों ब्राह्मणों की पत्ती कट जाएगी। मुझे गलत सिद्ध करने की सब तरफ से चेष्टा की जाएगी। सुरेश ने अपने दादाजी सेठ चंदूलाल से कहा कि दादा जी, क्या आपके मुंह में दांत हैं?
चंदूलाल ने कहाः नहीं बेटा, यह बात तू क्यों पूछता है?

सुरेश ने कहा कि कोई और बात नहीं, यह मेरा अखरोट रख लीजिए, जरा मैं खेलने जा रहा हूं।
मेरे हाथ में इनका अखरोट खतरे में पड़ा जा रहा है! मैं कोई वेदांती नहीं हूं, बिना दांत का नहीं हूं। दांत हैं! इनका अखरोट खतरे में है। छोटे- छोटे बच्चे भी हिसाब से चलते हैं। और कहने में क्या लगता है, कुछ भी कह दो! तीन महिलाएं अपने पति के विषय में चर्चा कर रही थीं। पहली बोलीः हमारे विवाह को इतने वर्ष हो गए, पर हम दोनों में आज तक एक बार भी तू-तू, मैं-मैं नहीं हुई।
दूसरी ने लंबी श्वास लेते हुए कहाः काश, मैं भी यही कह सकती!
तीसरी बोलीः अरी तू भी कह दे न! आखिर इसने भी कहा ही तो है, कहने में क्या बनता-बिगड़ता है?
अब तू-तू, मैं-मैं किस पति-पत्नी में नहीं होती, यह कौन नहीं जानता! पति-पत्नी ही क्या जिनमें तू-तू, मैं-मैं न हो! वे पति-पत्नी ही नहीं हैं। ढब्बूजी ने चंदूलाल से कहा कि भई कल तुम जो अपनी पत्नी के साथ घूमने
जा रहे थे, तो मेरी तरफ देखा भी नहीं। चंदूलाल ने कहाः तुम कैसे पहचाने कि वह मेरी पत्नी थी?
ढब्बूजी ने कहाः अरे, इसमें क्या है? जिस अधिकारपूर्वक वह तुम्हें गालियां दे रही थी, उससे साफ जाहिर था कि पत्नी के सिवाय इतना अधिकारपूर्वक कौन गाली दे सकता है! और तुम जैसे पूंछ दबाए चले जा रहे थे कि मेरी तरफ देखा भी नहीं, मैं खांसा भी, खंखारा भी, मगर तुमने मेरी तरफ देखा भी नहीं। तुम यूं बच कर निकल गए जैसे मैं हूं नहीं दुनिया में। तभी मैं समझ गया कि पत्नी के साथ जा रहे हो।
कोई जोड़ा उदास चला जा रहा हो, समझ लो कि पति-पत्नी हैं। अगर कोई पति- पत्नी जैसे मालूम पड़ते हों, प्रसन्न दिखते हों, तो पति-पत्नी जरूर होंगे, मगर पत्नी किसी और की और पति किसी और का। तभी जरा प्रसन्नता रहती है, नहीं तो प्रसन्नता कहां रखी है!
कहने में लगता क्या है? तो रविशंकर को जो लगा कह दिया। मगर मैं अपने संन्यासियों को कहता हूं कि जहां भी रविशंकर मिलें, उनको मेरी चुनौती कह देना। और बार-बार, जब मिलें तब। और कहना कि आ जाओ। और ऐसे वे पूना आते हैं, इसलिए कोई कठिनाई नहीं है। आमना-सामना हो ले, दो बातें हो जाएं। साफ हो जाए कि सितार बजाने से कोई अध्यात्म नहीं आ जाता है।

दूसरा प्रश्नः मेरा एक प्रश्न है, उत्तर देने की कृपा करें।

॰... पहली तो बात कि यह प्रश्न नहीं है, और उत्तर की इसको कोई अपेक्षा नहीं है। तुम प्रश्न सुनोगे तो समझ में आ जाएगा। प्रश्नकर्ता, तथाकथित प्रश्नकर्ता हैंः अशोक कुमार वाचस्पति। पंडित हैं, प्रश्न कैसे पूछ सकते हैं? प्रश्न तो अज्ञानी पूछते हैं। ये तो ज्ञानी हैं। इन्होंने तो सलाह दी है, प्रश्न का तो बहाना है। सलाह दी है। तुम प्रश्न सुनोगे तो समझ में आ जाएगा कि सलाह है। सलाह भी कहना ठीक नहीं, आदेश है। क्या होना चाहिए उसका सूचन है। और पांडित्य का जहर इनके रग-रग में भरा होगा, क्योंकि संबोधन भी नहीं किया। अरे कुछ तो लिख देते! अगर बहुत ही बड़े पंडित थे तो कम से कम संबोधन में लिख देते कि बच्चा! अरे कुछ तो लिख देते! मगर संबोधन भी नहीं किया। क्या संबोधन करना! सीधा--"मेरा एक प्रश्न है, उत्तर देने की कृपा करें!" कृपा भी लिखा, यह भी बड़ी कृपा है। भूल-चूक से लिख गए लगता है। पुरानी आदत से लिख गए लगता है। औपचारिकतावश, शिष्टाचारवश लिख गए लगता है।

सुनो उनका तथाकथित प्रश्नः "यह अथर्ववेद का वचन है तथा ब्राह्मण-ग्रंथ में भी इसी प्रकार हैः जिस दिन पूर्ण वैराग्य हो, उसी दिन संन्यास ग्रहण करें। क्योंकि पूर्ण विद्वान, जितेंद्रिय, विषय-भोग की कामना से रहित, परोपकार की इच्छा से युक्त, जो पुरुष या स्त्री हो, वह ही संन्यास ग्रहण करे। और वेद में भी कहा है कि पूर्ण ज्ञानी विद्वान ही संन्यास ले। कठोपनिषद में कहा हैः जो दुराचार से पृथक नहीं, जिसको शांति नहीं, जिसकी

आत्मा योगी नहीं और जिसका मन शांत नहीं है, वह संन्यास लेकर भी प्रज्ञान योनि, उत्तम ज्ञान या उपदेश से परमात्मा क्या आत्मा को भी नहीं जान सकता और न ही प्राप्त ही हो सकता है। क्या आप ऐसे गुणों से युक्त स्त्री- पुरुषों को संन्यास देते हैं? अगर नहीं तो अपने देश, जाति, व्यक्ति की संस्कृति नष्ट हो जाएगी। अतः उक्त गुणों से युक्त व्यक्ति को ही संन्यास दें, अन्य को नहीं। और यह भी सत्य है कि जिस प्रकार गुणरहित डाक्टर, प्रोफेसर आदि कार्य नहीं कर सकते, उसी प्रकार संन्यास का भी धर्म है। अगर गुणरहित है तो उसको संन्यास न दें।"

इसमें प्रश्न कहां है? इसलिए मैं बड़ी चिंता में पड़ा कि उत्तर क्या दूं। मगर उन्होंने कहा है कि उत्तर देने की कृपा करें। कृपा न करूं तो भी ठीक न होगा। इसलिए कृपा करता हूं। अब झेलो! कृपा नहीं है, कृपाण है! अथर्ववेद का वचन हो या ब्राह्मण-ग्रंथ में हो, किसी का ठेका नहीं है संन्यास पर। ईसाई संन्यासी हुए, वे कोई अथर्ववेद के कारण नहीं और न ब्राह्मण-ग्रंथों के कारण। और मुसलमान संन्यासी हैं, और जैन संन्यासी हैं, और हिंदू संन्यासी हैं, और बौद्ध संन्यासी हैं, दुनिया में तीन सौ धर्म हैं और तीन सौ ही धर्मों की अपने-अपने संन्यास की रूप-रेखा है। अथर्ववेद की कोई तानाशाही है? ब्राह्मण-ग्रंथों का कोई ठेका है कि संन्यास की क्या परिभाषा होगी? मेरा संन्यास, मेरी परिभाषा होगी। मेरा संन्यास हिंदुओं का संन्यास नहीं है। फिर हिंदुओं के भी कितने संन्यास हैं! शंकराचार्य के संन्यास से रामानुज के संन्यास का कोई तालमेल नहीं है। रामानुज तो कहते हैं कि शंकराचार्य प्रच्छन्न बौद्ध हैं, छिपे हुए बौद्ध हैं। ये धोखाधड़ी से बौद्ध धर्म का प्रचार कर रहे हैं। बौद्ध संन्यासी की क्या वेदों से संगति जोड़ोगे? बुद्ध तो वेद को मानते नहीं। बुद्ध तो वेद को कचरा समझते हैं। और वेदों में है भी निन्यानबे प्रतिशत कचरा; एक प्रतिशत भी अगर मिल जाए जो कचरा नहीं है तो बड़ी खोज-बीन से मिलता है, बामुश्किल, नहीं तो कचरा ही कचरा है। स्वयं कृष्ण भी गीता में वेद को कचरा से ज्यादा नहीं मानते, औरों की तो बात छोड़ दो। कृष्ण स्वयं कहते हैं कि वेद निम्न कोटि के लोगों के लिए है, उच्च कोटि के लोगों के लिए नहीं। और महावीर ने तो वेद-मुक्त होने का अनिवार्य आग्रह किया है। महावीर को हिंदू इसीलिए तो नास्तिक कहते रहे, क्योंकि वे वेद-विरोधी थे। और कबीरदास में क्या वेद है? और नानक में क्या वेद है? मगर संन्यासी तो सबके हैं। अगर इतने सब लोगों के संन्यास की अपनी अवधारणा हो सकती है तो मेरे संन्यास की अपनी अवधारणा है।
अशोक कुमार वाचस्पति, मैं किसी शास्त्र से आबद्ध नहीं हूं। मैं स्वयं
जो कह रहा हूं वही मेरा शास्त्र है। अगर तुम्हारे शास्त्र से मेल खा जाए तो तुम्हारे शास्त्र का सौभाग्य; अगर मेल न खाए तो तुम्हारे शास्त्र का दुर्भाग्य। मेरा कुछ लेना-देना नहीं है।
अब तुम जो कहते हो उसके एक-एक शब्द को समझना जरूरी होगा।
तुम कहते होः "जिस दिन पूर्ण वैराग्य हो, ... ।"
जब पूर्ण वैराग्य हो जाए तो संन्यास की जरूरत क्या? यह तो ऐसी मूर्खतापूर्ण बात हुई कि कोई कहे जिस दिन पूर्ण स्वास्थ्य हो उसी दिन अस्पताल में भरती होना। फिर तुम्हारी खोपड़ी में गौमाता का गोबर भरा है? फिर काहे के लिए अस्पताल में भरती होओगे? जब पूर्ण स्वास्थ्य ही हो गया... पूर्ण! ख्याल रखना "पूर्ण" शब्द पर... तो अस्पताल में अब काहे के लिए भरती होना है, डाक्टरों को सताना है? जब पूर्ण वैराग्य हो... अरे वैराग्य ही पूर्ण करने के लिए तो संन्यास की प्रक्रिया है। संन्यास की साधना ही यही है कि तुम्हारा वैराग्य पूर्ण हो; उसको तुम पहली शर्त बना रहे हो। यह तो यूं हुआ कि स्कूल में भरती होने के पहले ही यह शर्त हो कि सर्टिफिकेट कहां हैं, मैट्रिक पास हो कि नहीं, अगर मैट्रिक पास नहीं तो मैट्रिक में भरती नहीं होने देंगे! एम.ए. की डिग्री है तो यूनिवर्सिटी में प्रवेश मिलेगा। अभी जब एम.ए. की डिग्री नहीं है तो यूनिवर्सिटी में कैसे प्रवेश मिले? पर तब बड़ी मुश्किल यह हो जाएगी कि एम.ए. की डिग्री मिलेगी कहां से?

पूर्ण वैराग्य होगा कैसे? वैराग्य भी तो एक सतत साधना से उपलब्ध होता है; क्रमशः, स्वयं को परिशुद्ध करने से उपलब्ध होता है। इसीलिए महावीर और बुद्ध ने युवकों को संन्यास देने पर जोर दिया। वेदों की धारणा थी बुढ़ापे में संन्यास। जैसे मोरारजी देसाई, गीता-ज्ञान मर्मज्ञ हैं वे! क्या गजब की बातः पैंतालीस वर्ष की उम्र में संसद के सदस्य! और दूसरी जो उनके दिल में छिपी बात है, जो कह नहीं सकते, हिम्मत नहीं है, छाती नहीं है कहने की, मैं कहे देता हूं कि पचासी वर्ष की उम्र में भारत के प्रधानमंत्री! ऐसी ही वेदों की धारणा थीः पचहत्तर वर्ष में संन्यास! पहली तो बात, पचहत्तर वर्ष तक कितने लोग जिंदा रहेंगे? और अगर स्वमूत्र पीकर कोई पचहत्तर साल तक जिंदा रह भी जाए तो यह भी कोई जिंदा रहना हुआ? इस शर्त पर जिंदा रहना! इससे तो मर ही जाते तो अच्छा था। और कितने लोग इस शर्त पर जिंदा रहने के लिए तैयारी दिखलाएंगे? पचहत्तर साल में संन्यास!
महावीर और बुद्ध ने एक बड़ी क्रांति की। उन्होंने कहा कि संन्यास तो
तब जब जीवन ऊर्जा से भरा है, युवा है। और यही विरोध उनका था कि युवक व्यक्ति पूर्ण वैराग्य को कैसे उपलब्ध हो सकता है। और मैं तुमसे कहता हूं कि युवक व्यक्ति ही पूर्ण वैराग्य को उपलब्ध हो सकता है, अगर संन्यास से गुजरे। हां, संन्यास की पहली शर्त नहीं हो सकती यह, क्योंकि युवा व्यक्ति है, अभी पूर्ण वैराग्य कहां से होगा? अभी तो संन्यास से गुजरेगा तो वैराग्य की सीमाओं को छुएगा। हां, पचहत्तर साल का बूढ़ा तुम चाहो तो उसको पूर्ण विरागी कह सकते हो, चाहे पूर्ण नपुंसक। तुम्हारी मर्जी। मैं तो नपुंसक ही कहूंगा। मैं तो दो और दो चार ही मानता हूं, उलटी-सीधी बातें करने का मुझे रस नहीं है।
पचहत्तर साल की उम्र में पूर्ण वैराग्य का क्या अर्थ होता है? न भोजन पचता है, न संभोग कर सकते हो, न जीवन की दौड़ में अब जीत सकते हो। अब युवा आ गए। अब युवा दौड़ रहे हैं। अब तुम्हारे पास कुछ भी नहीं बचा, तो तुमने एक नया झंडा उठाया--संन्यास का! जिंदगी ने तुम्हें छोड़ दिया और तुम कहते होः हम जिंदगी को छोड़ रहे हैं! किसको धोखा दे रहे हो? आत्मवंचना में हो तुम। जब जिंदगी ने तुम्हें छोड़ दिया, तब तुम क्या खाक जिंदगी छोड़ रहे हो! जिंदगी तो तब छोड़ने का मजा है जब जिंदगी अपने उभार पर हो, अपने तूफान पर हो।
यह कोई संन्यास नहीं था, जिसको वेद के समय में संन्यास कहा जाता था।
वह संन्यास की बिल्कुल ही बुढ़ापे की, बूढ़ों की धारणा थी। उसका कोई मूल्य नहीं है। वह तो बड़ी तरकीब थी। वह तो अपनी कमजोरी को एक सुंदर शब्द की आड़ देना था, चालबाजी थी, होशियारी थी। और होशियारी में तो पूछो ही मत, लोग क्या-क्या नहीं कर लेते!
मुल्ला नसरुद्दीन यात्रा करके लौट रहा था। जहाज तूफान में उलझ गया।
और यूं लगे कि अब गया तब गया। सब लोग प्रार्थना करने लगे। मुल्ला आखिर तक हिम्मत बांधे रहा, नहीं की प्रार्थना, नहीं की प्रार्थना। क्योंकि प्रार्थना करने का मतलब है कि कुछ व्रत लो, नियम लो, कि हे प्रभु ऐसा करूंगा, वैसा करूंगा, बचाओ! उसने सोचा अगर बच जाएं बिना ही इसके तो अच्छा। मगर जब देखा कि अब डूबी ही डूबी, आखिर नाव के और जो लोग थे उन्होंने भी कहा कि नसरुद्दीन, अब तुम भी कुछ कसम लो, हम सब कसमें ले चुके। अब दिखता है तुम्हारे पाप के कारण ही डूब रही है। और बिल्कुल जब डूबने की हालत आ गई कि अब देर नहीं है, तो नसरुद्दीन ने कहाः हे प्रभु, मेरा जो महल है संगमरमर का, वह जो नौ लाख का महल है, उसको बेच कर गरीबों में बांट दूंगा--अगर यह नौका बच गई।
संयोग की बात नौका बच गई। अब तुम सोच सकते हो नसरुद्दीन की छाती पर सांप लोट गए, कि जरा देर और रुक जाता, यह तो बचने ही वाली थी, यह तूफान जाने ही वाला था! मगर फंस गए। अब करना क्या? मगर होशियार आदमी रास्ते निकाल ही लेता है। और गांव भर में... नाव जब किनारे लगी, गांव भर में एक ही चर्चा, एक ही गरम-गरम चर्चा कि गजब कर दिया नसरुद्दीन ने! क्योंकि लोग जानते थे यह ऐसा महाकंजूस, कि इसके दरवाजे पर भिखारी भी नहीं आते, क्योंकि भिखारी अगर आ भी जाएं तो दूसरे भिखारी कह देतेः भैया, क्यों समय खराब कर रहे हो? तुम नये मालूम होते हो इस गांव में। इस आदमी से भीख नहीं मिलेगी। और तुम्हारे

पास कुछ होगा, अगर अकेला हुआ तो छुड़ा लेगा। इसने लोगों से उनके भिक्षापात्र तक छीन लिए हैं। भागो, आगे बढ़ो!
यह आदमी नौ लाख का महल दान करेगा! बस एक ही चर्चा थी कि कब होगा, कब होगा! और दूसरे दिन नसरुद्दीन ने घोषणा की कि मकान बिकने वाला है, जिनको भी लेना हो आ जाएं। दूसरे दिन लोग आए। लोग देख कर बड़े हैरान भी हुए। नसरुद्दीन ने मकान के सामने ही संगमरमर के खंभे के साथ एक बिल्कुल मरियल बिल्ली भी बांध रखी थी। लोगों ने पूछाः यह मरियल बिल्ली किसलिए बांधी है? नसरुद्दीन ने कहाः ठहरो, अभी समझ में आएगा। उसने कहा कि यह मकान मुझे बेचना है। नौ लाख इसके दाम हैं और एक रुपया बिल्ली का दाम है। दोनों चीजें साथ बिकेंगी। दुनिया जानती है कि इस मकान के दाम नौ लाख हैं, इससे कम एक पैसे का यह मकान नहीं है। लेकिन मैं एक झंझट में फंस गया हूं। ऐ भाइयो एवं बहनो, तुम मुझे इस झंझट से बचा लो। झंझट से बचने की तरकीब यह है कि बिल्ली के दाम नौ लाख रुपये हैं और मकान का दाम एक रुपया; दोनों साथ-साथ बिकेंगे। जिसको लेना हो ले लो।
लोगों ने... कई लोग उत्सुक थे लेने को, मकान शानदार था! उन्होंने कहाः हमें क्या है, यह एक रुपये में और सही, एक रुपया और ज्यादा! मरी बिल्ली फेंक-फाक देंगे, करना क्या है? ले लिया। लेकिन नसरुद्दीन की तरकीब तुमने देखी, उसने एक रुपया गरीबों में बांट दिया, नौ लाख रुपये बैंक में जमा करवा दिया। मकान का दाम बांटने की कसम खाई थी, कोई बिल्ली के दाम बांटने की तो कसम खाई थी नहीं।
मरते वक्त लोग बहुत चालबाज हो जाते हैं, होशियार हो जाते हैं, बूढ़े होते-होते होशियार हो जाते हैं।
तुम कहते होः "पूर्ण वैराग्य हो जिस दिन उसी दिन संन्यास ग्रहण करें।"
फिर काहे के लिए संन्यास ग्रहण करें? फिर तो पूर्ण वैराग्य उपलब्ध हो
ही गया। पूर्ण के आगे भी कुछ बचता है? यह जरूर किसी बेईमान ने सूत्र खोजा होगा, जो बचना चाहता है संन्यास से--फिर चाहे यह अथर्ववेद में हो और चाहे ब्राह्मण-ग्रंथों में हो। असल में ब्राह्मणों से ज्यादा काइयां और बेईमान जाति दुनिया में दूसरी नहीं रही क्योंकि यह सबसे ज्यादा पुराना पुरोहितों का वर्ग है। और यह संन्यास के पक्ष में नहीं है। यह बातें करता है संन्यास की, मगर संन्यास के पक्ष में नहीं है।
संन्यास की बुनियादी क्रांति क्षत्रियों से आई है, ब्राह्मणों से नहीं। असली संन्यासी हुए जैनों और बौद्धों के द्वारा। वे सब क्षत्रिय थे। बुद्ध और महावीर के मुकाबले ब्राह्मणों ने कौन सा संन्यासी दिया है? शंकराचार्य का नाम ले सकते हो, मगर उनमें मैं रामानुज से राजी हूं। क्योंकि शंकराचार्य जो भी कहते हैं वह सब चोरी है--और बुद्ध की है। उसमें एक शब्द उनका अपना नहीं है। नाम बदल लेते हैं। जैसे अभी कुछ दिन पहले मैंने तुमसे कहा कि बुद्ध के विपस्सना ध्यान को मैंने आचार्य तुलसी को समझाया था। विपस्सना कहें तो वह बुद्ध का है, तो उसका नया नाम रख लिया-- प्रेक्षा। ऐसे ही बुद्ध के सिद्धांतों को शंकराचार्य ने नये नाम दे दिए। नाम देने में क्या लगता है? जो मर्जी हो नाम दे दो। जिसको बुद्ध ने व्यवहार-सत्य कहा है--वस्तुतः सत्य नहीं, बस व्यावहारिक रूप से सत्य--उसको शंकराचार्य ने माया कहा है। बात वही की वही है, कुछ फर्क नहीं है। बुद्ध ने जिसको शून्य कहा है, शंकराचार्य ने उसी को पूर्ण कहा है। शब्द बिल्कुल उलटा है, मगर बात वही की वही है। जो शून्य की परिभाषा है वही पूर्ण की परिभाषा है। परिभाषा को देखोगे तो जरा भी भेद न पाओगे। शून्य शब्द से मत घबड़ा जाना। पूर्ण शब्द से आंदोलित मत हो जाना। सत्य तो एक है; उसको नकारात्मक ढंग से कहना हो तो शून्य और सकारात्मक ढंग से कहना हो तो पूर्ण। मगर बात तो वही की वही है। न शून्य की कोई सीमा होती, न पूर्ण की कोई सीमा होती। न शून्य के ऊपर कुछ होता, न पूर्ण के ऊपर कुछ होता है।
ब्राह्मणों के पास एक भी वैसा ज्वलंत उदाहरण नहीं है जो बुद्ध के सामने खड़ा किया जा सके। ब्राह्मण सदा से संन्यास-विरोधी हैं। मगर विरोध करने की हिम्मत भी उनकी चालबाजी से भरी हुई--पचहत्तर साल के बाद संन्यास!

तो उन्होंने जीवन को चार हिस्सों में बांट दिया था। चार वर्ण जैसे उन्होंने बांट दिए समाज को, ऐसे ही उन्होंने जीवन को भी चार आश्रमों में बांट दिया। पहला आश्रम ब्रह्मचर्यः पच्चीस वर्ष तक शिक्षा का अध्ययन। दूसरा आश्रम गृहस्थः पच्चीस से पचास वर्ष तक। तीसरा आश्रम वानप्रस्थ। "वानप्रस्थ" भी बड़े गजब का शब्द है! वानप्रस्थ का अर्थ होता हैः जंगल की तरफ मुंह। अभी गए नहीं, अभी जाना नहीं, सिर्फ मुंह फेर लेना। मतलब सोचने लगना कि जाएंगे, कि अब जाते हैं कि अब जाते हैं, कि तैयारी करना। पच्चीस साल तैयारी करोगे जंगल जाने की! क्या-क्या स्थगन के उपाय! पचास साल की उम्र से सोचोगे पचहत्तर साल तक, फिर पचहत्तर साल में संन्यास। जैसे कि हर व्यक्ति को सौ साल जीना हो! अगर हर व्यक्ति को सौ साल जीना था तो तुम्हारे वेद के ऋषि क्यों आशीर्वाद देते हैं कि सौ साल जीओ? जिस देश में लोग सौ साल जीते ही हों, उस देश में किसी को आशीर्वाद देना कि सौ साल जीओ--आशीर्वाद नहीं होगा।
वैज्ञानिकों ने खोज-बीन की है तो पता चला है कि वैदिक युग के समय में कोई भी आदमी चालीस-पैंतालीस साल से ज्यादा नहीं जीता था। चालीस साल अंतिम उम्र मालूम होती है, क्योंकि चालीस साल से ज्यादा पुरानी कोई हड्डी और अस्थिपंजर नहीं मिले हैं। और यह बात ठीक भी लगती है। अभी भी भारत की औसत उम्र छत्तीस साल है। तो उन गए-गुजरे दिनों की तो याद करो, जब न विज्ञान था, न औषधि की कोई व्यवस्था थी, न आधुनिक चिकित्सा थी, न आधुनिक उपकरण थे; जब कि मंत्र-तंत्र के बल पर लोग जीने की कोशिश कर रहे थे; जब कि ताबीज और गंडे चले रहे थे; जब कि भूत-प्रेत निकाले जा रहे थे; जब कि पंडित-पुरोहित यज्ञ करके वर्षा करवा रहे थे; जब कि देवताओं को मनाया जा रहा था; जब एक-एक से एक मूर्खताएं हो रही थीं! उन दिनों लोग अगर चालीस साल से ज्यादा न जीते हों तो कुछ आश्चर्य नहीं। और तभी सौ साल जीने के आशीर्वाद का कुछ अर्थ होता है। रूस में आज अनेक लोग हैं जो डेढ़ सौ साल की उम्र के हैं। अगर इनसे कहो
कि बेटा सौ साल तक जीना, तो कुश्तमकुश्ती हो जाएगी। वहीं मार-पीट हो जाएगी कि तुम हमें पचास साल पहले ही मार डालना चाहते हो! सौ साल तक जीने की बात का आशीर्वाद तो तभी सार्थक हो सकता है जब मुश्किल से कोई पचास साल जीता हो। तो दुगुनी उम्र दे दी और क्या आशीर्वाद चाहिए!
तुम कहते होः "जब पूर्ण वैराग्य हो उस दिन संन्यास ग्रहण करें, क्योंकि पूर्ण विद्वान... !"
विद्वान से संन्यास का क्या संबंध? विद्वता से संन्यास का क्या संबंध? विद्वान तो सब थोथापन है, उच्छिष्ट! दूसरों का थूका हुआ चाटता रहता है विद्वान। विद्वान से संन्यास का क्या लेना-देना है? यह भी शर्त कि पूर्ण विद्वान! समस्त शास्त्रों का ज्ञाता! चारों वेदों का ज्ञाता!
वेद को जो जाने ही नहीं, वह भी संन्यासी हो सकता है। जिसने शास्त्र पढ़े ही न हों, वह भी संन्यासी हो सकता है। कबीर को क्या कहोगे? कबीर जैसा मस्त संन्यासी कहां पाओगे? और कबीर कहते हैंः मसि कागद छुओ नहीं! स्याही तो छुई नहीं हाथ से, कागज छुआ नहीं। और कबीर यह भी कहते हैंः लिखालिखी की है नहीं, देखादेखी बात। विद्वान तो लिखालिखी वाला होता है--इधर ऐसा लिखा है, उधर वैसा लिखा है। यह प्रश्न देख रहे हो? पहले तो प्रश्न ही नहीं। अथर्ववेद में ऐसा लिखा, ब्राह्मण-ग्रंथ में ऐसा लिखा, कठोपनिषद में ऐसा लिखा। यह लिखालिखी की बकवास है, देखादेखी कुछ भी नहीं।
अशोक कुमार वाचस्पति, कुछ देखा भी कि बस लिखा ही लिखी में पड़े हो? सब उच्छिष्ट है। विद्वान से कोई संबंध संन्यास का नहीं है। सचाई तो यह हैः जो जितना निर्दोषचित्त हो, जितना सरलचित्त हो, जिसको अपने अज्ञान का जितना गहन बोध हो, वही संन्यासी हो सकता है। साक्रेटीज संन्यासी हो सकता है, तुम नहीं। क्योंकि साक्रेटीज कहता हैः मैं एक ही बात जानता हूं कि मैं कुछ भी नहीं जानता। और जिन उपनिषदों का तुम उल्लेख कर रहे हो, उनमें से भी तुम मतलब की बातें छांट लिए हो। अन्यथा उपनिषदों में ऐसे अदभुत वचन भी हैं कि अज्ञान तो भटकाता ही है, ज्ञान महाअंधकार में भटका देता है। तो फिर पूर्ण विद्वान की क्या हालत होगी, जरा सोचो! इसको तो फिर कुल-किनारा ही न मिलेगा अंधकार का।

संन्यास का विद्वान होने से कोई संबंध नहीं है। संन्यासी को चाहिए बच्चे जैसी सरलता, जिज्ञासा, आश्चर्य का भाव, विस्मय-विमुग्ध होने की क्षमता। संन्यासी को उत्तर नहीं चाहिए, जिज्ञासा चाहिए। तुम्हारे पास उत्तर है। और जिसके पास उत्तर हो उसको हम विद्वान कहते हैं। "जितेंद्रिय"--जिसने इंद्रियों को जीत लिया हो! तो फिर संन्यास का प्रयोजन कहां बचता है? तुमने तो वे सारी शर्तें पहले लगा दीं जो कि संन्यास का परिणाम हैं। "विषयभोग की कामना से रहित"... । और अगर यह सच है तो तुम्हारा एक भी ऋषि संन्यासी नहीं था, क्योंकि तुम्हारा एक भी ऋषि जितेंद्रिय नहीं मालूम होता। अप्सराएं आ जाती हैं, उर्वशी आ जाती है और ऋषि डांवाडोल हो जाते हैं। किसी का वीर्यपात हो जाता है। और कैसी-कैसी जगह वीर्यपात हो जाता है! नाव में बैठे हैं और देख ली इन्होंने मछुए की लड़की-- और ऋषि-मुनि और वीर्यपात हो गया! मछली उनका वीर्य निगल गई और मछली गर्भवती हो गई! क्या-क्या गजब की बातें कर रहे हो! कुछ तो होश में आओ, कुछ तो जागो कि यह बीसवीं सदी आ गई, इस कूड़े-करकट को तो होली में जला डालो। रावण को बहुत दिन जला चुके, वह जलता नहीं, क्योंकि हर साल फिर जलाना पड़ता है। इस कचरे को जला दो।
और तुम्हारे ऋषि-मुनि क्या भोगवासना से रहित हैं? नहीं तो इंद्र घबड़ाता क्यों है इनसे? जब किसी ऋषि ने साधना की कि इंद्र का सिंहासन डोला। बड़ी अजीब बात है! ऋषि से इंद्र का सिंहासन क्यों डोलता है? क्योंकि ऋषि के भीतर कामना सिंहासन पाने की है। वह उसी संघर्ष में लगा है, राजनीति में लगा है। वह कह रहा है कि हम सिंहासन पर बैठ कर रहेंगे। बहुत दिन नचा चुके तुम मेनका को, अब हम नचाएंगे। अब मेनका हमारी बंदरिया होगी, तुम्हारी बंदरिया कब तक रहे! अब बहुत दिन भोग चुके उर्वशी को, कुछ तो छोड़ो भैया! कुछ हमारे लिए भी छोड़ो।
ये ऋषि-मुनि यहां तो छोड़ते दिखाई पड़ रहे हैं, लेकिन स्वर्ग में भोगने
की इच्छा है। ये कौन हैं लोग जिन्होंने स्वर्ग में कल्पवृक्ष की कल्पना की है, कि जिसके नीचे बैठने से सारी कामनाएं पूरी हो जाती हैं? ये कामना से मुक्त लोग हैं? तो कल्पवृक्ष नरक में होना चाहिए, स्वर्ग में नहीं।
और यह कोई एक ही धर्म की बात नहीं, सारे धर्म इसी तरह गर्हित हैं। इस्लाम कहता हैः स्वर्ग में न केवल सुंदर स्त्रियां हैं, वरन सुंदर छोकरे भी हैं। क्योंकि अरबी देशों में समलिंगीय व्यवहार बहुत प्रचलित था, अभी भी प्रचलित है। तुम उर्दू की कविता में देखोगे तो तुमको दिखाई पड़ेगा कि उर्दू की कविता में जो प्रेम का काव्य है वह स्त्रियों के बाबत कम है, पुरुषों के बाबत ज्यादा है। पुरुष पुरुषों पर दीवाने हैं, छोकरों पर दीवाने हैं। तो मुसलमानों के स्वर्ग में हूरें भी हैं, अप्सराएं भी हैं और गिल्में भी। गिल्में यानी सुंदर छोकरे। क्या गजब के लोग थे! कैसी अदभुत साधना हो रही थी--कामवासना से मुक्ति हो रही थी! और बहिश्त में चश्मे बहते हैं शराब के। यहां शराब पीयो तो पाप है और वहां शराब पीयो तो पुण्य है।
और तुम्हारे वेद सोमरस की प्रशंसा से भरे हैं। और सोमरस अगर कुछ भी है
तो निश्चित ही कोई नशीली औषधि है। अभी सारे वैज्ञानिक इस खोज में लगे हुए हैं कि सोमरस है क्या, यह किस जड़ी-बूटी का रस था? यह जरूर मारिजुआना जैसी कोई चीज है, जिसको पी-पी कर ऋषि-मुनि मस्त होते रहे।
और तुम्हारे साधु-संन्यासी गांजा, अफीम और चरस सदियों से पीते रहे हैं। और बात यहां तक पहुंच गई थी कि जब कोई आदमी बहुत दिन तक गांजा, चरस, भांग पीएगा तो फिर इनका उस पर असर नहीं होता, उसका शरीर धीरे-धीरे इनका आदी हो जाता है। तो तुम्हारे साधु-संन्यासी सांपों को पालते थे कि उनको जीभ पर कटाते थे सांप से। जब जीभ पर सांप से कटाते तो थोड़ा-बहुत नशा उनको आता, थोड़ी-बहुत मस्ती आती।
"जितेंद्रिय, विषय-भोग की कामना से रहित"... । कब होगी यह घटना, कहां होगी यह घटना? और जिनको तुम ईश्वर कहते हो, वे भी कुछ विषय-भोग की कामना से रहित नहीं मालूम होते। विष्णु भगवान लेटे हैं क्षीर-सागर में, क्या कर रहे हैं वहां लेटे-लेटे? लक्ष्मी मैया पैर दबा रही हैं! ये लक्ष्मी मैया वहां एकांत में क्या कर रही हैं? जरा तुम तो कहीं लेट जाओ जाकर और किसी मैया से

पांव दबवाओ, फौरन भीड़ लग जाएगी, फौरन उपद्रव हो जाएगा। लक्ष्मीनारायण हैं ये! तुम्हारे रामचंद्र जी भी सीता मैया के साथ खड़े हैं। और कृष्ण जी तो गजब ही कर गए हैं, कृष्ण को तुम संन्यासी कहते हो कि नहीं?
हे अशोक कुमार वाचस्पति! हे नानापेठ पुणे के निवासी! कृष्ण को तुम क्या कहते हो, संन्यासी कहते हो कि नहीं? ये सोलह हजार रानियां, ये काहे के लिए इकट्ठी की हैं? यह प्रदर्शन... कोई कुंभ का मेला भरा है? और इनमें दूसरों की उड़ाई हुई औरतें हैं, चोरी की गई औरतें हैं। ये सोलह हजार स्त्रियां ऐसी ही थोड़े ही मिल गईं। और यह बांसुरी बज रही यमुना तट पर और ये गोपियां नाच रहीं--यह सब खेल-खिलवाड़, यह लीला! और ये झाड़ पर चढ़े बैठे कृष्ण कन्हैया! कल ही तो आ गए थे यहां कन्हैयालाल! स्त्रियों के कपड़े लेकर चढ़ गए हैं ऊपर। अभी कोई चढ़ जाए तो तुम कहोगेः यह रजनीशी संन्यासी है! और ऊपर बैठ कर डाल पर क्या कर रहे हैं, वह देखा? अब बेचारी भारतीय नारियां हैं, सो लोक-लज्जा से पानी में दबी बैठी हैं, अब करें क्या! सो वे धीरे-धीरे कपड़े लटकाते हैं। जैसे छोटे बच्चों को तुम कोई चीज देने के लिए हाथ बढ़ाते हो, फिर पीछे खींच लेते हो, वह तुम्हारे पास आया तो पीछे खींच ली--ऐसे ही वे कपड़े लटकाते हैं। और जैसे ही वे महिलाएं हाथ उठाती हैं, वे कपड़े ऊपर खींच लेते हैं, ताकि वे पूरी की पूरी नंगी खड़ी हो जाएं। क्या खेल चल रहे हैं! मालूम होता है नानापेठ में अभी तक इनकी कोई खबर नहीं आई।
वाचस्पति, कुछ इनको सोचो-विचारो।
"भोगवासना से रहित, परोपकार करने की इच्छा से युक्त"... । और परोपकार करने की इच्छा भी तो इच्छा ही है। वह भी तो भोगवासना ही है। वह भी कोई इच्छा से मुक्ति तो नहीं है! ... "जो पुरुष या स्त्री हो वह संन्यास ग्रहण करे।" ऐसी शर्तें लगा दीं कि न कोई पूरी कर सकेगा, न कोई संन्यासी हो सकेगा। यह संन्यास रोकने का उपाय था ब्राह्मणों का, क्योंकि ब्राह्मण नहीं चाहते लोग संन्यासी हों।
संन्यासी के कई खतरे हैं ब्राह्मण को। पहला, कि संन्यासी होते से ही व्यक्ति ब्राह्मण के चक्कर से मुक्त हो जाता है। संन्यासी होते ही वर्ण से मुक्त हो जाता है। संन्यासी होते ही से न क्षत्रिय, न शूद्र, न ब्राह्मण, कोई भी नहीं रह जाता--वर्णातीत हो जाता है। और संन्यासी होते से ही समस्त आचरण से भी मुक्त हो जाता है, आचरण-अतीत हो जाता है, अतिक्रमण कर जाता है चरित्र का। उस पर फिर कोई नियम-व्रत लागू नहीं होते। उसका जीवन स्वच्छंद होता है। उसके जीवन में स्वयं का छंद होता है। वह अपने अंतर्तम से जीता है।
ब्राह्मण यह बरदाश्त नहीं कर सकते थे। यह तो उनकी सत्ता को चुनौती हो जाती है। लेकिन यह भी नहीं कह सकते थे कि संन्यास गलत है, क्योंकि यह कहते, तो भी लोग कहते कि संन्यास जैसी सुंदर चीज और तुम गलत कह रहे हो? तो फिर उन्होंने चालबाजी निकाली। फिर उन्होंने ऐसी शर्तें लगा दीं कि न तुम कर सकोगे शर्तें पूरी कभी, न कभी संन्यास होगा और जो भी संन्यासी होगा उसको हम बता सकेंगे कि यह गलत संन्यासी है, इसमें देखो भोग-विलास है, इसमें देखो इच्छा है, इसमें देखो पूर्ण विद्वान नहीं है, इसमें देखो जितेंद्रिय नहीं है, इसमें देखो अभी वैराग्य पूरा नहीं हुआ। हम भूल-चूक बता सकेंगे। तो संन्यासी की निंदा करने की हमें सुविधा मिल गई और लोगों को संन्यास से रोकने की सुविधा मिल गई।
ब्राह्मण चाहता है, लोग कभी भी ज्ञान को उपलब्ध न हों। तभी तो उसका शोषण चलेगा। तभी तो वह लोगों की छाती पर बैठ कर इनका खून चूसता रहेगा। हजारों साल से चूस रहा है। खटमलों की तरह हैं ये ब्राह्मण। ये खून पी रहे हैं आदमी का। और अभी भी इनसे छुटकारा नहीं हुआ। इसलिए मेरे संन्यास से उनको घबड़ाहट हो रही है, क्योंकि मेरा संन्यास लोगों को एक मुक्ति दे रहा है, जिसमें वे कम से कम सब तरह के ब्राह्मणों के चक्कर से छूट जाएंगे।
तुम कहते होः "वेद में कहा है पूर्ण ज्ञानी विद्वान ही संन्यास ले।"
वेद का अधिकार क्या है? किसी शास्त्र का किसी पर कोई अधिकार नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी स्वयं की चेतना की रोशनी में जीना चाहिए। और कौन है पूर्ण विद्वान, किसको पूर्ण विद्वान कहेगा वेद? बुद्ध को पूर्ण

विद्वान कहेगा? क्योंकि वेद तो बुद्ध को आते नहीं। महावीर को कहेगा? महावीर को भी नहीं आते। जरथुस्त्र को कहेगा, लाओत्सु को कहेगा? इनको भी नहीं आते। सुना ही नहीं, नाम ही नहीं सुना। जीसस को कहेगा? मोहम्मद को कहेगा? कभी नहीं। पूर्ण विद्वान किसको कहेगा? वेद? जो चारों वेदों का ज्ञाता हो। और वेदों में है क्या, निन्यानबे प्रतिशत कचरा है! उस कचरे को जो इकट्ठा किए बैठा है, वह पूर्ण ज्ञानी!
और वेदों की तुम जरा कथाएं देखो, तो तुम चकित हो जाओगे। इनमें कहीं ज्ञान का कोई प्रमाण नहीं मिलता। बड़ी क्षुद्र वासनाओं से भरे हुए लोग। बड़ी क्षुद्र आकांक्षाएं, प्रार्थनाओं से भरे हुए लोग। इनको शास्त्रों को जान कर भी क्या हो जाएगा? इससे संन्यास का क्या संबंध है?
"और कठोपनिषद में कहा है--जो दुराचार से पृथक नहीं, जिसको शांति नहीं, जिसकी आत्मा योगी नहीं... !"
बड़े मजे की बातें हैं। आत्मा भी कहीं योगी होती है? योग तो शरीर पर ही समाप्त हो जाता है। ध्यान मन पर समाप्त हो जाता है। आत्मा न तो योगी होती है, न ध्यानी होती है। आत्मा तो वह है जो योग और ध्यान के पार साक्षी है; मात्र साक्षी है, कर्ता नहीं। योग तो क्रिया है। योगी होने का अर्थ है शरीर से बंधे होना। ध्यानी होने का अर्थ है मन से बंधे होना। जो ध्यान और योग दोनों के पार चला जाता है, वही आत्मा को जान पाता है।
तुम कहते होः "जिसकी आत्मा योगी नहीं है और जिसका मन शांत नहीं है, तब
वह संन्यास लेकर भी प्रज्ञान योनि, उत्तम ज्ञान या उपदेश से परमात्मा क्या, आत्मा को भी नहीं जान सकता।"
जैसे कि आत्मा के अतिरिक्त कोई और परमात्मा भी है! आत्मा को उसकी परम शुद्धि में जान लेना ही परमात्मा है। आत्मा को जाना कि परमात्मा को जाना। जिसने स्वयं को जाना उसने "उसको" जाना।
इसलिए मुझसे उन्होंने कहा हैः "आप ऐसे गुणों से युक्त स्त्री-पुरुषों
को संन्यास देते हैं?" ऐसे गुणों से युक्त स्त्री-पुरुष आएं तो उनको मैं कहूंगाः तुम्हें संन्यास की कोई जरूरत नहीं है। तुम संन्यासी हो ही, बात ही खत्म हो गई। तुम स्वस्थ हो। मैं तो उन्हें इनकार कर दूंगा। ऐसा व्यक्ति अगर मेरे पास आए तो उसको मैं इनकार कर दूंगा संन्यास देने से, उसको जरूरत ही नहीं है। और अगर ऐसा व्यक्ति मेरे पास संन्यास लेने आता है तो बड़ी हैरानी की बात होगी कि अब इस आदमी को बचा क्या है! जितेंद्रिय है, पूर्ण ज्ञानी है, मन शांत हो गया, आत्मा का बोध हो गया, पूर्ण विद्वान है--अब और बचा क्या है इसको संन्यास लेने के लिए? क्या सिर्फ गेरुआ वस्त्र पहन लेने से कुछ कमी पूरी हो जाएगी? अब वस्त्रों से क्या लेना-देना है? उसे तो मैं संन्यास दूंगा ही नहीं। और तुम कहते हो उसको ही संन्यास देना।
तुम कहते होः "अगर नहीं तो अपने देश... ।"
मेरा कोई देश नहीं है, तुम्हारा होगा। मेरी कोई जाति नहीं है, तुम्हारी होगी। मेरी कोई संस्कृति नहीं है, तुम्हारी होगी। मैं ही नहीं हूं तो मेरा देश क्या, मेरी जाति क्या, मेरी संस्कृति क्या? ये थोथे आग्रह मेरे ऊपर नहीं हैं। यह सारी पृथ्वी, यह सारा अस्तित्व, इसके साथ मैं अपने को एकरूप मानता हूं--एकरूप जानता हूं! और जिस सड़े-गले देश, जाति और व्यक्ति और संस्कृति के नष्ट होने से तुम डर रहे हो, उसको मैं नष्ट करना चाहता हूं। वही तो तुम्हें सड़ा रही है। जिस कैंसर को तुम पकड़े हुए हो और सोच रहे हो यह हमारी आत्मा है, तुम्हारी आत्मा नहीं है। वही तो तुम्हारी आत्मा का घाव है। उसी की मवाद को तो निकालना है। उसी कैंसर को तो निकाल फेंकना है।
मैं तुम्हें अतीत से मुक्त करना चाहता हूं। यह सब तुम्हारा अतीत है-- अपना देश, अपनी जाति, अपनी संस्कृति! ये सब अहंकार की घोषणाएं हैं। मेरे पास जो लोग इकट्ठे हो रहे हैं, ये शुद्ध मनुष्यमात्र हैं। न कोई इटालियन, न कोई जर्मन, न कोई भारतीय, न कोई जापानी। न कोई हिंदू, न कोई मुसलमान, न कोई ईसाई, न कोई बौद्ध। न कोई गोरा, न कोई काला। न कोई स्त्री, न कोई पुरुष। यहां कोई फिकर नहीं है इन सब बातों की। इन टुच्ची बातों में जो लोग पड़े हैं, उनको मानसिक चिकित्सा की जरूरत है। मनुष्य-जाति ने बहुत दुख उठा लिया

है इन्हीं बेवकूफी की बातों के कारण। मैं तो इन सबको होली में डाल देना चाहता हूं। मैं तो एक पृथ्वी चाहता हूं और एक मनुष्यता!
तुम पूछते होः "उक्त गुणों से युक्त व्यक्ति को ही संन्यास दें, अन्य
को नहीं।"
यह प्रश्न है या प्रश्न के नाम पर सीधी अभद्रता? ध्यान रखना, जो बिना मांगे सलाह देता है वह आदमी मूढ़ है। मैंने तुमसे सलाह मांगी नहीं और तुम सलाह दे रहे हो मुझे। सलाह ही नहीं, आदेश दे रहे हो।
और तुम कहते होः "यह भी सत्य है कि जिस प्रकार गुणरहित डाक्टर, प्रोफेसर आदि कार्य नहीं कर सकते, उसी प्रकार संन्यास का भी धर्म है। और अगर गुणरहित है तो उसको संन्यास न दें।"
निश्चित ही, डाक्टर को डाक्टर होना चाहिए, उसका शिक्षण है। प्रोफेसर
को प्रोफेसर होना चाहिए, उसका शिक्षण है। संन्यासी को भी संन्यासी होना चाहिए, उसका शिक्षण है। संन्यास की दीक्षा संन्यास के प्रशिक्षण में प्रवेश है। संन्यास की दीक्षा से कोई सिद्ध नहीं हो जाता। सिद्ध और संन्यासी का वही भेद है। संन्यास है प्रवेश और सिद्ध हो जाना है पूर्णता। संन्यास की प्रक्रिया से गुजर कर कोई सिद्ध होता है।
लेकिन तुम अगर कहो कि सिद्ध को ही संन्यास देंगे, तो तुमने तो बैलों
को गाड़ी के पीछे बांध दिया। अब यह गाड़ी क्या खाक चलेगी! अब इसका चलना असंभव है।
जरूर संन्यास का भी धर्म है, लेकिन संन्यास का धर्म सनातन धर्म नहीं
है और न हिंदू धर्म है, न मुसलमान धर्म है, न ईसाई धर्म है। संन्यास का धर्म का अर्थ तो इतना ही होता हैः अपने स्वभाव के अनुसार जीना, अपने बोध के अनुसार जीना।
इसलिए मेरे पास जो लोग आ रहे हैं, उन्हें मैं दीक्षा दे रहा हूं। उनकी
न पात्रता पूछता हूं, न अपात्रता। क्योंकि पात्रता तो मैं पैदा करूंगा, पूछना क्या है? उन्होंने जिज्ञासा जाहिर की, इतना ही पर्याप्त है। उन्होंने आकांक्षा की संन्यासी होने की, इतना काफी है। और जब परमात्मा उनको जीवन देता है बिना उनकी पात्रता पूछे, तो मैं कौन हूं जो उनको संन्यास देने से रोकूं?
सूफी फकीर जुन्नैद के पड़ोस में एक आदमी रहता था, जो बड़ा व्यभिचारी, दुराचारी, शराबी, सब खूबियां उसमें थीं। जुन्नैद ने एक दिन परमात्मा से कहाः हे प्रभु, इस आदमी को उठा क्यों नहीं लेता? इस आदमी की वजह से कितना अनाचार फैल रहा है!
उस रात जुन्नैद को स्वप्न में परमात्मा दिखाई पड़ा! उसने कहाः जुन्नैद, तुझे इस आदमी के पड़ोस में रहते कितने दिन हुए--केवल सात दिन! और मैं इस आदमी को सत्तर साल से जिंदा रखे हूं। मैं जिसे सत्तर साल से श्वास दे रहा हूं, जीवन दे रहा हूं, उसे तू सात दिन भी बरदाश्त नहीं कर सका! और सिर्फ तू पड़ोस में रह रहा है। तेरा वह कुछ बिगाड़ नहीं रहा है। यह कैसा अधैर्य? और तू यह नहीं देखता कि अगर वह आदमी गलत होता तो मैं उसे जिलाए क्यों रखता? उसमें कुछ राज है, कुछ खूबी है।
जब परमात्मा जीवन देता है तो मैं मानता हूं कि उसने तुम्हें अवसर दिया है संन्यासी होने का। जीवन है क्या? जीवन है संन्यासी होने का अवसर। जीवन है तुम्हारे भीतर जो बीज हैं, उनको फूल बनाने का अवसर। जीवन है तुम्हारे भीतर गुलाब खिलाने का अवसर। मेरे पास तो जो आएगा, बेशर्त उसे संन्यास दूंगा। जुआरी आएगा, शराबी आएगा, चोर आएगा--उसे भी संन्यास दूंगा। क्योंकि मैं मानता हूं कि चोर भी अचोर हो सकता है, जुआरी जुआरीपन छोड़ सकता है। और जिसने कभी हत्या की थी, जरूरी नहीं कि उस हत्या से सदा के लिए बंध गया।
कोई कृत्य किसी व्यक्ति को समग्ररूप से नहीं घेरता है। इसलिए कृत्यों
का मैं कोई हिसाब नहीं रखता। मैं तो व्यक्ति की जिज्ञासा को मूल्य देता हूं, उसकी अभीप्सा को मूल्य देता हूं। संन्यास का अर्थ है, वह परमात्मा की खोज के लिए आतुर है। कितना ही बुरा हो और कितने ही गड्ढे में पड़ा हो और कितने ही अंधकार में हो, अगर सूरज की तलाश है तो मैं उसे साथ दूंगा। न मुझे

वेदों की चिंता है, न तुम्हारे उपनिषदों की चिंता है, न तुम्हारे शास्त्रों की चिंता है।
मैं तो संन्यास की एक नई अवधारणा को जन्म दे रहा हूं। उसका शास्त्र बना लूंगा, उसका वेद बना लूंगा। वेद बनाने में क्या रखा है? शास्त्र बनाने में क्या रखा है? जो भी बात सत्य के अनुसरण में बोली जाती है, वही शास्त्र है और जो बात भी सत्य की उदघोषणा करती है वही वेद है।
समझने की कोशिश करो अशोक कुमार वाचस्पति, समझाने की नहीं।

आए हैं समझाने लोग, हैं कितने दीवाने लोग!

आए हैं समझाने लोग, हैं कितने दीवाने लोग

दैरो हरम में चैन जो मिलता
क्यों आते मैखाने लोग?

जान के सब कुछ भी न जानें
हैं कितने अनजाने लोग

वक्त काम नहीं आते हैं
ये जाने-पहचाने लोग

अब जब मुझको होश नहीं है
आए हैं समझाने लोग

हैं कितने दीवाने लोग, आए हैं समझाने लोग!

दैरो हरम में चैन जो मिलता
क्यों जाते मैखाने लोग?

यह मंदिर नहीं, मस्जिद नहीं, दैरो हरम नहीं। यह तो मयखाना है। तुम यहां कहां की बकवास लेकर आ गए? यह तो रिंदों की जमात है, पियक्कड़ों का मजमा है। और अब तुम मुझे समझाने आए हो, जब कि बात बिल्कुल बिगड़ ही चुकी।

अब जब मुझको होश नहीं है
आए हैं समझाने लोग
हैं कितने दीवाने लोग!

देर कर दी अशोक कुमार वाचस्पति। जरा जल्दी आना था। मैं तो बिगड़ ही गया
और हजारों को बिगाड़ भी चुका। और अब तो यह बात चल पड़ी है, रुकने वाली नहीं है। अब तो यह नया वेद निर्मित होगा, अब तो यह नया शास्त्र बनेगा, बनने ही लगा! अब तो मनुष्यों की एक नई तस्वीर उभरने ही लगी।
मेरा संन्यासी भविष्य के मनुष्य की उदघोषणा है। इसका अतीत से कोई संबंध नहीं है। इसका संबंध वर्तमान से है और भविष्य से है।
अशोक कुमार वाचस्पति, तुम्हें इतना ज्ञान है, संन्यास लो भैया! इतने शास्त्रों के ज्ञाता, अब और क्या पूर्ण ज्ञान होगा? और सभी कुछ तो तुम्हें पता है कि संन्यासी में क्या-क्या होना चाहिए, अब क्या कर रहे हो बैठे- बैठे? नानापेठ में मक्खियां कब तक मारते रहोगे?
सेठ चंदूलाल ने अपने बेटे से कहा; कहना पड़ा, मजबूरी थी, क्योंकि बेटे
ने चंदूलाल से प्रार्थना की कि अब मैं शादी करना चाहता हूं। मेरा एक लड़की से प्रेम हो गया है।
चंदूलाल बोलेः बेटा, मेरी नसीहत याद रखो, कभी शादी न करना।
बेटे ने कहाः पिताजी आपकी बात मान कर अपने बेटे को भी मैं यही नसीहत दूंगा।

सच यह है कि चंदूलाल के बाप ने भी उनको यही नसीहत दी थी और चंदूलाल के बाप को उनके बाप ने यही नसीहत दी थी। बस नसीहत देने में क्या हर्जा है? जब इतना ज्ञान तुम्हें हो गया, तो अब क्या कर रहे बैठे-बैठे नानापेठ में? अब संन्यासी हो जाओ। तुम्हें अच्छा नाम देंगे--स्वामी नानालाल भारती!
दो अफीमची बात कर रहे थे। एक ने पूछाः यार, यदि नदी में आग लग जाए तो सारी मछलियां कहां जाएंगी?
दूसरे ने कहाः तू चिंता मत कर, वे सब पेड़ों पर चढ़ जाएंगी।
पहले ने कहाः तुम भी गजब के आदमी हो जी! हद के बेवकूफ हो! क्या मछलियां गाय-भैंसें हैं जो पेड़ों पर चढ़ जाएं?
ज्ञान की तो बातें कर रहे हो, नशा उतारो, थोड़े मूर्च्छा से जगो! यह सब बकवास मिथ्या है।
चंदूलाल बहुत गुस्से में पहुंचा दुकानदार के पास और बोला कि सुनो जी, यहां से हाथीदांत की जो मैं कंघी ले गया था वह नकली थी।
दुकानदार ने कहाः साहब अगर हाथी भी नकली दांत लगाने लगे हैं तो इसमें मेरा क्या कसूर?

आज इतना ही।

बहुरि न ऐसो दांव
सातवां प्रवचन

संन्यास यानी ध्यान

पहला प्रश्नः ओशो, कुछ बनने की आस में उलझता रहा, कुछ न हुआ। सिर्फ यह बोध रह गया कि मैं हूं। न धन आया, न मकान बना, न संगीत आया, न विद्वान बना। न जीना ही मुझको रास आया। यहां आकर जीवन को एक नई दिशा अनजाने ही दे दी। अतीत भटकाव में बीत गया, वर्तमान संन्यास में, और भविष्य का निर्णय आप करें, क्या होगा?

दीपक भारती! जीवन में एक ही उलझाव है, बस एकमात्र उलझाव--और सबके जीवन में निरपवाद रूप से--कुछ बनने की आशा। तुम जो हो हो, अन्यथा नहीं हो सकते हो। अन्यथा होने की चेष्टा में ही चिंता है, विषाद है, संताप है। अन्यथा होने की चेष्टा में ही दुष्ट-चक्र पैदा होता है। फिर तुम अपने हाथ से नई-नई भंवरे खड़ी करते हो; डूबते हो, उबरते हो; डूबते हो, उबरते हो। तुम्हारी जिंदगी फिर एक लंबे सपनों का सिलसिला और हर सपने का बिखराव बन जाती है। गुलाब अगर कमल बनना चाहे तो विक्षिप्त हो ही जाएगा। चंपा अगर चमेली बनना चाहे तो रोग निश्चित है। जो जो है, जो जैसा है, वैसे के स्वीकार का नाम ही संन्यास है। संन्यास का अर्थ हैः तथाता; समग्ररूपेण अपने को अंगीकार कर लेना--किसी हारी हुई मनःस्थिति में नहीं, किसी पराजय में नहीं, सांत्वना के लिए नहीं--क्योंकि वह सब तोझूठ होगा; वरन समझपूर्वक, ध्यानपूर्वक इस सत्य को दर्शन करके कि गुलाब गुलाब है और गुलाब होकर सुंदर है, अप्रतिम है, और कोई जरूरत नहीं है कि कमल बने। अगर सारी पृथ्वी पर कमल ही कमल हों तो पृथ्वी का सौंदर्य खो जाएगा। मैं नहीं चाहता कि सारी पृथ्वी पर धनुर्धारी राम दिखाई पड़ें। रामलीला हो जाएगी। रामलीला देखने का मजा भी चला जाएगा।
जीवन में वैविध्य है। विविधता में अपूर्व सौंदर्य है, प्रसाद है। इसलिए परमात्मा एक जैसे दो व्यक्ति कभी पैदा नहीं करता। दो जुड़वां बच्चे भी बिल्कुल एक जैसे नहीं होते। दो पत्थर भी एक जैसे नहीं होते। दो पत्ते भी एक जैसे नहीं होते। लेकिन सदियों-सदियों से पंडित-पुरोहितों का जाल तुम्हें उलटी ही बातें समझाता रहा है। मनुष्य-जाति की सारी आधारशिलाएं गलत हैं, भ्रांत हैं, क्योंकि उनके बीच में महत्वाकांक्षा का जहर है। प्रत्येक बच्चे को हम कहते हैंः कुछ बनो, कुछ करके दिखाओ! कुछ हो जाओ। यूं ही न मर जाना। चार दिन की जिंदगी मिली है, यश कमाओ, नाम कमाओ, पद-प्रतिष्ठा, छोड़ जाओ इतिहास के पृष्ठों पर अपनी स्मृति के चिह्न।
लेकिन समय की रेत पर किसके चिह्न टिकते हैं? और इतिहास के पृष्ठों पर किसी पाद-टिप्पणी में अगर तुम्हारा नाम रह भी गया तो क्या लाभ है, क्या सार है? सिकंदर ने पूरा जीवन पृथ्वी का विजेता होने में गंवाया, चलो रह गया इतिहास में नाम, मगर जिंदगी तो हाथ से गई, अमृत नहीं बरसा जीवन में, संतोष के फूल नहीं खिले जीवन में, तृप्ति का नृत्य नहीं उठा जीवन में। जीवन तो एक भाग-दौड़ रही, आपा-धापी रही। हां, इतिहास के पन्ने पर नाम छूट गया। तो इतिहास के पन्ने को चाटोगे? और फिर तुम मर ही गए, इतिहास में नाम रहा कि न रहा, क्या फर्क पड़ता है।
दीपक भारती, तुम कहते होः "कुछ बनने की आस में उलझता रहा, कुछ न हुआ।"
हो ही नहीं सकता। कसूर तुम्हारा नहीं, भाग्य का नहीं, अतीत जन्मों के कर्मों का नहीं--सिर्फ एक भ्रांति का हैः तुमने कुछ होना चाहा। तुम कुछ हो ही! तुम जो हो उसको अंगीकार करो तो उसका आविष्कार भी कर सकोगे। अंगीकार में ही आविष्कार है। जिसे हम इनकार करते हैं, उससे हम मुंह मोड़ लेते हैं। जिससे हम इनकार करते हैं, उसे हम देखना भी नहीं चाहते। दुश्मन को कौन देखना चाहता है? उससे हम बच कर निकलते हैं। उसकी हम उपेक्षा करते हैं। तो जिसने अपने को अस्वीकार करना शुरू किया--और कुछ बनने की आशा का एक ही अर्थ होता है कि अपने को अस्वीकार करना--वह अपने से बचने लगता है। वह अपने से भागने लगता है। वह अपने से दूर-दूर होने लगता है। वह और सब चीजों में

उलझेगा, अपने भर से वंचित रहेगा--और वहीं है जीवन का सार-तत्व! और वहीं है तुम्हारे प्राणों के ऊर्जा का केंद्र। वहीं है स्वर्ग, वहीं है मोक्ष।
वहीं से बनेगा तुम्हारे जीवन का विकास, गति, क्रांति।
मगर अंगीकार पहली शर्त है। और अंगीकार--अहोभावपूर्वक। अंगीकार--आनंद से, कृतज्ञता से। यह मेरी बुनियादी सीख है।
महत्वाकांक्षा तुम्हें सिखाई गई है। मैं तुम्हें महत्वाकांक्षा- मुक्ति सिखाता हूं। जो महत्वाकांक्षा से मुक्त है, वह संसार से मुक्त है। मैं नहीं कहता संसार से भागो। कोई जरूरत नहीं। सिर्फ महत्वाकांक्षा का पागलपन गिर जाने दो। जो हो उसमें रसमग्न होओ। जो हो उसके लिए परमात्मा को धन्यवाद दो; शिकायत नहीं, शिकवा नहीं--अनुग्रह! और तब प्रार्थना सहज ही उठेगी, उठानी भी न पड़ेगी। और फिर तब प्रार्थना ईसाई नहीं होगी, हिंदू नहीं होगी, जैन नहीं, बौद्ध नहीं--सिर्फ प्रार्थना होगी। शब्द भी नहीं होंगे उसमें, सिर्फ भाव की अर्चना होगी, सिर्फ मौन गीतांजलि होगी। चुपचाप! सिरझुक जाएगा इस विराट अस्तित्व के प्रति, क्योंकि जो इसने हमें दिया है क्या हम उसके अधिकारी हैं? क्या हम उसके पात्र हैं?
जीसस की प्रसिद्ध कहानी है, बहुत प्रीतिकर है। छोटी सी कहानी, सरल सी कहानी, लेकिन अर्थ बड़े दूरगामी हैं। कहानी है कि एक अंगूर के बगीचे के मालिक ने, अंगूर पक गए हैं, सुबह-सुबह कुछ मजदूर बुलाए। अंगूरों को तोड़ना है। अब ज्यादा देर अंगूरों को छोड़ा नहीं जा सकता, अन्यथा वे सड़ जाएंगे, अन्यथा अपने आप गिरने लगेंगे। लेकिन वे मजदूर कम थे। दोपहर उसने और मजदूर बुलाए। वे भी कम पड़े। सांझ उसने और मजदूर बुलाए। सांझ को जो मजदूर आए, वे तो ऐसे समय आए जब कि दीये जलने का समय होने लगा था, अंधेरा उतरने लगा था। काम बंद कर रहे थे और मजदूर। फिर उसने सारे मजदूर इकट्ठे किए और सबको बराबर-बराबर तनख्वाह बांट दी। स्वभावतः जो सुबह आए थे, खिन्न हुए, नाराज हुए। आखिर आदमी थे! तुम होते तो तुम भी नाराज होते। उन्होंने कहा कि यह कैसा अन्याय है, हम सुबह से खून-पसीना कर रहे हैं, हमें भी उतनी ही तनख्वाह; जो दोपहर आए, आधे दिन काम किया उनको भी उतनी तनख्वाह! और यह भी हम बरदाश्त कर लेते, मगर जो अभी-अभी आए, जिन्होंने काम किया ही नहीं, उन्हें भी उतनी ही तनख्वाह! अन्याय की भी कोई सीमा होती है!
वह मालिक हंसने लगा। उसने कहाः तुमसे एक बात पूछूं। मैंने तुम्हें जो दिया है वह तुम्हारी मजदूरी से कम है?
उन्होंने कहा कि नहीं, हमारी मजदूरी से तो ज्यादा है। जितना हमने मांगा था सुबह, उससे तो दुगुना है।
उस मालिक ने कहाः तुम उसके लिए मुझे धन्यवाद नहीं दे रहे कि मैंने तुम्हें दुगुना दिया। फिर यह संपत्ति मेरी है, मैं किसी को लुटाऊं, तुम्हें शिकायत कैसी? तुम हो कौन? जो दोपहर आए, उनको भी मैंने उतना दिया और जो अभी-अभी आए जिन्होंने काम किया नहीं, उनको भी उतना दिया--इसलिए नहीं कि वे पात्र हैं, इसलिए नहीं कि उन्होंने श्रम किया है, बल्कि इसलिए कि मेरे पास बहुत है। मेरे पास देने को बहुत है। मैं तलाश करता हूं कि किसको दूं। जो मिल जाता है उसको देता हूं। मैं अपने आधिक्य से देता हूं।
जीसस कहते थेः परमात्मा ने तुम्हें दिया है अपने आधिक्य से। उसके पास जरूरत से ज्यादा है। उसके पास इतनी आंखें हैं, सो तुम्हें आंखें दे दीं, अन्यथा तुम्हारी कोई पात्रता न थी। उसके पास इतना जीवन है कि तुम्हें जीवन दिया, अन्यथा तुम्हारी कोई योग्यता न थी। उसके पास इतना प्रेम है कि तुम्हें प्रेम की क्षमता दी, अन्यथा तुमने इसे अर्जित न किया था। मगर कोई धन्यवाद नहीं, उलटी शिकायत।
महत्वाकांक्षा शिकायत सिखाती है। और महत्वाकांक्षा कभी भरती नहीं। कभी नहीं भरती! हारे तो भी हारे, जीते तो भी हारे! महत्वाकांक्षा जीत जानती ही नहीं। मगर इस पर ही हमने अब तक मनुष्य के जीवन-आधार रखे हैं। इसलिए हमने एक रुग्ण और विक्षिप्त मनुष्यता को जन्म दिया है। यहां हर आदमी बीमार है। यहां कभी-कभी कोई स्वस्थ आदमी हो पाया--कोई बुद्ध, कोई महावीर, कोई कृष्ण, कोई क्राइस्ट। कभी लाखों में एकाध व्यक्ति के जीवन में स्वास्थ्य के फूल खिले। और सारे लोग तो सड़ते रहे और अपने ही हाथ से सड़ते रहे। खुद गड्ढे खोदे

और गिरते रहे। अपने ही हाथ से हड्डी-पैर तोड़ते रहे। अपने ही हाथ से जीवन गंवाते रहे।
तुम कहते हो दीपक भारतीः "कुछ बनने की आस में उलझता रहा, कुछ न हुआ।"
क्या तुम सोचते हो, कुछ हो जाता तो आशा पूरी हो जाती? तो भी पूरी न होती। आशा आगे हट जाती। आशा तो ऐसे है जैसे क्षितिज, दिखता है यह रहा, यह रहा, जरा चलूं कि पहुंच जाऊं; मगर कोई कभी क्षितिज तक पहुंचा है? तुम आगे बढ़ते हो, क्षितिज भी आगे बढ़ जाता है। तुम दस हजार रुपये चाहते हो, जिस दिन मिल जाएंगे उस दिन दस लाख चाहोगे। दस लाख मिल जाएंगे, दस करोड़ चाहोगे। तुम मांगते ही रहोगे। तुम्हारा मन कभी भरेगा नहीं। यह भरना जानता नहीं। बुद्ध ने कहा हैः तृष्णा दुष्पूर है। क्यों? क्योंकि तृष्णा बुनियाद में ही भूल है।
तुम कहतेः "सिर्फ यह बोध रह गया कि मैं हूं? न धन आया... ।"
आ जाता तो भी नहीं आता। जिनके पास आ गया है, जरा उनकी तरफ देखो। क्या आया? जिनके पास पद आ गए हैं, उनके पास क्या आया? मेरे पास धनी आकर भी यूं ही रोते हैं कि जिंदगी गंवा दी, ठीकरे इकट्ठे हो गए, अब क्या करें? हाथ से जीवन तो सरक गया, अब तो समय भी नहीं बचा। और हम कंकड़-पत्थर बीनते रहे। हमने समझा था हीरे-जवाहरात हैं।
फिर एक आदत बन जाती है। दौड़ने की भी आदत होती है, चिंता की भी आदत होती है। तृष्णा की भी आदत होती है। यह दिखाई भी पड़ने लगता है कि अब क्या दौड़ने से सार है, करोड़ों रुपये मेरे पास हैं! आखिर बिरला को अब दौड़ने से क्या सार है? या टाटा को अब दौड़ने से क्या सार है? अब क्या है जिसकी कमी है! मगर दौड़ की आदत हो गई। अब सब है, मगर वह जो दौड़ की आदत बन गई है, वह धक्का देती है। वह कहती हैः दौड़े चलो, और कमाओ, और कमाओ। वह जो "और" पकड़े हुए है प्राणों को, छोड़ता ही नहीं।
तुम मकान भी बना लेते तो क्या होता! महल बनाने की आकांक्षा पैदा हो जाती। तुम संगीत भी सीख लेते तो क्या होता? कितने-कितने बड़े संगीतज्ञ हैं! वैसे ही दीन-हीन, जैसा कोई और। और विद्वान कुछ कम हैं? मोहल्ले-मोहल्ले हैं, गांव-गांव हैं। क्या पाया है उन्होंने?
"न जीना ही मुझको रास आया"--तुम कहते हो।
स्वभावतः जब ये सब दौड़ें हार जाएंगी और जब हर जगह पराजय मिलेगी तो जीवन में उदासी आएगी। लगेगा बेकार है जीवन। क्या सार जीने से? सफलता ही नहीं तो सार कहां? अहंकार की तृप्ति मांग रहे थे तुम और वह नहीं मिली, वह किसी को भी कभी नहीं मिलती है। तो उसका अंतिम परिणाम एक ही हो सकता है कि क्यों न समाप्त कर दूं इस जीवन को?
आत्महत्या का भाव क्यों पैदा होता है आदमी को? उसके मनोवैज्ञानिक कारण हैं। यह बड़ी मजेदार दुनिया है। यहां हम ही महत्वाकांक्षा सिखाते हैं, हमारे ही विश्वविद्यालय महत्वाकांक्षा सिखाते हैं और हमारी ही अदालतें आत्महत्या करने वाले या सोचने वाले को दंडित करने का आयोजन करती हैं। ये विश्वविद्यालय हमारे, ये अदालतें हमारी! ये विश्वविद्यालय में ही शिक्षित होते हैं अदालत के जज। ये विश्वविद्यालय ही सिखाते हैं कि आत्मघात बुरी बात है। और ये ही विश्वविद्यालय सिखाते हैं कि महत्वाकांक्षा शुभ है, सुंदर है, लक्ष्य है। कोई देखता भी नहीं कि दोनों के बीच बड़ा संबंध है। महत्वाकांक्षी हमेशा ही एक न एक दिन आत्महत्या के कगार पर पहुंच जाएगा। जब कभी भी जीतेगा नहीं, जीतेगा नहीं, तो एक न एक दिन सोचेगाः क्या करना है, कब तक धोखा देना है? कब तक झूठा हंसू? जब कि हंसी आती नहीं, हंसने को कुछ है नहीं। कब तक मुस्कुराऊं? ये झूठे ओंठ कब तक फैलाऊं? यह कब तक लोगों को दिखलाता फिरूं कि मजे में हूं जब कि भीतर कोई मजा नहीं? कब तक यह ऊपर-ऊपर की प्रवंचना जारी रखूं?

जीने की शर्त बड़ी जालिम है
कुछ तो गिरवी यहां रखना होगा!
छिप-छिप के दोस्त,
कभी बिकना होगा!!

सबके सब व्यापारी
और तामाशाई हैं!
बाहर मसीहा हैं
भीतर कसाई हैं!!
पर सबसे,
मुस्का के मिलना होगा!

नये-नये चेहरों में
लोगों से मिलना है!
अवसर की तर्ज लिए--
झूठ-मूठ हंसना है!!
चुन-चुन के
शब्दों को, कहना होगा!

स्वाभिमान मिलता है,
केवल किताबों में!
मान यहां मिलता है,
वक्त के हिसाबों में!!
बहती हवा के साथ,
बहना होगा!
जीने की शर्त बड़ी जालिम है
कुछ तो गिरवी यहां रखना होगा!

छिप-छिप के दोस्त
कभी बिकना होगा!!

और क्या गिरवी रखना पड़ता है? आत्मा गिरवी रखी जाती है! ठीकरे हाथ पड़ते हैं, जीवन लुट जाता है। और जिम्मेवार कोई और नहीं, हम ही जिम्मेवार हैं। हमने ही जीवन को गलत ढंग से पकड़ने की कोशिश की।
अच्छा ही हुआ कि न बने विद्वान। कहीं भटक जाते शब्दों के जंगल में। बहुत विद्वान भटक गए हैं। शब्दों का जंगल बड़ा है, उसको पार करते-करते जन्म-जन्म लग जाते हैं। अच्छा हुआ, न धन आया। आ जाता तो और, और... निन्यानबे का चक्कर पैदा होता।
यह कहानी तो तुमने सुनी ही है--एक सम्राट को उसका मालिश करने वाला रोज-रोज आता था। सम्राट चकित था। सिर्फ एक रुपया मिलता था मालिश करने वाले को। लेकिन उसकी मस्ती का कोई हिसाब नहीं! उस जैसा आनंदित आदमी सम्राट ने नहीं देखा था। बड़े-बड़े सम्राटों से उसकी दोस्ती थी, बड़े धनपतियों से, बड़े वजीर उसके थे, नगरसेठ, ब--ड़े सेनापति; मगर यह मालिश करने वाला नाई बेजोड़ था। सदा खिला रहता फूल की तरह। सदा सुवासित। पैरों में चाल और मस्ती! जैसे कोई अपूर्व धन इसको मिल गया है! कि जैसे किसी साम्राज्य का मालिक है! ईर्ष्या होती थी सम्राट को। उसने अपने वजीर से कहा कि इस नाई के आनंद का राज क्या है?
वजीर ने कहाः कुछ खास राज नहीं है। कुछ दिन मुझे मौका दें। यह सब आनंद वगैरह मिटा दूंगा।
उसने उसी रात निन्यानबे रुपये एक थैली में भर कर उस गरीब के घर में फेंक दिए। उसे एक रुपया रोज मिलता था। पुरानी कहानी है, एक रुपया उन दिनों में बहुत था, जरूरत से ज्यादा था। खुद भी खाए, पड़ोस के लोगों को भी खिलाए; भंग भी छाने, दूध भी पीए, डंड-बैठक भी लगाए, कपड़े भी अच्छे! शाम को बेले का गजरा डाल कर अकड़ कर शान से बाजार में घूमे भी! मजा ही मजा था। और काम कुल सुबह था थोड़ा सा कि जाकर सम्राट की मालिश कर आना, रुपया मिला कि जिंदगी आनंद ही आनंद थी, दिन भर मजा करना। कल की कोई चिंता न थी, कल सुबह फिर मालिश, फिर रुपया मिलेगा। भविष्य था ही नहीं, अतीत की कोई फिकर नहीं थी, कभी कुछ

इकट्ठा किया नहीं, उसकी चिंता नहीं थी। रोज मिल जाता था, रोज जी लेता था।
रोज जी रहा था। वर्तमान में जी रहा था। अनजाने वर्तमान से संबंध जुड़ गया था तो आनंदित था।
इस वजीर ने सब गड़बड़ कर दिया। निन्यानबे की थैली फेंक दी। सुबह उठा। निन्यानबे रुपये गिने। कहा, चकित हुआः कहां से आ गया! सोचा परमात्मा जब देता है छप्पर फाड़ कर देता है। अब एक सवाल उठा कि आज एक रुपया मिलेगा, आज उपवास कर लूं। आज नहीं भंग पीनी, और आज नहीं बेले के फूल खरीदने हैं, और आज नहीं बाजार जाना है, और आज नहीं मिठाई खानी है, आज नहीं कुछ भी करना। यह एक रुपया बच जाए तो सौ रुपये पूरे हो जाएं।
आदमी का मन कुछ ऐसा है! आदमी के मन में कुछ एक बड़ी बुनियादी बात हैः हर चीज को पूरा करने की आकांक्षा। तुम्हारा एक दांत गिर जाए तो जीभ वहीं-वहीं जाती है। जब तक थी दांत कि स्थिति, कभी जीभ न गई। जब तक दांत था, कभी जीभ न गई। अब नहीं है तो वहीं-वहीं जाती है। लाख बचाओ, वहीं-वहीं जाती है। वह जो खाली जगह है, उसको भरना चाहती है।
वैसा वह रुपया जो एक खाली था... दूसरे दिन उसने उपवास कर लिया। वह एक रुपया! एक ही दिन की तो बात थी, सोचा। रुपया एक डाल दिया। दूसरे दिन ही सम्राट थोड़ा हैरान हुआ। वह कुछ सुस्त सा दिखाई पड़ा। भोजन न किया था दिन भर। मालिश भी की तो वह जान न थी, वह गुनगुनाहट न थी। लेकिन जब सौ इकट्ठे हो गए तो मन कहीं मानता है! मन ने कहाः ऐसे धीरे-धीरे बचाऊं तो दो सौ भी हो सकते हैं। अब से सिर्फ आठ आने ही खर्च करने हैं, आठ आने बचाने हैं। अरे कुछ बचा लो भविष्य के लिए भी, बुढ़ापे के लिए भी। सब चिंताएं आने लगीं, कभी जिन चिंताओं में न घिरा था। तो आठ आने बचाने लगा। लेकिन फिर और लोभ पकड़ा कि आठ आने बचाते-बचाते तो कब दो सौ रुपये हो पाएंगे, बारह आने बचा लूं। काम तो चार आने में ही चल जाएगा। और जीवन में तो सादगी होनी ही चाहिए।
आदमी अपने को कैसे-कैसे समझाता है! सादा जीवन, उच्च विचार! एक तख्ती खरीद लाया, लगा ली अपने घर के भीतर--सादा जीवन, उच्च विचार! चार आने से फिर दो ही आने पर आ गया। फिर एक आने पर ही आ गया। जमाना सस्ता था, एक आने में भी काम चल जाता था। मगर सूखने लगा, पत्तेझरने लगे, पतझड़ आ गया। जीवन में वह जो बहार थी, वह जो वसंत था, वह खो गया। वह जो मधुमास था, न मालूम कहां तिरोहित हो गया! महीने भर में उसकी हालत बिगड़ गई। चेहरा लंबा, बिल्कुल साधु- महात्मा मालूम होने लगा! उदास, उदासीन, विरक्त--जैसे जीवन में कुछ भी नहीं है, सब बेकार! आता, काम भी करता, क्योंकि करना था, लेकिन अब काम करने में किसी तरह का रस नहीं था। सम्राट ने पूछाः तुझे हो क्या गया?
उसने कहाः अब आपसे क्या छिपाना! न मालूम कौन दुष्ट मेरे घर में निन्यानबे रुपये की थैली फेंक गया। जिस दिन से उस किसी ने यह हरकत की है, मेरे प्राण संकट में हैं। मैं मरा-मरा हुआ जा रहा हूं। मेरी जान ले ली। सम्राट ने वजीर को बुलाया। समझ में आ गई उसे बात कि किसने फेंकी होगी। वजीर को पूछा कि तूने निन्यानबे की थैली फेंकी? उसने कहाः हां, आपको बताना था कि इसका राज क्या है। इसका राज कुल इतना है कि यह आज जी रहा है। इसको कल पैदा करवा दो, इसके जीवन में कुछ होने की धुन चढ़ा दो--मारा जाएगा। देख ली यह हालत इसकी!
मिल जाता है तो निन्यानबे का चक्कर पैदा होता, वह जान ले लेता; नहीं मिलता तो लगता है जीवन बेकार है, क्या फायदा जीने से? जीवन रास नहीं आया। अब तुम कहते होः "यहां आकर जीवन को एक नई दिशा अनजाने ही दे दी।"
यह दिशा तुम ठीक से समझ लो, अन्यथा फिर चूक जाओगे। अगर ठीक-ठीक पकड़ो तो
यह दिशा नहीं है। संन्यास कोई दिशा नहीं है, दिशा से मुक्ति है। दिशा में तो फिर भविष्य आ गया और वह तुम्हारे प्रश्न में भी आ गया।
तुम कह रहे होः "अतीत भटकाव में बीत गया।"
अभी भी बोझिल है अतीत तुम्हारे ऊपर। "और वर्तमान संन्यास में, और भविष्य का आप निर्णय करें।" अभी भविष्य गया नहीं है। तुम नहीं करोगे निर्णय तो मुझसे करवाओगे। मकसद यह हुआ कि अब तक तुम अपने को दोषी ठहराते थे, अब तुम मुझे दोषी ठहराओगे। मगर भविष्य अभी है। जब तक अतीत है तब तक भविष्य है। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जाते हैं, साथ ही जाते हैं;

रहते हैं, साथ ही रहते हैं। और जब तक अतीत और भविष्य है, वर्तमान नहीं है, सिर्फ भ्रांति है।
यहां एक मौज है, एक मस्ती है। यहां एक हवा है, एक वातावरण है। यहां इतने संन्यासियों के बीच स्वभावतः तुम्हें भी लगता होगा बड़ा आनंद है। घर लौटते ही खो जाएगा, क्योंकि तुम्हारा अतीत और भविष्य अभी गया नहीं। अभी निन्यानबे का चक्कर मौजूद है। अभी भी तुम अतीत की सोच रहे हो, जिसमें कुछ भी नहीं है।
आदमी अतीत को छोड़ नहीं पाता, क्योंकि उसमें उसका अहंकार जुड़ा होता है
कि मैं क्या इतना मूर्ख था कि मैंने इतने दिन गंवाए! चाहे दिशा गलत पकड़ ली हो, काम तो मैं ठीक ही कर रहा था। अब दिशा भी ठीक मिल गई। काम तो तुम वही करोगे, अब दिशा भी ठीक मिल गई। मैंने बिना मार्गदर्शन के आपा-धापी की थी। अब मार्गदर्शन मिल गया। अब मार्गद्रष्टा मिल गया। अब गुरु मिल गया।... तो तुम गलती में पड़ गए।
मैं वैसा गुरु नहीं हूं, जो दिशाएं देता है। मैं वैसा गुरु हूं जो दिशाएं छीन लेता है; जो महत्वाकांक्षाएं छीन लेता है, जो सब छीन लेता है; जो तुम्हें निपट नग्न छोड़ देता है--तुम जैसे हो वैसे।
और मेरी मौलिक क्रांति यही है कि मैं तुमसे कहता हूं कि तुम जैसे हो, परिपूर्ण हो। कुछ करना नहीं है। तत्वमसि! तुम परमात्मा हो! और क्या करने को है? और क्या जोड़ने को है? जीओ! प्रफुल्लित होकर जीओ! परमात्मा को अभिव्यक्त होने दो! अभिव्यक्त करना है, ऐसा नहीं--होने दो। हो तो ठीक, न हो तो उसकी मर्जी। कोई फूल फूल बने ठीक, कोई फूल कली रह जाए तो भी ठीक। कली का भी अपना सौंदर्य है। कली का भी अपना मजा है। जो हो जाए ठीक। जो न हो ठीक। ऐसी मनोदशा को मैं संन्यास कहता हूं।
तुम कहते होः "कुछ बनने की आस में उलझता रहा, कुछ न हुआ। सिर्फ यह बोध
रह गया कि मैं हूं।"
वह बोध भी अब जाने दो। होना है। "मैं" कहीं भी नहीं है। मैं तो पैदा होता है महत्वाकांक्षा से। महत्वाकांक्षा अहंकार को पैदा करने की कीमिया है, रसायनशास्त्र है। अगर इतना भी बोध रह गया कि मैं हूं, तो फिर सब आ जाएगा, बीज रह गया। और बीज काफी है। जरा सी बात सारे संसार को ले आती है। एक दूसरी कहानी तुमने सुनी होगी। एक सम्राट अपने हाथी से गुजरता था।
एक मंदिर के सामने एक युवक बैठा हुआ था, उठा और सम्राट के हाथी की पूंछ पकड़ कर खड़ा हो गया। सम्राट ने लाख कोशिश की, महावत ने हाथी को बहुत डराया- धमकाया, मारा-पीटा, मगर युवक बड़ा बली था। उसने जो पूंछ पकड़ी, सो हाथी टस से मस न हो सका। भीड़ लग गई। बाजार था। सम्राट की बड़ी बेइज्जती हो गई। हाथी पर चढ़ा बैठा है, है सम्राट, मगर एक युवक ने, एक गरीब युवक ने पानी फेर दिया सारे साम्राज्य पर। दुखी घर लौटा। किसी बुजुर्ग से पूछाः कुछ करना होगा, क्योंकि अक्सर मुझे उस रास्ते से निकलना पड़ता है। अगर यह उपद्रव रोज-रोज होने लगा तो यह बदनामी की बात है। और मुझे बहुत ही हतप्रभ होना पड़ा है।
उस बुजुर्ग ने कहाः चिंता न करो। उस युवक को बुलाया। और कहाः तू करता क्या है?
उसने कहाः कुछ नहीं करता। मेरी मां पीसती है आटा, उतना काफी है। मैं डंड-बैठक लगाता हूं, दूध पीता हूं और यह शंकर जी की मढ़िया, यहीं भंग छानता हूं, यहीं पड़ा रहता हूं। और मेरे पास कुछ काम-वाम है नहीं।
उस बुजुर्ग ने कहाः मां का क्या भरोसा, आज है कल न हो। अरे कुछ सीख ले!
और एक सस्ता काम तुझे बता देते हैं। छोटा सा काम है। इस मंदिर पर सम्राट को बड़ा प्रेम है। तू एक दीया रोज इस पर शाम को जला दिया कर, बस। एक रुपया रोज तुझे मिलेगा।
बात तो जंची युवक को। दीया भर जलाना है! दीया भी मिलेगा, तेल भी मिलेगा, बाती भी मिलेगी--सिर्फ जलाना। जलाने के लिए एक रुपया! मां तो पीस-पीस कर मर जाती है तो दो-आने कमा पाती है दिन भर में। मजा आ जाएगा, इसने सोचा। एक रुपये में तो गुलछर्रे हो जाएंगे। फिर तो कहना ही क्या है! डट कर दूध पीऊंगा, और भी डंड-बैठक लगाऊंगा। इस इलाके में मेरा कोई मुकाबला न रह जाएगा।

रात भर सो नहीं सका। वह एक रुपया घूमता ही रहा। क्या-क्या योजनाएं न बनाईं, क्या-क्या नहीं कर बैठूंगा! अभी रुपया मिला भी नहीं था। और दूसरे दिन जब सम्राट का हाथी निकला और उसने पूंछ पकड़ी और घिसट गया। सम्राट बड़ा हैरान हुआ। उसने बुजुर्ग से पूछाः तुमने क्या किया?
उसने कहाः अभी कुछ किया नहीं, सिर्फ योजना दी है इसको। अभी तुम जब मैं करूंगा तब देखना, हाथी क्या कुत्ते की पूंछ पकड़ेगा तो घिसट जाएगा। अभी तो सिर्फ रात भर सो नहीं सका इसलिए घिसट गया। सुबह डंड-बैठक भी लगा नहीं पाया दिल से। यही फिकर लगी रही कि आज शाम से काम शुरू करना है। और रुपया--एक रुपया--मजा आ जाएगा! क्या-क्या योजनाएं इसने नहीं बना लीं! योजनाएं जब तेज हों तो कौन सोए, कौन डंड-बैठक लगाए! अभी तुम देखो जरा दो-चार दिन।
रुपया उसे मिलने लगा। रोज दीया जलाने की एक चिंता पकड़ गई। इसके पहले उसने चिंता जानी नहीं थी, चिंता से उसकी कोई मुलाकात ही न हुई थी। कुछ करता ही न था। जब मौज आई, सो गए। जब मौज आई, जग गए। जब मौज आई, नदी-स्नान कर आए। जब मौज आई, मित्रों से मिल आए। मौज थी जिंदगी। अब पहली दफा चिंता बनी। बैठा है मित्रों में, लेकिन पूछेः भाई कितने बजे हैं, क्योंकि मुझे जरा दीया जलाना है। गपशप कर रहा है, बीच में से उठ जाए। डंड-बैठक लगा रहा है, घंटाघर की घड़ी देखे कि कहीं शाम का वक्त तो नहीं हो गया है, नहीं तो रुपया चूक जाएगा। बुजुर्ग ने कह दिया थाः अगर एक भी दिन अंधेरा हो गया और दीया नहीं जला, कि रुपया गया!
जब महीने भर बाद सम्राट निकला तो उस युवक को देख कर उसे बड़ी दया आई। वह
तो सूख गया था। वह तो पहचान में भी नहीं आता था। यह क्या हाथी को रोकेगा! वह बुजुर्ग ठीक कहता था कि इसको कुत्ता घसीट देगा।
मनुष्य दोढंग से जी सकता है। एक तो जीने का ढंग हैः अतीत और भविष्य में, अर्थात चिंता का ढंग। और एक ढंग हैः वर्तमान में जीना, अर्थात ध्यान का ढंग। संन्यास यानी ध्यान।
मैं तुम्हारे भविष्य का कोई निर्णायक नहीं हूं। भविष्य है ही नहीं। भविष्य कभी आता है? कल कभी आया है? जो कल गया वह भी नहीं है; जो कल आने को है वह भी नहीं है। जो है वह यह क्षण है--अभी और यहां!
दीपक भारती, इस क्षण में रस लो, डूबो। इसी क्षण से संगीत उठेगा। इसी क्षण से बुद्धत्व उठेगा। इसी क्षण से जीवन एक रास बन जाएगा। इसी क्षण से धन की वर्षा हो जाएगी--ऐसे धन की जिसकी न चोरी होती, न जो छीना जा सकता। और इसी धन से वह मंदिर बनेगा जोशाश्वत है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, गीता, रामचरितमानस और गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं में मेरा विश्वास है और उनसे अनुप्रेरित होकर मैं अपना संपूर्ण जीवन मानव-कल्याण के लिए समर्पित करना चाहता हूं। फिर आप भी तो यही कर रहे हैं। कृपया आशीष दें और सान्निध्य का अवसर दें।

पंडित मोतीलाल जोशी! मैं समझता हूं तुम मुझे समझ नहीं पाए। और आश्चर्यचकित नहीं हूं। पंडितों से मैं आशा ही नहीं करता कि वे मुझे समझ पाएंगे। पंडित से ज्यादा नासमझ आदमी मैंने नहीं देखे। फिर तुम्हारी तो और मुश्किल है। तुम वाराणसी के निवासी हो! पंडित और वाराणसी का!
यह काशी तो नगरी है--तीन लोक से न्यारी! काशी की मूढ़ता का कोई मुकाबला नहीं। इसकी मूढ़ता पांडित्य के इतने जालों में छिप गई है कि उसका पता चलाना भी मुश्किल हो जाता है।
तुम कुछ सुनते रहे, मैं कुछ और कहता रहा। तुम कहां की बातें उठा रहे हो--गीता, रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास!
प्रज्ञा ने मुझसे पूछा है कि क्या भगवान, दीवालों के भी कान होते हैं? पंडितों को छोड़ कर और सबके कान होते हैं। अगर दीवाल पंडित हो, फिर उसके कान नहीं होते। आदमियों के कान दिखाई पड़ते हैं, मगर होते हैं कि नहीं, यह तो अवसर पर ही सिद्ध होता है। सुनते कुछ हैं, समझते कुछ हैं। और अपनी पुरानी संस्कारों की जो व्यवस्था है, उसको हटा कर नहीं सुनते, उसको बीच में रख कर

सुनते हैं। उसमें से कट-छंट कर कुछ बात पहुंचती है, वह बिल्कुल बिगड़ जाती है।
एक सिनेमा-घर के गेट-कीपर को दांत में दर्द हो रहा था। ख्याल रखना, सिनेमा-घर का गेट-कीपर था। वह दौड़ा हुआ डाक्टर के पास गया और बोलाः डाक्टर साहब, दांत में मुझे बहुत दर्द हो रहा है।
कौन से दांत में--डाक्टर ने पूछा।
गेट-कीपर ने कहाः नीचे की बालकनी में, सामने वाली लाइन में, दूसरे नंबर पर।
गेट-कीपर ही है... तो नीचे की बालकनी में सामने वाली लाइन में, दूसरे नंबर पर!
अपनी भाषा, अपने सोचने के ढंग, अपना जाल हटता नहीं है।
मैं जो कह रहा हूं उसका क्या लेना-देना है गीता से? गीता को गुजरे पांच हजार साल हो गए। पांच हजार साल व्यर्थ नहीं गए। पांच हजार साल में बहुत कुछ हुआ है--बुद्ध हुए, महावीर हुए, गोरख हुए, कबीर हुए, नानक हुए, जीसस हुए, जरथुस्त्र हुए, मूसा हुए, मोहम्मद हुए, बहाउद्दीन हुआ, जलालुद्दीन हुआ, अलहिल्लाज मंसूर हुआ। कैसे-कैसे गजब के लोग हुए! वे सब दान दे गए। वे सब मनुष्य की प्रतिमा को निखार गए, उसे नया-नया रंग दे गए। इस चित्र पर बहुत तूलिकाएं चल गईं।
कृष्ण ने सुंदर चित्र बनाया था, मगर अब बहुत पुराना पड़ गया। आदमी बहुत आगे आ गया। कृष्ण के सोचने के ढंग अब दकियानूसी मालूम होंगे। कृष्ण को हिंसा में भरोसा था। आज जो आदमी हिंसा में भरोसा करे, उसको हम सोच-विचारशील आदमी नहीं कह सकते। उन दिनों बात ठीक थी, ठीक रही होगी। आज हिंसा की बात करना तो पूरे मनुष्य-जाति के विनाश का आयोजन करवा देना है। इतने एटम, इतने हाइड्रोजन बम इकट्ठे हैं कि आज से दस साल पहले हम एक-एक आदमी को सात-सात बार मार सकते थे। दस साल पुरानी बात हो गई वह भी, अब तो एक-एक आदमी को हम सात-सात सौ बार मार सकते हैं। पृथ्वी की संख्या बहुत कम--कोई चार अरब--और हमारे पास मारने की संभावना सात सौ गुनी ज्यादा। यह कोई गांडीव धनुष लिए हुए अर्जुन नहीं बैठा है, जिसको गीता का उपदेश दे रहे हो। आज आदमी के पास सामूहिक आत्मघात का आयोजन है। हम इस जैसी सात सौ पृथ्वियों को भस्मीभूत कर सकते हैं! हमें भाषा बदलनी होगी। हमें कुछ बुद्ध से, महावीर से सीखना होगा। कृष्ण से बात को हमें आगे ले जाना होगा।
कृष्ण के सोचने का ढंग वही था--ब्राह्मण का, क्षत्रिय का, शूद्र का। कृष्ण वर्ण-व्यवस्था में विचार करते थे। आज यह बात गई-गुजरी हो गई। आज जो वर्ण-व्यवस्था को मानता है, वह मंदबुद्धि है। उन्हीं मंदबुद्धियों के कारण हरिजन जलाए जा रहे हैं, उनकी स्त्रियों के साथ बलात्कार हो रहे हैं, उनके बच्चों को अग्नि में भूना जा रहा है, उनके झोपड़ों में आग लगाई जा रही है। आज गीता पूरी की पूरी नहीं मानी जा सकती। उसमें से कुछ चुन लो, कुछ हीरे-जवाहरात हों तो चुन लो, बाकी तो कचरा हो गया।
फिर भी, कृष्ण अदभुत व्यक्ति थे। और उस समय तक मनुष्य की चेतना में जो निखार आया था, उसके वे सर्वाधिक प्रखर, सर्वाधिक ज्योतिर्मय पुरुष थे। इसलिए उस समय के लोगों ने उन्हें पूर्णावतार कहा था। मगर अब बात पीछे पड़ गई। अब तो कृष्ण को पूर्णावतार कहना ऐसा ही है, जैसे बैलगाड़ी को वाहन का श्रेष्ठतम साधन कहना। अब आदमी चांद पर पहुंचने लगा। कृष्ण बैलगाड़ी के जमाने के आदमी हैं। मनुष्य विकास कर रहा है।
मैं अतीत से बंधा हुआ नहीं हूं। मैं किसी चीज से बंधा हुआ नहीं हूं।
तो छोटे-छोटे बच्चों को भी यह बात समझ में आ सकती है कि कृष्ण ने जो कहा, अगर आज माना जाए तो सिवाय हिंसा, हत्या, हिरोशिमा और नागासाकी के कुछ भी न होगा। आज जीत तो हो ही नहीं सकती। न कोई जीत सकता है, न कोई हार सकता है। विनाश की इतनी क्षमता है हमारे पास कि जो भी लड़ेगा आज, अगर कोई महायुद्ध हो, तो जो लड़ेंगे वे तो नष्ट हो ही जाएंगे, जो नहीं लड़ेंगे वे भी नष्ट हो जाएंगे। जीतने वाला तो कोई बचेगा नहीं। आदमी की तो बात छोड़ दो, पशु-पक्षी नहीं बचेंगे, पौधे नहीं बचेंगे, जमीन की हरियाली समाप्त हो जाएगी। जीवन ही नष्ट हो जाएगा।

आज गीता की बात को ज्यादा समर्थन नहीं दिया जा सकता। और ये क्षत्रिय
और वैश्य और शूद्र की धारणा... स्वधर्मे निधनं श्रेयः। कृष्ण कहते हैंः अपने धर्म में मरना श्रेयस्कर है। पर धर्मों भयावहः। दूसरे के धर्म में मरना बहुत भयकारक है। और उनका प्रयोजन क्या है? क्षत्रिय को क्षत्रिय की तरह मरना चाहिए। वह उसका धर्म है। कोई क्षत्रिय है! कोई ब्राह्मण है! जो ब्रह्म को जाने वह ब्राह्मण। बुद्ध ब्राह्मण हैं, महावीर ब्राह्मण हैं, मोहम्मद ब्राह्मण हैं, जीसस ब्राह्मण हैं--मेरे हिसाब में। लेकिन कृष्ण कहते हैंः स्वधर्मे निधनं श्रेयः। वे अर्जुन को समझा रहे हैं कि तू क्षत्रिय पैदा हुआ, क्षत्रिय है, तुझे क्षत्रिय में ही, क्षत्रिय के स्वभाव में ही मरना श्रेयस्कर है। तू ये ब्राह्मणों जैसी बातें न कर। तू त्यागियों और तपस्वियों जैसी बातें न कर। तू ये कैसी बातें कर रहा है-- संन्यास, ध्यान, समाधि, योग! तू ये क्या बातें कर रहा है कि जंगल चला जाऊंगा, कि मुझे नहीं लड़ना है! यह तेरा धर्म है, लड़!
कृष्ण समझा-बुझा कर अर्जुन को लड़ा देते हैं। शायद उस दिन की यह जरूरत थी। शायद उस दिन यह ठीक भी था। शायद उस दिन यह न होता तो कौरवों ने बहुत अनाचार किया होता। तो दो बुराइयों के बीच कृष्ण ने कम बुराई को चुन लिया था। मगर आज तो चुनाव का उपाय ही नहीं है।
पंडित मोतीलाल जोशी, तुम्हें कुछ भी पता नहीं है कि हिरोशिमा में जिस दिन बम गिरा उस दिन के बाद मनुष्य दूसरे जगत में प्रवेश कर गया। इतिहास कट गया दो हिस्सों में--हिरोशिमा-पूर्व और हिरोशिमा-पश्चात। हिरोशिमा-पूर्व जो इतिहास था वह सब व्यर्थ हो गया। अब हमें नये ढंग से, नई शैली से सोचना पड़ेगा। हमें जीवन को देखने के नये दृष्टिकोण अपनाने होंगे।
और फिर तुम रामचरितमानस और गोस्वामी तुलसीदास की बातें करते हो! कृष्ण तो फिर भी कम से कम प्रज्ञा पुरुष हैं, तुलसीदास तो सिर्फ एक कवि हैं, इससे ज्यादा नहीं; कोई प्रज्ञा पुरुष नहीं हैं; कोई बुद्ध पुरुष नहीं हैं। उनकी रचनाओं में इसका कोई सबूत नहीं है। उनकी रचनाओं में तो बड़ी ओछी बातें हैं, बड़ी छोटी बातें हैं। सच पूछो तो हिंदू-समाज को भ्रष्ट करने वाले लोगों में गोस्वामी तुलसीदास का जितना हाथ है उतना किसी और व्यक्ति का नहीं है। क्योंकि वे गांव-गांव पर छा गए। उनकी भाषा ग्रामीण है। उनके सोचने का ढंग ग्रामीण है। इसलिए गांव-गांव पर उनका प्रभाव पड़ गया। अपढ़ से अपढ़ आदमी को उनकी चौपाइयां याद हैं और उनकी चौपाइयों से जी रहा है और उनकी चौपाइयों को आधार मान कर चल रहा है। इस देश के सड़े-गलेपन से अगर छुटकारा पाना हो तो गोस्वामी तुलसीदास से भी छुटकारा पाना होगा।
तुम तो बच्चों जैसी बातें कर रहे हो। अब तो बच्चे भी थोड़े ज्यादा समझदार हो गए।
श्रीमान जी का छोटा लड़का अपनी उम्र के हिसाब से कुछ ज्यादा ही होशियार था। एक दिन घर आया तो उसके हाथ में लाइब्रेरी की एक पुस्तक थीः बच्चों का लालन-पालन। उसकी मां ने आश्चर्य से पूछाः क्यों मुन्ने, इस पुस्तक का तुम क्या करोगे?
मुन्ने ने जवाब दियाः मैं इसे पढ़ कर जानना चाहता हूं कि मेरा पालन-पोषण उचित तरीके से किया जा रहा है या नहीं।
बच्चे भी होशियार हुए जा रहे हैं--और तुम कैसी बचकानी बातें कर रहे हो!
और तुम कहते होः "मैं गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं में विश्वास करता हूं।"
विश्वास तो सिर्फ अंधे लोग करते हैं। आंख वाले लोग विश्वास नहीं करते, जानते हैं। मेरा तो सारा जोर जानने पर है, विश्वास पर नहीं। जब जाना जा सकता हो तो विश्वास क्यों करना? जब अनुभव किया जा सकता हो तो अंधे की तरह क्यों मानना? ईश्वर तो अनुभूति बन सकता है। विश्वास तो सस्ती चीज है, मुफ्त मिल जाती है। कुछ करना नहीं--ध्यान नहीं, समाधि नहीं, प्रार्थना नहीं। मान लिया, क्योंकि और लोग मानते हैं। और लोग हजार तरह की गधापच्चीसियों में मानते हैं, तो तुम भी मानोगे! क्योंकि और लोग मानते हैं, बापदादे मानते रहे। अब बापदादों के खिलाफ थोड़े ही जा सकते हैं। जैसा बापदादे मानते रहे वैसा हम मानेंगे। तो विकास कैसे होगा?

विश्वास धर्म नहीं है, अविश्वास धर्म नहीं है, फिर धर्म क्या है? अविश्वास नास्तिकता लाता है, विश्वास आस्तिकता लाता है। दोनों धर्म नहीं हैं। धर्म है--जिज्ञासा, मुमुक्षा, खोज, अन्वेषण। न तो मानने की जल्दी करो, न न मानने की जल्दी करो। अपने को मुक्त रखो, खोजो। और जो तुम्हारे अनुभव में आ जाए उसको ही मानना। फिर उसको मानने का सवाल ही नहीं उठता, मानना ही पड़ेगा। अंधा आदमी प्रकाश में विश्वास करता है; आंख वाला विश्वास नहीं करता, जानता है।
मैं तुम्हें आंख वाला बनाना चाहता हूं। मैं तो विश्वास का दुश्मन हूं।
और तुम कहते होः "मैं गोस्वामी तुलसीदास से अनुप्रेरित होकर अपना संपूर्ण जीवन मानव-कल्याण के लिए समर्पित करना चाहता हूं।"
तुम्हारे पास है क्या जिसको तुम मानव-जीवन के कल्याण के लिए समर्पित करोगे? समाधि है? आनंद है? ईश्वर-अनुभव है? मोक्ष की प्रतीति है? क्या है तुम्हारे पास?
बुद्ध के पास एक आदमी आया। बहुत बड़ा धनी था उस समय का--असाधारण धनी था! उसने बुद्ध को कहा कि आपकी बातों से मैं अनुप्रेरित होकर अपना सारा जीवन मनुष्य के कल्याण के लिए लगा देना चाहता हूं।
बुद्ध ने उसे गौर से देखा और कहते हैं, बुद्ध के जीवन में पहली बार किसी ने उनकी आंखों में आंसू देखे। झर-झर दो बूंद आंसू टपक गए। वह सेठ तो बहुत हैरान हुआ। उसने कहाः आपकी आंख में आंसू! मैंने कुछ गलत बात कही? बुद्ध ने कहाः नहीं, मैं इसलिए चिंतित और दुखी हो गया कि तुम्हारे पास
है ही क्या जो तुम मनुष्य-जाति का कल्याण करोगे? अभी तुम्हारा ही कल्याण नहीं हुआ। बुझा दीया और दीयों को जलाने चला! मुर्दा और लोगों को जीवन देने चला! खतरा यही है कि बुझा दीया कहीं और जले दीयों को न बुझा दे।
और यही हुआ है। यह सारी दुनिया में जो धर्मों के प्रचारक घूम रहे हैं-- ईसाई मिशनरी और आर्य-समाजी और तरह-तरह के मार्के और ट्रेडमार्क के लोग, तिलकधारी इत्यादि-इत्यादि और लगे हैं कल्याण में! और कल्याण किसका हो रहा है? कल्याण किसी का हो नहीं रहा है। हिंदू को ईसाई बना लो, ईसाई को हिंदू बना लो। खींचातानी करो आदमी की। कोई उसको ईसाई बना लेता है, फिर कोई भड़का कर उसको आर्य-समाजी बना देता है। कोई किसी को जैन बना लेता है, कोई किसी को हिंदू बना लेता है। मगर कल्याण! जो हिंदू पहले से हैं उनका कल्याण हो गया? जो ईसाई पहले से हैं उनका कल्याण हो गया? जो आदमी कल्याण करने आ गया उसका कल्याण हो गया?
मैं ईसाई मिशनरियों से बहुत मिलता रहा। और मैं उनसे एक बात जरूर पूछता रहा कि तुम बड़ी सेवा में लगे, मगर यह तो मुझे बताओ कि तुमने अपने जीवन में कुछ पाया है, कोई ज्योति मिली है, कोई अनुभव हुआ है? तो तुम बांटोगे क्या? दीन हो तुम, दरिद्र हो तुम, भिखमंगे हो तुम, बांटोगे क्या? तुम्हारी खुद की हालत अभी कहां इस योग्य है कि तुम किसी का कल्याण करो? अब पंडित मोतीलाल जोशी, तुम जीवन समर्पित करना चाहते हो। जीवन में तुम्हारे है क्या? भिक्षापात्र भी नहीं होगा। क्या समर्पित करोगे मानव-कल्याण के लिए? मानव ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा भैया? तुम अपना ही कल्याण करो। मगर दूसरे का कल्याण करने में बहुत मजा आता है। है एक मजा दूसरे के कल्याण करने में। अहंकार को बड़ी तृप्ति मिलती है कि देखो इसका कल्याण कर दिया, अब इसका कर दिया, अब इसका करने में लगे हैं! कल्याण करने का मतलब यह होता है कि इसकी खोपड़ी को पचा डाला, इसको अपने विचारों से भर दिया, अपना कचरा इसके मस्तिष्क में डाल दिया, अब इसको भी बना दिया बाबा तुलसीदास का भक्त, कि बेटा तू भी पढ़ गीता, कि पढ़ हनुमान चालीसा, कि रोज सुबह उठ कर बजरंग बली की याद किया कर! जो तुम बेवकूफियां कर रहे हो वही बेवकूफियां तुम दूसरों को सिखा दोगे। इसको तुम कल्याण कहते हो?
तुम्हारे जीवन में कुछ हो तो कल्याण करना नहीं पड़ता, होना शुरू हो जाता है। कुआं प्यासे के पास नहीं जाता, जिसको प्यास है वह कुएं के पास आ जाता है। पर कुएं में जल होना चाहिए। सूखा कुआं क्या करेगा? प्यासा भी आ जाए तो सूखा कुआं क्या देगा उसे?

एक साहित्यिक गोष्ठी में कुछ स्त्रियों ने आपत्ति उठाई कि नारी को अबला कहना उसका सरासर अपमान है। गोष्ठी के महा पंडित अध्यक्ष ने उनकी आपत्ति को जायज ठहराया और कहा कि मैं निर्णय देता हूं कि भविष्य में स्त्री को अबला न कहा जाए, बल्कि बला कहा जाए।
अब ये महापंडित हैं! इन्होंने "अबला" से "बला" कर दिया उसको।
तुम क्या कल्याण करोगे? तुम पहले अपने को सम्हाल लो। मैं परोपकार की शिक्षा नहीं देता। परोपकार तो जिसने अपना स्वार्थ साध लिया, उसके जीवन की सुगंध का नाम है। लेकिन स्वार्थ शब्द का अर्थ समझ लेना--जिसने स्वयं का अर्थ जान लिया, जिसने स्व की अनुभूति कर ली--वही स्वार्थ को साध लिया। अब इसके जीवन की जो सुगंध है वह परोपकार बन जाएगी, सेवा बन जाएगी। अन्यथा तुम जो भी करोगे उससे नुकसान होगा, हानि होगी। तुम अच्छा ही करना चाहोगे तो भी बुरा होगा। अज्ञानी अच्छा कर ही नहीं सकता। ज्ञानी बुरा नहीं कर सकता। ज्ञानी बुरा करने भी जाए तो भी अच्छा होता है और अज्ञानी अच्छा भी करने जाए तो भी बुरा होता है।
अंग्रेजी में बड़ी प्रीतिकर कहावत है कि नरक का रास्ता शुभ आकांक्षाओं
से पटा पड़ा है। यह तुम्हारी आकांक्षा शुभ है। कोई भी कहेगा कि वाह पंडित जी, क्या बात कही! अरे यही तो मनुष्य-जीवन का असली राज है, लगा दो कल्याण में, कर दो समर्पित! मैं नहीं कह सकता। मैं कहूंगाः अभी तुम्हारे पास समर्पित करने को कुछ नहीं है। अभी तुम कल्याण क्या करोगे, तुम्हें बोध ही नहीं है। ये बाबा तुलसीदास की चौपाइयां पढ़ते तुमको अगर बोध होता तो? तो पांच हजार साल पुरानी गीता को तुम थोपने की चेष्टा में संलग्न होते? तो तुम्हारे जीवन की गीता खुद पैदा होती।
भगवान कृष्ण से गा सका, मुझसे क्यों नहीं गा सकता, तुमसे क्यों नहीं
गा सकता? जिसके भीतर भी समाधि फलित होती है उसी के भीतर भगवद्गीता पैदा हो जाती है। भगवद्गीता का अर्थ हैः भगवान का गीत, भगवत्ता का गीत। समाधि को उपलब्ध होओ तो तुम्हारे भीतर से अपने आप वे स्वर फूटने लगेंगे जो न मालूम कितने लोगों की हृदय-तंत्री को कंपित कर दें, न मालूम कितने लोगों के पैरों को नृत्य से आपूरित कर दें। मगर उसके पहले नहीं। उसके पहले तो तुम जो भी करोगे वे तुम्हारी पुरानी आदतें ही होंगी। उन्हीं को तुम लोगों पर थोपोगे।
एक अदालत में सेठ चंदूलाल पर मुकदमा था। मजिस्ट्रेट ने पूछाः सेठ जी,
एक बात मेरी समझ में नहीं आई। जब आप कहते हैं कि आप अपने घर गए तो आपने अपनी पत्नी को किसी पर-पुरुष के साथ बिस्तर पर सोए देखा। तो आपने उन दोनों को एक-दूसरे के पीछे खड़े होने को क्यों कहा?
तो सेठ चंदूलाल ने कहाः ताकि मैं एक ही गोली में दोनों का सफाया कर सकूं। इसको कहते हैं मारवाड़ी बुद्धि! ऐसे समय में भी एक गोली बचाने का ख्याल रखा कि अब दोनों को अलग-अलग गोली मारना... ! मजिस्ट्रेट ने पूछाः और मैं यह भी जानना चाहता हूं सेठ जी कि बजाय तुमने पत्नी को मार डालने के, अगर क्रोध ही आया था, तो उसके प्रेमी को मार डालना था, बात खत्म हो जाती। चंदूलाल ने कहाः आप समझे नहीं, अगर पत्नी जिंदा रहेगी तो कल का क्या भरोसा, कल कोई दूसरा प्रेमी खोज ले। ऐसे मैं किस-किस को गोली मारता फिरूंगा? तो एक ही बार जड़-मूल से ही खत्म कर देना ठीक है न! रोज-रोज गोली मारते फिरना, आखिर खर्च का भी कोई हिसाब रखना होता है!

आदमी अपनी आदतों से भिन्न नहीं जाता।
सेठ धन्नालाल ने मरणासन्न अवस्था में यह इच्छा जाहिर की कि उनके द्वारा जिंदगी भर में अर्जित किया धन तीन पेटियों में बराबर-बराबर बांट कर उनके कब्र में ही रख दिया जाए, क्योंकि उन्होंने कहाः लोग कहते हैं धन को तुम परलोक नहीं ले जा सकते और मैं सिद्ध करना चाहता हूं कि ले जाऊंगा। यह बात उन्होंने गुप्त रूप से सिर्फ तीन व्यक्तियों को बतलाई, जिन पर उनका भरोसा था--मंदिर के पुजारी मटकानाथ ब्रह्मचारी को, अपने लंगोटिया यार मुल्ला नसरुद्दीन को और अपने सगे दामाद सेठ चंदूलाल को। क्योंकि ये तीन ही व्यक्ति थे जिन पर उन्हें थोड़ा-बहुत भरोसा था। एक आदमी धोखा दे

सकता है, इसलिए उन्होंने तीनों को बुला कर एक-एक पेटी थमा दी, जिनमें एक-एक लाख रुपया नगद भरा था। यह महान कार्य करके उन्होंने एक संतोष की गहरी श्वास ली और अपने प्राण त्याग दिए।
कुछ दिन बाद तीनों भले मानुष एक होटल में मिले। तीनों दुखी एवं गंभीर थे। कुछ मिनट मौन रहने के पश्चात मटकानाथ ने कहाः सज्जनो, मुझसे झूठ नहीं बोला जाता। बड़ा पाप अनुभव होता है इसलिए मैं तो साफ बता देना चाहता हूं कि मैंने पेटी में से दस हजार रुपये निकाल लिए थे--जराजीर्ण मंदिर की मरम्मत के लिए। उन्हें धर्म के काम में लगा देने से स्वर्गीय सेठ जी की आत्मा को संतोष ही होगा।
कुछ मिनट मौन छाया रहा। अब कि बार मुल्ला नसरुद्दीन ने कहाः जब आपने
सच बात बता दी तो फिर मैं भी भला क्यों सत्य छिपाऊं! बात यह है, यद्यपि हो सकता है कि आप लोगों को विश्वास न हो, मगर मैं भी भला क्या करता! आप में से अगर कोई मेरी जगह होता तो आप भी यही करते। रात को मुझे सपने में सेठ जी दिखे और वे बोले--नसरुद्दीन, तुम पेटी में से पचास हजार रुपये निकाल लो और उससे एक अस्पताल बनवा दो गरीबों के कल्याण के लिए। और यदि तुम ऐसा न करोगे तो तुम्हारे सब बेटे एक साल के अंदर मर जाएंगे। अतः मैंने तो पेटी में से पचास हजार रुपये निकाल लिए थे।
दस मिनट तक चुप्पी छाई रही। अंततः आंखों में आंसू पोंछते हुए सेठ चंदूलाल ने कहाः आप दोनों ने ही मेरे स्वर्गीय ससुर को धोखा दिया है, इसका फल ठीक न होगा।
उन दोनों ने निगाहें नीची किए ही पूछाः क्या आपने पूरे एक लाख रुपये पेटी में रख दिए थे?
चंदूलाल ने सिसकियां लेते हुआ कहाः नहीं, रुपये तो मैंने सारे निकाल लिए थे। तुम लोगों ने जो रखे थे वे भी, क्योंकि मैंने सोचा कि वैसे ही सेठ जी अपनी छाती पर काफी बोझ लिए मरे, अब और क्यों उनकी छाती का बोझ बढ़ाना चाहिए। इसलिए रुपयों के बजाय मैंने उनके ऊपर उतने ही रुपयों का चैक रख दिया था।
आदमी अपनी आदतों से बाज नहीं आता।
अब तुम कह रहे हो पंडित मोतीलाल जोशी कि "मैं अपना संपूर्ण जीवन मानव-कल्याण के लिए समर्पित करना चाहता हूं। फिर आप भी तो यही कर रहे हैं।"
यह तुमको किसने कहा? मैंने ऐसा गलत काम जीवन में कभी किया ही नहीं। मैंने न तो मानव-कल्याण की कोई अभीप्सा की है कभी और न ही अपने जीवन को किसी के कल्याण के लिए समर्पित किया है। मैं तो अपना जीवन अपनी मौज और मस्ती में जी रहा हूं। जिनको उससे कुछ सीखना हो सीख लें; वह उनकी मौज। मेरी कोई आकांक्षा अपने को किसी के ऊपर थोप देने की नहीं है। मैं किसी के लिए कोई आदेश नहीं दे रहा हूं कि तुम ऐसा करो, कि नहीं करोगे तो नरक जाओगे, कि नहीं करोगे तो मैं अनशन कर दूंगा। मेरी मौज है कि मुझे जो दिखाई पड़ता है वह मैं कह रहा हूं; तुम्हारी मौज है कि तुम सुन लेते हो।
मगर पंडित मोतीलाल जोशी कुछ का कुछ सुन रहे हैं। इसलिए प्रज्ञा का सवाल मुझे ठीक लगा कि क्या दीवालों के भी कान होते हैं? होते ही होंगे, क्योंकि जीसस बार-बार अपने शिष्यों से कहते हैं कि अगर तुम्हारे कान हों तो सुन लो और आंखें हों तो देख लो। या तो जीसस हमेशा ही अंधे और बहरों के बीच बोलते थे, जो कि बात सच नहीं मालूम होती। इतने अंधे-बहरे भी कहां खोजेंगे? लेकिन वे ठीक कह रहे हैं। लोग सुनते कहां हैं!
पुरुषों के संबंध में चीन में कहावत है कि एक कान से सुनते हैं, दूसरे कान से निकाल देते हैं। और स्त्रियों के संबंध में कहावत हैः दोनों कान से सुनती हैं और मुंह से निकाल देती हैं। इसलिए जिस बात को फैलाना हो, बस किसी स्त्री के कान में कह दो। शाम होते-होते पूरे गांव को पता चल जाएगी। और अगर जल्दी फैलानी हो, तो इतना और कह देना कि बाई, किसी को बताना मत। या अगर बहुत ही मजबूरी आ जाए बताने की, तो इतना जरूर कह देना उससे भी कि बाई, किसी को बताना मत। बस शाम होते-होते सारा गांव जान लेगा। विज्ञापन का इससे ज्यादा और कोई सुंदर उपाय नहीं है।

मगर क्या तुम सुनते हो, यह इस पर निर्भर करता है कि क्या तुम्हारी पूर्व-धारणाएं हैं। तुम किन पक्षपातों से भरे हुए हो। अब यह गीता और रामचरितमानस और तुलसीदास, ये तुम्हारे पक्षपात हैं और ये तुम्हारे विश्वास हैं। तुम खुद ही कह रहे हो। तुमने जाना कुछ भी नहीं है। तुमने अनुभव कुछ भी नहीं किया है। तुम मुसलमान घर में पैदा हुए होते तो कुरान में विश्वास करते--इसी तरह। और ईसाई घर में पैदा होते तो बाइबिल में विश्वास करते--इसी तरह। जरा भी भेद नहीं होता। और रूस में पैदा हुए होते तो तुम दास कैपिटल में और कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो में और मार्क्स, लेनिन और स्टैलिन में विश्वास करते। तुम्हें तो विश्वास करना था, खूंटी कोई भी हो। तुम्हें तो अपना विश्वास का कोट टांगना था, सो तुम टांग देते--खूंटी कम्युनिस्ट हो कि कैथोलिक, क्या करना; हिंदू हो कि मुसलमान, क्या करना! अरे, अपने को आम खाना कि गुठलियां गिननी! तुम तो आम खाते। आम यानी विश्वास। तुम तो चूसते विश्वास। संयोग की बात कि तुम हिंदू हो, इसलिए रामचरितमानस। तुम्हारे ही पड़ोस में जो जैन रहता है, उसने रामचरितमानस पढ़ी भी नहीं। तुम्हारे पड़ोस में ही जो जैन रहता है, वह गीता को धर्मग्रंथ भी नहीं मानता। उसने कृष्ण को नरक में डाल रखा है, क्योंकि इस आदमी ने महा हिंसा करवाई। अहिंसा परमो धर्माः अगर सिद्धांत है तो कृष्ण से ज्यादा हिंसक आदमी कहां खोजे से मिलेगा? चंगीज खान ने भी हिंसा की है, नादिरशाह ने भी हिंसा की है; मगर उनको भी थोड़ा अपराध लगता है। और कृष्ण तो हिंसा करने में अपराध ही नहीं मान रहे, उलटे उसको धार्मिक बता रहे हैं। वे तो कह रहे हैं अर्जुन से कि दिल भर के कर, जी भर के कर! अरे तू है कौन, मारने वाला परमात्मा है, तू तो उपकरण मात्र है। तू तो मार!
अर्जुन भी मुझे पक्का बुद्धू मालूम होता है। उसने यह नहीं कहा कि मैं
भी संन्यास लेने वाला कौन, अब परमात्मा ही को संन्यास लेना है तो ले रहा है, यह चला! मैं होता उसकी जगह तो सीधी बात वहीं निपट जाती, मामला आगे बढ़ाने का नहीं था। तुम कहते हो कि परमात्मा को युद्ध करवाना है, मैं कहता हूं, परमात्मा को संन्यास लिवाना है। अब तुम्हारी मानूं कि अपनी मानूं? परमात्मा मुझसे खुद बोल रहा है। और अगर तुमसे बोल रहा है तो तुम लड़ लो, तुम्हारी मर्जी। यह रहा गांडीव धनुष, सम्हालो! क्या बकवास लगा रखी है गीता की! तुम लड़ो, मैं तो यह चला।
और जब मनुष्य को कर्म-फल की आशा नहीं करनी चाहिए और जब मनुष्य को अपना कर्तृत्व-भाव ही छोड़ देना चाहिए, तो युद्ध के लिए ही क्यों, संन्यास के लिए भी कर्तृत्व-भाव छोड़ देना चाहिए। अर्जुन रहा महाबुद्धू। नहीं तो कृष्ण की बात में ऐसी कोई जान नहीं है। क्योंकि जो तर्क वे दे रहे हैं, वह तर्क इतना ही है कि परमात्मा जो कराए वह करो। अर्जुन कहताः जय राम जी! यह चला। जो परमात्मा करवा रहा है, करूंगा। अब बाधा मत डालो। तुम से जो करवाए, तुम करो। मेरे पीछे आना हो, तुम भी आ जाओ। और तुम्हें लड़ना हो तो लड़ो। यह रहा धनुष और यह रहा रथ और ये खड़े हैं सारे दुश्मन, जी भर कर लड़ो। तुम कहते हो कि उसने तो जिनको मारना है, मार ही डाल रहा है, तू तो निमित्त ही है। अरे तो जब निमित्त ही है तो वह किसी और को निमित्त बना लेगा, तो मैं ही क्यों निमित्त बनूं? जब उसने मारना ही है तो मार ही डालेगा वह, तो मारने दो उसको। वह जाने, उसका काम।
जैन तो गीता को धर्मग्रंथ नहीं मान सकते। और रामचरितमानस तो बहुत बचकाना है और बहुत बेहूदा भी, असंस्कृत भी। स्त्रियों के संबंध में ऐसे वक्तव्य हैं, जो बड़े अशोभन हैं। शूद्रों के संबंध में ऐसे उल्लेख हैं, जो अमानवीय हैं--जो राम की प्रतिष्ठा गिराते हैं। और सारी कथा बहुत सामान्य स्तर की है। कोई ऊंचाइयां नहीं। मगर तुम्हारे मन में बैठी हैं तो तुम सोच रहे हो मैं भी वही कर रहा हूं। भैया, मुझे क्षमा करो! मैं कुछ नहीं कर रहा हूं। करने वगैरह में मुझे भरोसा नहीं है। मैं तो अपनी मस्ती में जी रहा हूं। अब इसमें से जो हो जाए; हो जाए तो ठीक, न हो तो ठीक। नहीं होगा तो मुझे कुछ विषाद नहीं है। न हो तो मुझे कोई चिंता नहीं होगी, हो जाए तो मुझे कुछ अहोभाव नहीं होगा। मैं अपनी मौज से जीया; उसमें जिन लोगों को मौज आई, जुड़ गए; जिनको मौज नहीं आई, नहीं जुड़े। मेरी न किसी से दोस्ती है, न किसी से

दुश्मनी है। औरों की होगी दोस्ती-दुश्मनी मुझसे, लेकिन मेरी कोई दोस्ती नहीं, कोई दुश्मनी नहीं। तुम अगर मेरे पास इकट्ठे हो गए, यह तुम्हारी मौज है।
मैं न तो किसी से अनुप्रेरित हूं और न मेरा कोई विश्वास है। मेरा तो अपना जीवंत अनुभव है। उस जीवंत अनुभव के अनुसार मैं प्रतिपल आह्लादित हूं, आनंदित हूं। इसको ही मैं श्रीमद्भगवद्गीता कहता हूं। यह चाहे मैं बोलूं और चाहे चुप रहूं, जो भी घट रहा है, उसकी मर्जी। इसमें जिसको अच्छा लगे, सम्मिलित हो जाए। यह नदी तो जा रही है सागर की तरफ; जिसको बहना हो बहे, न बहना हो वह उसकी मौज। जो न बहे उसका मेरे मन में कोई अपमान नहीं, कोई निंदा नहीं। मैं यह नहीं कह सकता कि जो मेरे साथ नहीं है वह नरक जाएगा। उसका अपना स्वर्ग जाने का ढंग होगा।
मेरे पास किसी तरह की मतांधता नहीं है। और मैं किसी की सेवा नहीं कर रहा हूं। उस तरह की भ्रांतियां भी मैं नहीं पालता हूं।
इसलिए पंडित मोतीलाल जोशी, अगर मुझे समझना हो तो अपने सारे पक्षपात
एक तरफ हटा कर रखो। अपने मन को ही हटा कर रखो। थोड़ा ध्यान में डूबो, ताकि मुझे समझ सको।

आखिरी प्रश्नः ओशो, आपने श्री पूनमचंद भाई को अहमक क्यों कहा? मैं भी अहमदाबादी हूं, इसलिए पूछ रहा हूं।

भाई दास भाई! यह मैंने नहीं कहा कि अहमदाबाद के रहने वाले सभी लोग अहमक हैं। मगर तुम्हें अगर चोट पड़ी तो थोड़ा विचार करना। तुम्हारे भीतर कहीं न कहीं अहमक होगा। अहमक तो सब जगह भरे पड़े हैं, अहमदाबाद में हो सकता है थोड़े ज्यादा हों। अहमदाबादी होता भी आदमी गजब का है!
अब पूना को देखते हो, सींग निकल आए--"पुणे" हो गया। बाम्बे को लोग मुंबई करने पर उतारू हैं, पुरुष से एकदम स्त्री बना देना चाहते हैं। शर्म भी नहीं आती!
मैं नहीं कह रहा हूं कि अहमदाबाद को तुम अहमकाबाद कर दो। मगर नाम बदलने का बड़ा शौक चला हुआ है। रहेगी मजाक। रहेगी शानदार बात--अहमकाबाद! मगर पूनमचंद भाई को अहमक कहने का मेरा कारण था, कारण था यह कि उन्होंने योग तीर्थ को कहा कि मैंने संन्यास इसलिए छोड़ा कि श्री अरविंद आश्रम की माता जी की फोटो से मुझे ऐसी प्रेरणा मिली, स्पष्ट भाव हुआः मुक्त हो जाओ!
पहली तो बात, फोटुओं वगैरह से ये भावनाएं मिलती नहीं। यह खुद ही की विचारणा है, जो फोटो पर आरोपित कर दी होगी। पर चलो, खुद की हो कि फोटो की हो, कोई हर्जा नहीं। सवाल यह है "मुक्त हो जाओ", इतना ही आदेश मिला था, इसमें यह कहां था कि संन्यास से मुक्त हो जाओ? मुक्त होने को और कुछ नहीं था? क्रोध था, काम था, लोभ था, सारा संसार था; उसमें एक ही चीज से मुक्त हुए--संन्यास! इसलिए अहमक कहा। अहमक का मतलब अब तुम समझे?
अहमक मैं उस बुद्धू को कहता हूं जो अपने बुद्धूपन को भी पांडित्य सिद्ध करने की कोशिश में लगा रहता है। मुक्त होने की बात अगर आई थी तो मुक्त ही हो जाते। फिर सभी चीजों से मुक्त हो जाते! पत्नी से मुक्त न हुए, बच्चों से मुक्त न हुए, धन-दौलत से मुक्त न हुए, धंधे-व्यवसाय से मुक्त न हुए। और सब जाल वैसे के वैसे रहे। संन्यास से मुक्त हुए! और मजा यह है कि संन्यास तो मुक्ति का उपाय है, सो तुम मुक्ति से ही मुक्त हो गए!
संन्यास है ही क्या? मुक्ति का उपाय। अगर यह वचन तुम्हें सुनाई पड़ा था
कि मुक्त हो जाओ तो तो संन्यास में और गहरे डूब जाना था।
मगर नहीं, संन्यास से वे मुक्त होना चाहते थे, क्योंकि संन्यास ही गलत कारणों से लिया था। मैं किसी को इनकार नहीं करता संन्यास देने से, हालांकि मैं जानता हूं कौन गलत कारणों से ले रहा है। और जो गलत कारणों से ले रहा है, वह आज नहीं कल छिटक ही जाएगा। संन्यास के पीछे कोई सत्य की खोज की बात नहीं थी। संन्यास के पीछे कुछ और ही मामला था। पूनमचंद भाई की आंखें कमजोर हैं और रोज-रोज कमजोर होती जा रही हैं। और चिकित्सकों ने कह रखा है कि आंखें

ठीक नहीं होंगी। सो किसी ने उनको सुझा दिया कि आप संन्यास ले लो, उनके आशीर्वाद से सब ठीक हो जाएगा। सो वे संन्यास ले लिए। यह भी अहमकपन! आंखें जरूर मैं ठीक करता हूं, मगर भीतर की, बाहर की आंखों का मेरा धंधा नहीं है। तो जब भी मेरे पास आते थे, उनका बस एक ही खास आग्रह था कि किसी तरह मेरी आंखें ठीक कर दें। मैं उनसे कहता कि भीतर की आंखें तो ठीक होने दो; बाहर की हो गईं तो ठीक, नहीं भी हुईं तो कोई हर्जा नहीं, सूरदास जी हो जाना। यह बात सुन कर ही उनको बहुत धक्का लगता था, जब मैं उनसे कहूं सूरदास जी हो जाना। ऐसे तो मुस्कुरा कर कहते कि हां ठीक है, असली बात तो यही है कि भीतर की आंख ठीक होनी चाहिए; मगर फिर दुबारा जब आते तब फिर बाहर की आंख। मैंने उनसे कहाः कितनी बार आपको कहूं कि बाहर की आंख ठीक करने का मेरे पास कोई उपाय नहीं है! मैं कोई चमत्कार नहीं करता हूं और न मैं मानता हूं कि किसी ने कभी कोई चमत्कार किए। चमत्कार होते ही नहीं। चमत्कार सरासर झूठ है, या मदारीगिरी है, या धोखाधड़ी है।
लेकिन उनको बस वही लगा था कि कोई तरह से मैं चमत्कार कर दूं और उनकी आंखें ठीक हो जाएं। अब बाहर की आंखें ठीक भी हो गईं अगर तो क्या होना है? कितने लोगों की तो ठीक हैं, इनको क्या हो रहा है? जब उन्होंने देखा कि मैं उनकी बाहर की आंखें ठीक नहीं करता, बस अड़चन शुरू हो गई। एक तो अड़चन यह हुई कि अब संन्यास रखने से क्या फायदा! दूसरी अड़चन थी पत्नी। बिल्कुल पत्नी के पिछलग्गू हैं। पत्नी के पीछे पूंछ हिलाते-फिरते हैं। आम पतियों की जो हालत होती है, वही हालत उनकी है। तो पत्नी पीछे पड़ी थी। और फिर पत्नी ने एक और ईजाद कर ली। पत्नी की बहन चल बसी और पत्नी कहने लगी कि पत्नी की बहन चल बसी हैं, वे भूत हो गई हैं और वे बार-बार आकर कह रही हैं कि पूनमचंद भाई का संन्यास छुड़वाओ, नहीं तो मैं सताऊंगी, पूरे घर को सताऊंगी।
ये सब अहमकपन की बातें हैं। अब यह पत्नी होशियार है। ऐसे ही उनके पीछे पड़ी थी। अब इसने एक और तरकीब निकाल ली--भूत की। भूत से वे भी घबड़ाए। फिर मेरे पास भागे आए कि इस भूत का क्या करना! यह मेरी पत्नी के पीछे उसकी बहन मर गई, वह लगी है।
मैंने कहाः तुम्हें दिखाई पड़ती है? उन्होंने कहाः मुझे दिखाई नहीं पड़ती।
मैंने कहाः तुम क्यों बकवास में पड़े हो? पड़े रहने दो तुम्हारी पत्नी
के पीछे। तुम्हारी पत्नी को अगर संन्यास नहीं लेना है, जाने दो उसको। तुम क्यों परेशान हो? मगर बोले कि चौबीस घंटे वह मेरा सिर खाती है कि जब तक तुम संन्यास नहीं छोड़ोगे तब तक वह मेरी बहन मेरा पीछा नहीं छोड़ेगी, वह मुझे सता रही है।
मैंने कहा कि यह भी बड़ी अजीब चाल है!
अब वे कहेंः किसी तरह इस भूत से मेरा छुटकारा करवा दो।
मैंने कहाः अगर ये गोरखधंधों में मैं पड़ने लगूं तो कुछ और करने को है
कि नहीं?
न कोई भूत है, न कोई प्रेत है, मगर उनकी जान निकली जा रही है। अब वे घबड़ाने लगे और भी कि कहीं ऐसा न हो कि पत्नी पर चढ़ते-चढ़ते यह भूत हम पर चढ़ने लगे! सो सोचा कि संन्यास छोड़ देना ही अच्छा है। और कायर भी हैं नंबर एक। संन्यास छोड़ा तो यहां आए भी नहीं। कम से कम इतना साहस तो होना चाहिए कि यहां आकर मुझसे कहते कि मैं अब संन्यास से मुक्त होना चाहता हूं। मैं तो किसी को रोकता नहीं। अहमदाबाद कोई बहुत दूर नहीं है। अहमदाबाद से ही खबर भेज दी कि अब मेरा मन संन्यास से मुक्त होने का हो रहा है, क्योंकि ऐसा आदेश माता जी का मिल गया कि मुक्त हो जाओ।
इन सारी बातें को मैं मूढ़ता कहता हूं--अपने हिसाब से निकाल लेते हैं।
भाई दास भाई, तुम घबड़ाओ मत। ऐसे तुम्हारा घबड़ाना भी ठीक है, क्योंकि अहमदाबाद में होते तो हैं अहमक बहुत।
एक आदमी ने अहमक अहमदाबादी से पूछाः इस खतरनाक मोड़ पर कोई साइनबोर्ड नहीं है?

अहमक अहमदाबादी ने कहाः लगातार तीन साल तक जब कोई दुर्घटना नहीं हुई
तो इस जगह लगे साइनबोर्ड को म्युनिसिपल कमेटी ने निकाल लिया, क्योंकि बेकार साइनबोर्ड लगाने से क्या फायदा, जब दुर्घटना होती ही नहीं।
एक व्यक्ति ने अहमक अहमदाबादी से पूछाः यह रजत पदक आपको किसलिए मिला? अहमक अहमदाबादी ने कहाः गाना गाने के लिए।
और उसने पूछाः और यह स्वर्ण पदक?
तो अहमक अहमदाबादी ने कहाः गाना बंद करने के लिए।
अहमक अहमदाबादी से जज ने पूछाः अपनी बीबी को इस प्रकार पीटने के लिए तुम्हें किसने उकसाया?
अहमक अहमदाबादी ने कहाः श्रीमान, उसकी पीठ मेरी ओर थी। छड़ी पास ही मेज
पर रखी थी। जूते मैंने निकाल कर रखे थे। भागने के लिए दरवाजा भी खुला था। और ऐसा शानदार मौका पिछले दस साल में पहली बार ही मिला था।
अहमक अहमदाबादी भाषण दे रहे थे तो उन्होंने भाषण में बड़े जोर से कहा
कि यह बात सरासर गलत है कि मैंने अपना नया मकान भाषणों के दौरान फेंके गए ईंट-पत्थरों से बनवाया है।
अहमक अहमदाबादी की पत्नी उनसे कह रही थीः अजी सुनो, सुनते हो कि नहीं,
घर में लड़की जवान हो गई है, तुम्हें तनिक भी परवाह नहीं है इसकी?
अहमक अहमदाबादी ने कहाः इसकी तुमसे ज्यादा चिंता मुझे है, पर ढंग का कोई लड़का भी तो मिले। जो भी मिलता है, गधा ही मिलता है।
पत्नी बोलीः अगर मेरे पिता जी भी यही सोचते रहते तो आज तक मैं भी कुंआरी ही बैठी रहती।
अहमक अहमदाबादी को पांच साल की सजा हो गई। जब पांच साल की सजा काट कर
घर लौटे, तो देखा, उनकी बीबी की गोद में एक छोटा बच्चा था। अहमक अहमदाबादी तो गुस्से से भर गए, पूछाः यह किसका बच्चा है?
उनकी पत्नी ने जवाब दियाः मेरा, और यह तुम्हारा भी हो सकता था, अगर तुमने एक शरीफ आदमी की जिंदगी जीने की कोशिश की होती।
अहमकों की तो कमी कहीं भी नहीं है, लेकिन अहमदाबाद में वे थोड़े ज्यादा
ही हैं। अहमक अहमदाबादी से किसी ने पूछाः भाई, तुम तो पूरे जोरू के गुलाम हो, कल शाम तुम अपने कोट में खुद बटन टांक रहे थे।
अहमक अहमदाबादी ने कहाः तुम्हारा कहना बिल्कुल गलत है। वह कोट मेरा नहीं, मेरी बीबी का था।
एक दिन अहमक अहमदाबादी सुबह-सुबह उदास सिर झुकाए बैठे थे, तभी उनके एक दोस्त ने पूछाः भाई, क्या बात है, क्यों उदास हो?
उन्होंने उत्तर दियाः पहले पंद्रह रुपये किलो घी मिलता था और अब दस रुपये किलो हो गया है।
यह सुन कर दोस्त ने कहाः फिर तो तुम्हें खुश होना चाहिए। एक किलो घी लेने पर पांच रुपये बचेंगे।
उन साहब ने कहाः यही तो दुख है। पहले मैं घी न खाकर पंद्रह रुपये बचाता था, अब सिर्फ दस रुपये बचेंगे।
एक मित्र ने अहमक अहमदाबादी से पूछाः अगर आपको अकेले में शेर मिल जाए
तो आप क्या करेंगे?
अहमक अहमदाबादी ने कुछ सोच कर जवाब दियाः मैं भला क्या करूंगा! जो कुछ करना होगा, शेर ही करेगा।
विदा के समय साले साहब ने दसवीं बार अहमक अहमदाबादी से कहाः जीजा जी, मेरी बहन का ख्याल रखिएगा, बड़े नाजों से पली है। इसे कोई तकलीफ न हो। बार-बार यही बात सुन कर, अहमक अहमदाबादी झुंझलाए हुए तो थे ही, गुस्से में कहा कि अमा कह तो दिया कि ख्याल रखूंगा। जैसी तुम्हारी बहन वैसी मेरी! डाक्टर ने अहमक अहमदाबादी से पूछा कि क्यों जी, तुमने अपनी पत्नी को दवा तो बराबर दी या नहीं? अहमक अहमदाबादी ने कहाः नहीं, अब तक मेरी समझ में यह नहीं आया कि एक गोली तीन बार कैसे दी जा सकती है!
तो थोड़े ज्यादा ही हैं। इसलिए भाई दास भाई, कुछ चिंता न लो। और मैं तो यूं ही सभी के साथ मजाक करता रहता हूं, जो जब पकड़ में आ जाए। कभी सरदार आ जाते हैं पकड़ में, कभी मारवाड़ी पकड़ में आ जाते हैं, कभी कोई और पकड़ में आ

जाता है। संयोग की बात कि इस बार अहमदाबादी पकड़ में आ गए। इससे दुख न लेना।
ये मेरे प्रशंसा करने के ढंग हैं।

आज इतना ही।

बहुरि न ऐसो दांव
आठवां प्रवचन

जिन खोजा तिन पाइयां

पहला प्रश्नः ओशो, मैं क्या करूं? मेरे लिए क्या आदेश है?

दिनकर! मैं करने पर जोर नहीं देता हूं। मेरा जोर है होने पर। कृत्य तो बाहरी घटना है--मनुष्य के जीवन की परिधि है, केंद्र नहीं। और परिधि को हम कितना ही सजा लें, आत्मा वैसी की वैसी दरिद्र की दरिद्र ही बनी रहती है। लेकिन सदियों से यह अभिशाप मनुष्य की छाती पर सवार रहा हैः यह करने का भूत--क्या करें! नहीं कोई पूछता कि मैं कौन हूं। बिना यह जाने कि मैं कौन हूं, लोग पूछे चले जाते हैं--क्या करूं? फिर तुम जो भी करोगे गलत होगा। भीतर तो अंधेरा है; फिर नाम चाहे तुम दिनकर ही रखो, कुछ भेद न पड़ेगा। आंखें तो अंधी हैं, फिर चाहे तुम चश्मा ही लगा लो, तो भी किसी काम नहीं आएगा। मुल्ला नसरुद्दीन आंखों के डाक्टर के पास गया था। आंखों की जांच चलती जाती और बार-बार वह पूछता कि डाक्टर साहिब, चश्मा बन जाएगा तो मैं पढ़ने तो लगूंगा न? डाक्टर ने उसे कई दफा कहा कि बड़े मियां, कितनी बार कहूं, जरूर पढ़ने लगोगे। एक दफा ठीक-ठीक नंबर का चश्मा बन जाए, क्यों नहीं पढ़ोगे! नसरुद्दीन सुनता, लेकिन भरोसा न कर पाता। फिर थोड़ी देर में पूछता कि
आप सच कहो, पढ़ने लगूंगा, फिर से पढ़ने लगूंगा? डाक्टर ने कहा कि तुम होश में हो या पागल हो? तुम्हारी आंखों का इलाज करवाना है या दिमाग का? कितनी बार कहूं, लिख कर दे दूं?
नसरुद्दीन ने कहाः मैं इसलिए बार-बार पूछता हूं कि असल में पढ़ना मुझे आता नहीं। तो चश्मा बन जाएगा, पढ़ने तो लगूंगा न?
पढ़ना न आता हो तो चश्मा भी बन जाएगा तो कैसे पढ़ोगे? और आंख ही न हो, फिर चश्मे पर चश्मे लगाए चले जाओ, तो और बोझ हो जाएगा। न गिरते होते तो भी गड्ढों में गिरोगे। ये चश्मे महंगे पड़ जाएंगे।
लेकिन यही आदमी कर रहा है। यह तो जानने में लगता नहीं कि मैं कौन हूं; मेरा अस्तित्व क्या है; यह मेरे भीतर जो चैतन्य है, इसका स्वरूप क्या है; यह जो मेरे भीतर जीवन की ज्योति जल रही है, इससे पहचान करूं। फिर इस पहचान के बाद तुम्हारे जीवन में गलतियां अपने आप तिरोहित हो जाएंगी। क्योंकि जिसने अपने को जाना वह गलत करने में असमर्थ हो जाता है। और जिसने अपने को नहीं जाना वह ठीक करने में असमर्थ होता है।
मत पूछो कि मैं क्या करूं। अभी तो यह पूछो कि मैं कौन हूं। अभी तो आत्म-परिचय बनाओ।
आत्मा केंद्र है, कृत्य परिधि है। चूंकि हम परिधि पर ही जीते हैं, इसलिए हमारे प्रश्न भी परिधि से ही संबंधित होते हैं, तो कब्रों को भी चाहो तो सफेद चूने से पोतो, सुंदर रंगों में रंगों, क्या होगा?
जीसस ने बार-बार कहा है कि तुम पुती हुई कब्रों जैसे लोग हो। बाहर से
तो यूं साफ-सफेद दिखाई पड़ते हो और भीतर सब सड़ा-गला। लेकिन आचरण पर तुम्हारे तथाकथित संत-महंत, महात्मा, साधु, वे सब जोर देते हैं। उनकी भाषा में और तुम्हारी भाषा में भेद नहीं है। उनके तल में और तुम्हारे तल में भेद नहीं है। वे भी बाहर जीते हैं, तुम भी बाहर जीते हो। तुम धन की तरफ दौड़ते हो, वे धन की तरफ पीठ करके दौड़ते हैं, मगर दौड़ते दोनों हैं। और दोनों की दौड़ का कारण धन होता है। तुम पद के लिए दौड़ते हो, वे पद से बचने के लिए दौड़ते हैं; लेकिन दोनों की दौड़ की बुनियाद में महत्वाकांक्षा होती है। रुकोगे कब? ठहरोगे कब? कृत्य तो दौड़ाए ही रखेगा, दौड़ाए ही रखेगा।
कृत्य का अर्थ ही हैः अब क्या करूं, अब क्या करूं, अब और क्या करूं?
मेरा जोर आचरण पर नहीं है, आत्मा पर है। ठहरो, करने की जल्दी नहीं है कुछ। जानो। और फिर उस जानने में से अपने आप करना निकलेगा।
और अभी तक तुमने बहुत कुछ किया होगा। यह प्रश्न तुम पहली बार नहीं पूछ रहे होओगे। और-और न मालूम कितनों से पूछा होगा। पूछ-पूछ कर ही यहां आए होओगे। कितना तो कर चुके, पूजा भी की होगी, पाठ भी किए होंगे, यज्ञ-हवन किए

होंगे, तीर्थयात्राएं की होंगी, मंत्र जपे होंगे, यंत्र साधे होंगे, क्या- क्या नहीं किया होगा! अभी करने से थके नहीं? कब थकोगे? प्रभु करे, जल्दी थको! समझदार आदमी जल्दी थक जाता है। देख लेता है कि दौड़ना व्यर्थ है, जब तक मैं पहचान न लूं कि मैं कौन हूं। फिर बिना दौड़े भी पहुंचना हो जाता है। सुनो ठीक से। मैं कह रहा हूं, फिर बिना दौड़े भी पहुंचना हो जाता है। क्योंकि जहां पहुंचना है वहां तुम हो ही। वहां से तुम एक इंच कभी दूर नहीं हटे। वह तुम्हारी आत्यंतिक निजता है, तुम्हारा स्वभाव है। कहीं जाना नहीं है जो दौड़ना पड़े। वहीं आना है जहां हम हैं। भूल हो गई है, विस्मरण हो गया है। सुरति चाहिए, स्मृति चाहिए। पुनः स्मरण चाहिए।
कुछ करना नहीं है--जागना है! और जागना कोई कृत्य नहीं है। लेकिन हमारी भाषाएं हैं और भाषाएं हमारी सुनिश्चित हो जाती हैं।
सेठ चंदूलाल मारवाड़ी एक मनोवैज्ञानिक को मिलने गए, क्योंकि बहुत चिंता, बहुत संताप, बहुत विषाद में थे। मित्रों ने समझाया; परिवार वालों ने धक्के दिए। मगर जाते नहीं थे, टालते थे, क्योंकि फीस बहुत थी। यूं तो सेठ हैं, धन की कुछ कमी नहीं। मगर मारवाड़ी सेठ भी हो तो भिखारी से भी ज्यादा भिखारी होता है। आखिर एक मित्र थक गया, उसने कहाः पैसे मैं चुका दूंगा, फीस मेरे ऊपर रही।
तो चंदूलाल जाने को राजी हुए। गए। मनोवैज्ञानिक ने बात शुरू की। पूछाः सेठ चंदूलाल, मनुष्य पर किस प्रकार के भावों का सबसे घातक प्रभाव पड़ता है?
चंदूलाल ने कहाः बाजार के भावों का।
एक सुनिश्चित ढांचा हो जाता है। एक चिंतना की प्रक्रिया हो जाती है।
एक बंधी हुई भाषा हो जाती है। उसको बदलने की भी कोशिश करो तो भी कुछ फर्क नहीं पड़ता।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन घर लौटा। घर में छाया हुआ मातम, उदासी। सहमा, डरा, भीतर प्रवेश करते झिझका। रात उतर आई है और दीया जला नहीं। अनुमान लगा लिया कि आज जरूर कोई बुरी खबर सुनने को मिलेगी। जैसे ही पत्नी दिखी, उसने कहा कि सुन, पहले ही सुन ले। देख, मैं दिन भर का परेशान लौटा हूं, बहुत तरह की मुसीबतें आज झेली हैं। नौकरी से हाथ गंवा बैठा हूं, जेब कट गई है। अदालत में मुकदमा हार गया हूं। और क्या-क्या कहूं! आत्महत्या तक का विचार मेरे मन में आने लगा है। ऐसी स्थिति में कोई बुरी खबर मत सुनाना।
पत्नी बोली कि मैं क्यों बुरी खबर सुनाऊंगी! हमारे सात बच्चे हैं, उनमें से छह अभी भी जिंदा हैं।
ऐसे कहो कि वैसे कहो। एक बच्चा मर गया, ऐसा कहो; या ऐसा कहो कि हमारे सात बच्चे हैं, उसमें से छह अभी भी जिंदा हैं--क्या भेद पड़ेगा?
मिलिटरी के जनरल ने अपने एक कर्नल को बुलाया और कहा कि देखो, लालीराम
की मां मर गई है, तो जरा आहिस्ता से, प्रेम से, ढंग से उसे सूचना देना, क्योंकि लालीराम नाजुक तबीयत का आदमी है, कहीं सदमा ज्यादा न खा जाए। मगर अब इस खबर को कैसे कहो कि मां मर गई! कर्नल गया, उसने कहाः ऐ लालीराम के बच्चे, कुछ पता है, बड़ी अकड़ से चले जा रहे हो! अरे मां चल बसी!
लालीराम वहीं ढेर होकर गिर पड़ा। जनरल ने बुला कर कहा कि मैंने समझाया था, फिर भी तूने वही नालायकी की। देख, आगे कभी मौका आए तो आहिस्ता-आहिस्ता कोई बात कहनी चाहिए। संयोग की बात, सात दिन बाद लालीराम के पिता भी चल बसे। जनरल ने फिर कर्नल को बुलाया और कहा कि देख, फिर अवसर आ गया। और लालीराम का ही मामला आया है, पिता चल बसे। अब जरा सम्हल कर बात को कहना। और धीरे-धीरे कहना, टुकड़े-टुकड़े में कहना, ऐसी क्या जल्दी करनी एकदम से कि आदमी ढेर ही हो जाए!
कर्नल ने भी कहा कि नहीं, मैंने सब सोच कर रखा है। जाकर सब सिपाहियों
को कहा, लाइन में खड़े हो जाओ। और फिर कहा कि जिनके पिता जिंदा हैं, वे एक कदम आगे बढ़ें। स्वभावतः लालीराम भी बढ़ा। कर्नल ने कहाः बेटा लालीराम, इतने जल्दी नहीं, धीरे-धीरे बढ़ो! इतने विश्वास से मत बढ़ो, आहिस्ता, इतनी जल्दी न करो।

कैसे भी कहो, बात वही हो जाएगी। लोगों की तर्कसरणी निश्चित हो जाती है। तुम्हारी भी तर्कसरणी निश्चित हो गई है।
एक अध्यापक शिकार को गए, अपने बेटे को भी साथ ले गए। जंगल में दूर निकल
गए और रास्ता भूल गए। आखिर गुस्से में आकर बच्चे को मारने लगे। शिक्षक ही जो ठहरे। शिक्षक को गुस्सा आए तो क्या करे! बच्चों को मारता है। पति को गुस्सा आए, पत्नी को मारता है। पत्नी को गुस्सा आए, बच्चों को। बच्चों को गुस्सा आए, खिलौनों को तोड़ देते हैं।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि शिक्षक वे ही लोग होते हैं जो जानते हैं भलीभांति कि और किसी को तो जिंदगी में सता न सकेंगे, छोटे-छोटे बच्चों को ही सता सकेंगे, हो जाओ शिक्षक। यह धंधा अच्छा है। पीटने लगा अपने बेटे को और बोलाः हरामजादे, मैं तो रास्ता भूल गया हूं, इसलिए भटकता फिर रहा हूं। लेकिन तू क्यों नहीं घर जाता? तू तो घर जा।
तुम पूछते हो दिनकरः "मैं क्या करूं?"
कुछ मत करो। घंटे दो घंटे को करना बिल्कुल छोड़ दो, अक्रिया में उतर जाओ।
एक मित्र पत्र लिखे थे कि मैंने क्रिया-योग में दीक्षा ले ली है। मैंने कहाः क्रिया-योग तो तुम्हारी जिंदगी भर तुम्हें सताता रहा, अब और क्रिया-योग में दीक्षा ले ली!
हमारे स्वामी योग चिन्मय हैं, उनका पहले नाम था--क्रियानंद। पता नहीं किस मूढ़ ने उनको यह नाम दे दिया--क्रियानंद! अक्रियानंद हैं वे बिल्कुल! मगर क्रिया-योग में दीक्षा ले ली थी, तो क्रियानंद कहलाते थे।
दिनकर, अक्रिया साधो। अगर चौबीस घंटे में एक घंटे के लिए भी अक्रिया
सध जाए तो जीवन-सत्य दूर नहीं, बहुत निकट है। एक घंटे कुछ करो ही मत। राम-राम भी मत जपना, माला भी मत फेरना। मंत्र भी मत पढ़ना। एक घंटा कुछ करना ही न, पड़ रहना। योगासन इत्यादि वगैरह भी मत साधना।

एक से एक योगासन दुनिया में प्रचलित हैं! अभी नये-नये योगासन निकले हैं। एक का नाम है--चमचासन!
सबसे पहले सीधे खड़े हो जाइए। मुंह पर भोलापन और आंखों में मक्कारी लाइए। फिर क्रमशः भोलापन को दीनता में बदलिए और मक्कारी को चाटुकारिता में परिवर्तित कीजिए। अब टांगों को सीधा रख कर धीरे-धीरे झुकते हुए नासिका को जमीन पर पहले से रखे हुए जूतों पर रगड़िए। और गहरी-गहरी श्वास लीजिए। कुहनियों को पेट से सटा कर दोनों हाथ जोड़ कर प्रणाम की मुद्रा बनाइए। जब तक जूते हटा न लिए जाएं तब तक सीधे खड़े मत होइए। प्रारंभ में इस आसन में कठिनाई होती है और स्वाभिमान आड़े आता है, किंतु एक सप्ताह के निरंतर अभ्यास से स्वाभिमान का सत्यानाश हो जाएगा और साधक एक सुयोग्य चमचा बन कर आशातीत लाभ उठाएगा।
चमचासन के लाभ--
नहीं नौकरी मिल रही बैठे हो बेकार।
चमचासन की कृपा से, हो जाए उद्धार।।
हो जाए उद्धार, उदासी दूर भगाओ।
बिना परिश्रम इनक्रीमेंट प्रमोशन पाओ।।
फटी हुई तकदीर तुम्हारी सिल सकती है।
चमचासन से मुफ्त नौकरी मिल सकती है।।
पुराने आसन तो थे ही थे, नये और जुड़ते जा रहे हैं! दूसरा एक नया आसन अभी मैंने सुना है--क्लर्कासन! यह आसन कुर्सी पर और मेज की सहायता से होता है। सर्वप्रथम कुर्सी पर तन कर बैठ जाइए, बिल्कुल सीधे बैठ जाइए। और मस्तिष्क में फाइलों की कल्पना करिए। दाहिनी काल्पनिक फाइलों को बाएं हाथ में उठा कर बाईं ओर रखने जैसी क्रिया कीजिए। पुनः दाहिने हाथ से बाईं फाइल को झटके के साथ दाहिनी ओर फेंकने का उपक्रम कीजिए। अब एक काल्पनिक सिगरेट को दो अंगुलियों के बीच दबा कर श्वास अंदर खींच कर कुंभक कीजिए। अर्थात धुएं को भीतर रोकिए, फिर उसी धुआं मिश्रित श्वास का नासिका-रंध्रों द्वारा रेचन कीजिए। संपूर्ण क्रिया को पांच बार दोहराइए। अंतिम बार रेचक क्रिया करते

समय मुंह को गोल बना कर जैसे अंग्रेजी का ओ बोलते समय बनाया जाता है, झटके से श्वास छोड़िए ताकि वायुमंडल में धुएं के वर्तुलाकार छल्ले तैरने लगें। अब दोनों हाथों को कुर्सी के हत्थों पर टिका कर दोनों पैरों को सिकोड़ कर उठाइए और आहिस्ता-आहिस्ता मेज पर लंबे कर आराम फरमाइए। आप चाहें तो खर्राटे भी भर सकते हैं।
क्लर्कासन के लाभ--
घर से दफ्तर को चलो, कर नाश्ता भरपेट।
उलटो-पलटो फाइलें, सुलगाओ सिगरेट।।
सुलगाओ सिगरेट, इत्र का फाहा सूंघो।
पांव मेज पर फैला कर, जी भर कर ऊंघो।।
घर बच्चों के कारण, रह गया रेस्ट अधूरा।
दफ्तर में हो जाए, नींद का कोटा पूरा।।
आवश्यक कुछ काम, कागजी छोड़ो ऐसे।
ओवरटाइम बने, प्राप्त हों दुगुने पैसे।।
न तो पुराने, न नये--किसी आसन, किसी क्रिया, किसी धार्मिक विधि में मत उलझ जाना। तुम आतुर दिखते हो उलझने को। मुझसे पूछते हो कि "मैं क्या करूं?" मुझसे पूछो कि मैं कौन हूं? करने से कैसे जानोगे कि तुम कौन हो? करने से तो तुमने क्या किया, यह पता चलेगा। चोर को पता चलेगा चोरी की, दुकानदार को पता चलेगा दुकानदारी की, प्रार्थना करने वाले को पता चलेगा प्रार्थना की। लेकिन चोर प्रार्थना कर सकता है। प्रार्थना चोर बना सकती है। दुकानदार प्रार्थना कर सकता है। प्रार्थना करने वाला दुकानदारी कर सकता है। कृत्य तो हजार हो सकते हैं, लेकिन तुम एक हो। तुम्हारा केंद्र एक है। परिधि तो बड़ी हो सकती है और प्रत्येक जीवन की परिधि बहुत बड़ी है। लेकिन सदियों का रोग है। हमें यही सिखाया गया है--यह करो, वह करो; ऐसा करो, वैसा करो; इतने बजे उठो, इतने बजे सोओ; यह खाओ, वह पीओ; ऐसे बोलो, ऐसे उठो। बस इसी गोरखधंधे में लोग लगे हैं और सोचते हैं उनका जीवन धार्मिक हो रहा है। जीवन हाथों से खिसका जा रहा है। जीवन के धार्मिक होने की एक ही संभावना है कि उसको पहचान लो जो सब करने के पीछे बैठा है; जो सब कृत्य का साक्षी है; कर्ता नहीं है, साक्षी है, सिर्फ द्रष्टा है। न कर्ता, न भोक्ता--बस द्रष्टा।
ये तीन शब्द समझने जैसे हैं। कर्ता--सबसे बाहर। भोक्ता--थोड़ा भीतर। और द्रष्टा--सबसे भीतर। कर्ता की बजाय भोक्ता होना बेहतर। भोक्ता की बजाय द्रष्टा होना बेहतर। क्योंकि जितने तुम भीतर आते हो, उतने अपने ही करीब नहीं आते, परमात्मा के भी करीब आते हो।
और पूछा है कि "मेरे लिए क्या आदेश है?"
मैं आदेश तो देता नहीं। सच पूछो तो मैं उपदेश भी नहीं देता। महावीर ने कहा हैः तीर्थंकर आदेश नहीं देते, उपदेश देते हैं। मैं उपदेश भी नहीं देता। आदेश-उपदेश का भेद समझ लो, तो तुम्हें यह भी समझ में आ जाएगा कि मैं उपदेश भी क्यों नहीं देता। आदेश का अर्थ होता है--स्पष्ट सूचना, निर्देश, ऐसा करो। उसका जोर कृत्य पर होता है। सुबह ब्रह्ममुहूर्त में उठो--यह आदेश। उपदेश थोड़ा नाजुक, इतना स्पष्ट नहीं, इतना सीधा नहीं। उपदेश का अर्थ होता है--मुझे देखो। उपदेश का शाब्दिक अर्थ होता हैः मेरे पास बैठो। उप यानी पास; देश--स्थान। मेरे पास बैठो। जो अर्थ उपासना का होता है, वही उपदेश का। जो अर्थ उपवास का होता है, उपनिषद का होता है, वही उपदेश का। महावीर ने कहा है कि तीर्थंकर आदेश नहीं देते। वे किसी को नहीं कहते
कि ऐसा करो, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता को वे अंतिम मूल्य देते हैं। लेकिन तीर्थंकर उपदेश देते हैं। उपदेश का अर्थः मेरे पास बैठो, देखो, समझो, पहचानो। फिर उसके अनुसार जीओ।
यह परोक्ष आदेश हुआ। मैं ब्रह्ममुहूर्त में उठता हूं और तुम मेरे पास उठोगे, बैठोगे तो तुम भी ब्रह्ममुहूर्त में उठने लगोगे। मैंने कभी कहा नहीं कि ब्रह्ममुहूर्त में उठो, सीधे-सीधे नहीं कहा। लेकिन मेरे पास रहोगे... तो मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति अनुकरण की है। जैसा देखता है वैसा करने लगता है। जिनके संग होता है उन जैसा हो जाता है। चोरों के साथ

रहोगे, चोर हो जाओगे। साधुओं के साथ रहोगे, साधु हो जाओगे। मगर न चोर होने में कुछ बड़ा मूल्य है और न साधु होने में बड़ा मूल्य है। क्योंकि दोनों हालत में तुमने अनुकरण ही तो किया। भेद क्या है?
मैं तुमसे कहता हूंः न मैं आदेश देता, न उपदेश देता। मैंने जो जाना है,
जो मैंने जीया है, उसे सिर्फ अभिव्यक्त कर देता हूं। फिर तुम्हारी मौज, तुम्हारी मर्जी। करने जैसा लगे, करना; न करने जैसा लगे, न करना। अनुकूल पड़े, करना। अनुकूल न पड़े, न करना। न तो तुम करोगे तो मैं प्रसन्न होऊंगा और न तुम न करोगे तो मैं अप्रसन्न होऊंगा। मेरी कोई अपेक्षा ही नहीं है। मेरे संन्यासियों से मेरी कोई अपेक्षा नहीं है। मैं अपना जीवन तुम्हारे सामने खोल कर रख देता हूं। मैं अपनी जीवन-दृष्टि तुम्हारे समाने उघाड़ देता हूं। और मैं तुम्हारा धन्यवादी हूं, क्योंकि तुमने मेरी जीवन-दृष्टि को समझने योग्य समझा। तुमने इस योग्य भी समझा कि मेरे दो शब्द सुनते। तुम मानो, यह तो सवाल ही नहीं उठता। मैं कौन हूं जो तुम्हें कहूं कि तुम मानो? और अनजाने ढंग से तुम्हें मनाऊं, यह भी सवाल नहीं उठता, क्योंकि वह भी राजनीति हो जाएगी।
जैसे दीया जलता है; अब उसकी रोशनी का तुम्हें जो करना हो वह कर लो। फूल खिलता है; उसकी गंध का तुम्हें जो करना हो कर लो। न कोई आदेश है, न कोई उपदेश है। प्रार्थना कर सकता हूं--न आदेश, न उपदेश। निवेदन कर सकता हूं--न आदेश, न उपदेश।

इक न इक शमा अंधेरे में जलाए रखिए

इक न इक शमा अंधेरे में जलाए रखिए
सुबह होने को है माहौल बनाए रखिए

जिनके हाथों से हमें जख्मे निहां पहुंचे हैं
वो ही कहते हैं कि जख्मों को छुपाए रखिए
इक न इक शमा अंधेरे में जलाए रखिए

कौन जाने कि वो किस राहगुजर से गुजरे
कौन जाने कि वो किस राहगुजर से गुजरे
हर गुजर-राह को फूलों से सजाए रखिए
इक न इक शमा अंधेरे में जलाए रखिए

दामने यार की जीनत न बने हर आंसू अपनी पलकों के लिए कुछ तो बचाए रखिए
इक न इक शमा अंधेरे में जलाए रखिए

कौन जाने कि वो किस राहगुजर से गुजरे
कौन जाने कि वो किस राहगुजर से गुजरे
हर राहगुजर को फूलों से सजाए रखिए
इक न इक शमा अंधेरे में जलाए रखिए

और शमा तो जल ही रही है। जलाए रखिए, यह कहना भी शायद ठीक नहीं। लेकिन शमा जल रही है भीतर और आंखें तलाश रही हैं बाहर; इससे तालमेल नहीं हो पाता। शमा कहीं, तुम कहीं। शमा भीतर, तुम बाहर। जरा भीतर लौट कर देखना शुरू करो। दिनकर, घड़ी दो घड़ी चौबीस घंटे में चुप बैठ रहो, कुछ न करो। लेट रहो, पड़े रहो, जैसे हो ही नहीं, शून्यवत! और उसी शून्य में धीरे-धीरे भीतर की शमा स्पष्ट होने लगेगी, धुआं कट जाएगा। और जिस दिन भीतर का धुआं कटता है, आंखें स्पष्ट देखने में समर्थ हो जाती हैं--उस दिन तुम परमात्मा हो, सारा अस्तित्व परमात्मा है। और वह अनुभूति आनंद है, मुक्ति है, निर्वाण है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, इस देश की युवतियां पश्चिम से आए फैशनों का अंधानुकरण करके अपने चरित्र का सत्यानाश कर रही हैं, जिससे अंततः समूचे समाज का नैतिक पतन होगा। इस अंधानुकरण को रोकने के उपाय बताने की अनुकंपा करें।

शकुंतला पाराशर! ऐसा लगता है तुम गलत जगह आ गई। यह बात तुम्हें करपात्री महाराज से पूछनी चाहिए, पुरी के शंकराचार्य से पूछनी चाहिए, आचार्य तुलसी से पूछनी चाहिए, कानजी स्वामी से पूछनी चाहिए। देश में महात्मा ही तो महात्मा हैं। यहां कौन है जो महात्मा नहीं? संतों की भीड़ है।
गलत कह गए पुराने लोग कि "संतों के नहीं लेहड़े, सिंह न चले जमात।" गलत! बिल्कुल गलत! यहां तो लेहड़े ही लेहड़े हैं संतों के। चले जाओ कुंभ के मेला और लेहड़े ही लेहड़े। हर तरह के संत, तरह-तरह के संत। हर प्रकार के संत। तुम इसी तरह के लोगों से सत्संग करती रही हो मालूम होता है। मेरे जैसे आदमी से यह तुम्हारी पहली मुलाकात लगती है। नहीं तो ऐसा प्रश्न भूल कर भी तुमने उठाया न होता। अब तुमने उठा ही लिया है तो मैं भी क्या करूं?
पहली तो बात, इस भ्रांति को छोड़ दो कि तुम्हारा समाज कोई नैतिक समाज है, कि इसका पतन हो जाएगा। इसका पतन हो ही नहीं सकता। असंभव है, क्योंकि और नीचे क्या गिरोगे? नीचे गिरने को जगह भी तो चाहिए।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन बहुत दुखी बैठा था। मैंने पूछाः क्या हुआ नसरुद्दीन? हाथ में पट्टियां बंधी थीं।... कुछ झगड़ा हो गया, मार-पीट हो गई? पत्नी ने ज्यादा मार दिया या कोई दुश्मनों ने लूट लिया, क्या हुआ? हाथ का क्या हुआ? दोनों हाथों में पट्टियां बंधी हैं।
नसरुद्दीन ने कहाः कुछ मत पूछिए। दुर्भाग्य है। बस दुर्भाग्य, अब और कुछ ज्यादा क्या कहना! थोड़ा कहा और ज्यादा समझना।
मैंने कहा कि मेरा मामला उलटा है। मेरा मामला यूं है कि बहुत कहा और थोड़ा समझना। तुम मुझे जरा विस्तार से कहो।
तो उसने कहाः अब क्या विस्तार से कहूं? कल चंदूलाल की पत्नी से प्रेम
कर रहा था। ऐसी कोई नई बात नहीं, जग-जाहिर है। सभी जानते हैं, चंदूलाल भी जानता है। मगर कल न मालूम दुष्ट को क्या चढ़ा, एकदम आया अंदर, दरवाजा खटखटाया। उसकी पत्नी बोलीः नसरुद्दीन, भागो! खिड़की से कूद जाओ! चंदूलाल आ गए! सो मैं भी घबड़ाहट में, कपड़े तक नहीं पहना और एकदम खिड़की पर जा कर... अंधेरा, सो कूदने की हिम्मत भी न हुई। सो खिड़की के चौखटे को पकड़ कर मैं लटक रहा बाहर, कि थोड़ी-बहुत देर में तो चंदूलाल कहीं जाएगा, बाथरूम में जाएगा, कुछ भी होगा, तो अपने कपड़े लेकर भाग खड़ा होऊंगा। मगर उस दिन न मालूम उसे क्या धुन सवार हुई थी, और होती भी क्यों नहीं, क्योंकि मेरे कपड़े उसको वहीं रखे मिल गए। उसने कहा, ये कपड़े किसके हैं? पत्नी ने कहा कि क्या कोई मैं दुनिया भर का हिसाब रखती हूं कि किसके कपड़े हैं? अरे होंगे किसी के! इन कपड़ों पर किसी का नाम लिखा है, तुम्हारे ही होंगे!
चंदूलाल तो भन्ना गया। एकदम सब दरवाजे द्वार खोल-खोल कर खोजने लगा।
और बाथरूम, अलमारियां तक छान डालीं, पेटियां तक खोल लीं, जिनमें आदमी घुस ही नहीं सकता ऐसे छोटे-छोटे बक्से भी खोल डाले। सब सामान तितर-बितर कर दिया और आखिर में उसने आकर खिड़की खोली। और तो कुछ नहीं दिखा अंधेरे में, मेरे दोनों हाथ चौखटे पर दिखाई पड़ गए। उसने कहाः तो ठीक! तो ये रहे सज्जन! ले आया एक हथौड़ा और एक-एक अंगुली पर मारे और कहे--जय बजरंग बली!
तो मैंने कहाः यह तो बात सच में दुर्भाग्य की है। दुख की बात है। अरे--उसने कहाः यह कुछ भी नहीं, अभी दुख की बात आई ही नहीं!
मैंने कहाः अरे, तुम्हारी अंगुलियां तोड़ रहा है हथौड़े से!
उसने कहाः यह कुछ भी नहीं। एक अंगुली उसने मेरी पिचल डाली, फिर दूसरी पिचल डाली, तीसरी पिचल डाली, चौथी पिचल डाली, पांचवीं। गिनती कर-कर के और कहे--जय बजरंग बली! और कैसा आनंदित हो रहा, कैसा प्रफुल्लित हो रहा! उसको मैंने इतना प्रफुल्लित कभी देखा ही नहीं। जब मेरी नौ अंगुलियां उसने कुचल डालीं... ।

मैंने कहाः यह तो सच में दुख की बात है।
अरे--उसने कहाः दुख की बात अभी आई ही नहीं जी। जब उसने मेरी दसवीं अंगुली पर हथौड़ा मारा और जब मेरी दसों अंगुली चौपट कर दीं... ।
मैंने कहाः यह तो बड़े दुख की बात है।
उसने कहाः आप बीच-बीच में बोल देते हैं दुख की बात है, अभी दुख की बात
आई ही नहीं! ... जब दसवीं अंगुली भी उसने मेरी तोड़ डाली और धड़ाम से मैं नीचे गिरा तो मैं चकित हुआ कि वहां गिरने को कुछ था ही नहीं। मैं जमीन पर ही खड़ा था। मुश्किल से इंच भर फासला था मुझमें और जमीन में। तब मैंने अपनी खोपड़ी पीट ली कि अपनी अंगुलियां नाहक बरबाद करवाईं, गिरने को जगह ही नहीं थी। मगर अंधेरे में कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा था।
ये सदियों पुराना अंधेरा है, शकुंतला पाराशर। इसमें तुम्हें दिखाई नहीं पड़ रहा कि यहां गिरने को है क्या! इस देश से ज्यादा भ्रष्ट चरित्र और कहीं होगा? हां, यह बात जरूर है कि इस देश का चरित्र इतना भ्रष्ट है कि यह अपने को चरित्रवान तक घोषित करने की हिम्मत रखता है। यह भ्रष्टता का लक्षण ही है। इसमें इतनी निष्ठा भी नहीं है, इतनी ईमानदारी भी नहीं है कि स्वीकार कर ले अपनी भ्रष्टता को। यह बेईमानी की हद है। यहां चोर साधु हैं। यहां बेईमान राजनेता हैं। यहां सब तरह के दुष्ट, क्रूर हिंसक गांधीवादी बने बैठे हैं, अहिंसक हो गए हैं। यहां सब तरह से जिनका हृदय अंधेरे से भरा है, कालिख से, उन्होंने शुद्ध खादी के कपड़े पहन रखे हैं। जगमग-जगमग हो रहे हैं! किस देश के नैतिक पतन की बातें कर रही हो? और यह मत सोच लेना कि मैं आज की बात कर रहा हूं। ऐसा कोई समय नहीं रहा इस देश में जब इस देश में कोई नैतिक ऊंचाई रही हो। तुम अपने सारे पुराण उठा कर देख डालो। मगर किसको पड़ी देखने की! शायद इसी डर से हम देखते भी नहीं कि कहीं कोई ऐसे तथ्य न मिल जाएं कि हमारी भ्रांतियां टूट जाएं। नहीं तो तुम्हारे पुराणों में जितनी सड़ी- गली कथाएं हैं, दुनिया के किसी साहित्य में नहीं हैं। और जैसी अनैतिक तुम्हारे देवताओं, तुम्हारे महात्माओं और ऋषि-मुनियों के जीवन में घटनाएं हैं, कोई दूसरा देश इतनी हिम्मत नहीं कर सकता कि उनको पुराणों में सम्मिलित करे।
कृष्ण कितने लोगों की स्त्रियों को चुरा लाए, वे कोई आधुनिक थे तुम समझती हो? कोई कैम्ब्रिज में कि आक्सफोर्ड में पढ़े थे? लेकिन हमने स्वीकार कर लिया। न केवल स्वीकार कर लिया, बल्कि पूर्णावतार घोषित कर दिया। सोलह हजार स्त्रियों को इकट्ठा कर लिया जिस व्यक्ति ने, उसको हमें पूर्णावतार कहने में जरा भी संकोच न हुआ। जरा आज किसी की गगरी में कंकड़ तो मारो और किसी का माखन तो चुराओ और किसी के कपड़े तो चुरा कर झाड़ों पर चढ़ जाओ... ! अरे खुद की पत्नी के ही कपड़े तो जरा चुरा कर झाड़ पर चढ़ जाओ, वही तुम्हारी ठठरी बांध देगी। ऐसा शोरगुल मचाएगी कि सारा मोहल्ला इकट्ठा हो जाएगा। मगर नहीं, इस सबका नाम रासलीला! प्रभु लीला कर रहे हैं! और जब प्रभु लीला कर रहे हैं तो छोटे-मोटे महात्मा क्यों न करें? आखिर ये भी तो उसी थैली के चट्टे-बट्टे हैं, छोटे ही सही। और जब इनको भी लीला करनी है तो बड़े लीलाधर को कैसे इनकार करें! थैली फट जाए तो ये चट्टे-बट्टे भी नीचे गिर जाएं।
तुम जरा अपना इतिहास तो उठा कर देखो, अपने ऋषि-मुनियों की कथाएं तो उठा कर देखो। उनके जीवन में तुम्हें ऋषि-मुनि जैसा कुछ भी न मिलेगा। तुम दुर्वासा जैसे व्यक्ति को भी ऋषि कहते हो! शर्म भी नहीं, संकोच भी नहीं! सब तरह के भ्रष्ट लोग, क्रोधी, कामी, लोभी, इनको तुम ऋषि-मुनि कहते हो!
और तुमने स्त्रियों के साथ जो व्यवहार किया है पांच हजार सालों के इतिहास में, इससे ज्यादा अमानवीय व्यवहार कहीं भी नहीं हुआ। खुद राम ने सीता के साथ दुर्व्यवहार किया है। और राम-राज्य की बातें करते तुम अघाते नहीं! राम-राज्य को फिर से लाना चाहते हो! महात्मा गांधी को यह झक सवार थी कि फिर राम-राज्य आना चाहिए, जैसे एक बार राम-राज्य देख कर तुम्हारा मन नहीं भरा! राम ने शूद्र के कानों में शीशा पिघलवा कर भरवा दिया! अग्नि- परीक्षा ली हुई पत्नी को--कहीं मेरी प्रतिष्ठा और मेरे अहंकार को चोट न लगे--गर्भवती स्त्री को जंगल में छुड़वा दिया! यह सब तुम स्त्री के साथ करते

रहे। स्त्री को नरक का द्वार... और स्त्री की कैसी कुत्सित चर्चा की है कि आश्चर्य होता है कि स्त्रियां बरदाश्त करती रहीं! स्त्रियां ही इन महात्माओं की सबसे ज्यादा सेवा करती हैं। स्त्रियों को इनकी गर्दन दबा देनी चाहिए। स्त्रियों को महात्माओं को खदेड़ कर गांव के बाहर कर देना चाहिए। स्त्रियां एक बार तय कर लें तो महात्मा कहीं टिक नहीं सकते। पति की कोई हैसियत है कि महात्मा को घर में टिका ले? स्त्रियों की वजह से महात्मा टिके हुए हैं। पति तो वैसे ही नहीं टिकाना चाहते कि यह और एक लफंगा कहां से आ गया! मगर पत्नी ले आई है तो अब ठीक है। अगर ज्यादा गड़बड़ करो तो महात्मा तो यहीं टिकेंगे, पति को निकाल बाहर करेगी। पति हो जाएंगे लावारिस और महात्मा यहीं बसेंगे। सो बेहतर यही है कि सह-अस्तित्व को मान लो कि ठीक है भई... पत्नी जिसके पैर छुए उसके पति भी पैर छूता है। और भी जोर से छूता है। पत्नी को भी राजी रखना है।
तुम कहती होः "इससे समूचे समाज का नैतिक पतन होगा।"
नहीं हो सकता तुम्हारा नैतिक पतन। असंभव!
मैंने सुना है कि एक राजनेता एक मनोवैज्ञानिक से चिकित्सा करवा रहा था। उसने कहा कि मैं हीनता-ग्रंथि से पीड़ित हूं। तीन महीने तक चिकित्सा के बाद एक दिन जब पहुंचा राजनेता चिकित्सक के पास, चिकित्सक ने उससे कहा कि बिल्कुल प्रसन्न हो जाएं आप, आनंदित हों! आज उत्सव मनाएं, हो जाए दीवाली! चलें होटल में, मेरी तरफ से आज आपको नाश्ता करवाना है। पक्का हो गया मेरे विश्लेषण से कि आपको हीनता की ग्रंथि से पीड़ित होने का कोई भी कारण नहीं। राजनेता भी बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहाः लेकिन आपने पहले कभी नहीं कहा! तीन महीने बाद कहा!
तो उसने कहाः पहले खोज-बीन करनी पड़ी। आज ही मुझे पक्का पता चला है कि
आप हीनता की ग्रंथि से पीड़ित हो ही नहीं सकते, क्योंकि आप तो हीन हैं ही। हीनता की ग्रंथि से तो वह पीड़ित हो जो हीन न हो। आप तो आखिरी दर्जे के हैं, इसके नीचे तो कोई दर्जा ही नहीं होता। आपको तो कोई गिराना भी चाहे तो नहीं गिरा सकता। गिराएगा कहां? गिराने की कोशिश में यह हो सकता है कि कहीं चढ़ा बैठे!
मैं नहीं देखता कि इस देश का कोई नैतिक स्तर है या कभी रहा है। जिनको तुम धर्मराज युधिष्ठिर कहते हो, वे भी अपनी स्त्री को दांव पर लगा सके। और फिर भी धर्मराज कहे जाते हो! तुम्हें कभी विचार भी नहीं उठता कि और क्या भ्रष्टता होगी--जो आदमी अपनी स्त्री को भी जुए पर लगा दे! एक तो जुआ खेलना भ्रष्टता, फिर स्त्री को भी जुए पर लगा दे, दांव पर लगा दे--इसकी भ्रष्टता की तो हद हो गई! और वहीं मौजूद हैं बड़े-बड़े ज्ञानी। भीष्म पितामह! महाज्ञानी! जिनसे अर्जुन मरते समय ज्ञान लेने पहुंचता है--वही अर्जुन, जो इसके पहले कृष्ण से गीता का ज्ञान ले चुका; गीता ज्ञान लेने के बाद भी भीष्म पितामह से ज्ञान लेने पहुंचता है। मतलब गीता-ज्ञान भी उतना ऊंचा नहीं है, जितना ऊंचा ज्ञान भीष्म पितामह का है। और ये बैठे रहे चुपचाप, मजे से देखते रहे सारा खेल। नमक हलाल थे! बड़े ज्ञानी रहे होंगे! इनके मुंह से यह भी न निकला कि यह क्या अन्याय हो रहा है! स्त्री को दांव पर लगा रहे हो! स्त्री कोई संपत्ति है? कोई जर-जेवरात है?
लेकिन हमारे देश में ऐसी गिनती होती रही--जर, जोरू, जमीन, झगड़े की जड़ तीन; उसमें जर, जोरू, जमीन, इनको एक साथ गिनाया है। जमीन हो कि धन हो कि औरत--बस ये झगड़े की तीन जड़ हैं।
तुमने स्त्री को कभी आत्मा की तरह स्वीकार किया? नहीं, स्त्री को कहते हैं--स्त्री-संपदा, स्त्री-संपत्ति। कन्या को बाप विवाह करता है तो दान में देता है--कन्यादान। न किसी को विरोध उठता, न किसी को हैरानी होती। हम आदी हो गए इस अनीति के।
पांडवों ने एक स्त्री को बांट लिया--पांच भाइयों ने। और किसी को अड़चन नहीं है। किसी ऋषि-मुनि को एतराज नहीं है। और तुम्हें फिकर अब पड़ रही है कि "इस देश की युवतियां पश्चिम से आए फैशनों का अंधानुकरण करके अपने चरित्र का सत्यानाश कर रही हैं।" कौन सा चरित्र? किस चरित्र की बात हो रही है? किस चरित्र के लिए घबड़ा रही हो कि इसका नाश हो जाएगा?

पश्चिम की स्त्री के पास एक चरित्र है, जो तुम्हारी स्त्री के पास नहीं है। क्योंकि पश्चिम की स्त्री ने स्पष्ट घोषणा कर दी है कि मनुष्य के साथ मेरा अधिकार समान है। यह चरित्र है! तुम्हारी स्त्री के पास क्या चरित्र है? वह तो कहती है पति को कि मैं आपके पैरों की जूती, दासी! यह चरित्र है? यह आत्मवान होना है?
पश्चिम की स्त्री ने पहली दफा दुनिया में स्त्रियों को गौरव दिया है। लेकिन तुम्हारे चरित्र की धारण ही और है। तुम्हारे चरित्र के हिसाब ही और, तुम्हारे मापदंड ही और हैं। बस तुम्हारे चरित्र का तो कुल इतना हिसाब होता है कि एक ही पति के साथ जिंदगी भर बंधी रहे, तो चरित्र है। और पति कुछ भी करे। ये इतनी वेश्याएं कैसे चलती हैं? कौन चलाता है? पति ही चलाते होंगे। या तुम सोचते हो छोटे-छोटे बाल-बच्चे चलाते हैं? ये उन्ने-घुन्ने, जो स्कूल में पढ़ते हैं, ये चलाते हैं? ये पति ही चलाते होंगे इतनी वेश्याएं। ये जगह-जगह जो वेश्याओं के अड्डे जमे हैं, ये कौन चलाता है? लेकिन मर्द मर्द है! वह जो भी करे ठीक है, स्त्री की बात और है।
तुम्हारे चरित्र का एक ही अर्थ होता है बस कि स्त्री पुरुष से बंधी रहे, चाहे पुरुष कैसा ही गलत हो। हमारे शास्त्रों में इसकी बड़ी प्रशंसा की गई है कि अगर कोई पत्नी अपने पति को--बूढ़े, मरते, सड़ते, कुष्ठ रोग से गलते पति को भी--कंधे पर रख कर वेश्या के घर पहुंचा दी तो हम कहते हैंः यह है चरित्र! देखो, क्या चरित्र है कि मरते पति ने इच्छा जाहिर की कि मुझे वेश्या के घर जाना है और स्त्री इसको कंधे पर रख कर पहुंचा आई। इसको गंगा जी में डुबो देना था, तो चरित्र होता। यह चरित्र नहीं है, सिर्फ गुलामी है। यह दासता है और कुछ भी नहीं।
पश्चिम की स्त्री ने पहली दफा पुरुष के साथ समानता के अधिकार की घोषणा की है। इसको मैं चरित्र कहता हूं। लेकिन तुम्हारी चरित्र की बड़ी अजीब बातें हैं। तुम इस बात को चरित्र मानते हो कि देखो भारतीय स्त्री सिगरेट नहीं पीती और पश्चिम की स्त्री सिगरेट पीती है। और भारतीय स्त्रियां पश्चिम से आए फैशनों का अंधानुकरण कर रही हैं। अगर सिगरेट पीना बुरा है तो पुरुष का पीना भी बुरा है। और अगर पुरुष को अधिकार है सिगरेट पीने का तो प्रत्येक स्त्री को अधिकार है सिगरेट पीने का। कोई चीज बुरी है तो सबके लिए बुरी है और नहीं बुरी है तो किसी के लिए बुरी नहीं है। आखिर स्त्री को क्यों हम भेद करें? क्यों स्त्री के अलग मापदंड निर्धारित करें? पुरुष अगर लंगोट लगा कर नदी में नहाए तो ठीक और स्त्री अगर लंगोटी बांध कर नदी में नहाए तो चरित्रहीन हो गई! ये दोहरे मापदंड क्यों?
ये दोहरे मापदंड चरित्रहीनता के सबूत हैं, मापदंड एक होना चाहिए। पुरुष-स्त्री के लिए अलग-अलग क्यों? और इस अलग-अलग मापदंड का परिणाम क्या है? परिणाम यह है कि भारत का पुरुष चौबीस घंटे स्त्री के कपड़े उघाड़ने में लगा रहता है--कल्पना में सही, सपने में सही। जब भी बैठा है तब वह यही सोच रहा है--कैसे कपड़े उघाड़े? स्त्रियों को नंगा करने में लगा रहता है। और स्त्रियां अपना आंचल सम्हाल कर और अपना कपड़े-लत्ते लपेट कर अपने को बचाने में लगी हुई हैं। यह तुम्हारा चरित्र है!
सच तो यह है, जहां स्त्री और पुरुषों ने नदियों में, समुद्रों में, तालाबों पर, स्नान-गृहों में नग्न स्नान करना शुरू कर दिया है, वहां एक-दूसरे को नग्न करने की आकांक्षा तिरोहित हो गई है। अगर पश्चिम में किसी पुरुष का किसी स्त्री से प्रेम है तो जरूर उसका आलिंगन करेगा, लेकिन तुम्हारी जैसी बेहूदगी नहीं करेगा, कि जिस स्त्री से तुम्हारी कोई पहचान नहीं है, जरा भीड़ में मौका मिल गया तो च्यूंटी ले दी, कि धक्का ही मार दिया, कि साड़ी का पल्ला ही खींच दिया। तुम्हारी बेहूदगी तो देखो। हे ऋषि- मुनियों की संतानों! हे धर्मप्राण देश के सदपुरुषो! सन्नारियों के साथ तुम क्या-क्या गजब के काम करते हो! आंचल ही खींच दिया, उसकी धोती ही खींच दी और बड़े प्रसन्न घर लौटे--बड़े तीसमारखां हैं कि देखो तो पैर जमीन पर नहीं पड़ते, कि एक स्त्री की साड़ी खींच कर आ गए हैं! कि आज बड़ा गजब हो गया, मजा आ गया कि दो-चार स्त्रियों को धक्का मार आए हैं!

ये धक्के जारी रहेंगे। जब तक स्त्री ढंकी रहेगी, ये धक्के जारी रहेंगे।
शकुंतला पाराशर, मैं तो पश्चिम की स्त्रियों के कपड़ों के पक्ष में हूं।
बर्ट्रेंड रसल ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि जब मैं छोटा था तो यूरोप में अभिजात्य परिवार की स्त्रियों के पैर भी नहीं देख सकता था कोई, अंगूठा भी नहीं देख सकता था पैर का! इस तरह के कपड़े पहने जाते थे जो कि जमीन पर घसिटते थे। इस तरह के घागरे पहने जाते थे जो कि जमीन को छूते थे। तो अगर कभी किसी स्त्री का भूल-चूक से पैर का अंगूठा भी दिख जाता था तो कामोत्तेजक होता था। बात यहां तक बिगड़ गई थी कि लोग कुर्सियों के पैर को भी कपड़े पहनाते थे, क्योंकि वे भी पैर हैं और कुर्सी स्त्री! तो उसके भी पैर ढांक देते थे।
और अब, बर्ट्रेंड रसल ने अपनी उम्र के अंतिम दिनों में, नब्बे वर्ष की उम्र में लिखा कि मैं चकित हूं कि क्या हुआ! स्त्रियां इतने शरीर को उघाड़ कर जी रही हैं, लेकिन किसी को कोई चिंता नहीं है। न किसी को कोई पैर देख कर कामोत्तेजना होती है, न कोई किसी का पैर देख कर एकदम दीवाना हो जाता है कि नशे में आ जाता है, कि कुछ का कुछ कर गुजरे!
जो चीज खुल जाती है उसमें रस ही चला जाता है। अब स्त्रियां तो इतने छोटे-छोटे स्कर्ट पहन रही हैं कि अब उघाड़ने को भी कुछ नहीं बचा है।
एक छोटा बच्चा एक दुकान में रो रहा था खड़ा। मैनेजर ने पूछा कि भई क्यों रोता है? उसने कहाः मेरी मां खो गई।
मैनेजर ने कहा कि तू अपनी मां का स्कर्ट पकड़े रखा कर। उसने कहाः वही
तो मुश्किल है। मेरा हाथ वहां तक पहुंचता नहीं।
शकुंतला पाराशर, तुम्हें तकलीफ हो रही होगी, क्योंकि पुरानी धारणाओं में पली होओगी। लेकिन तुम्हें मनोविज्ञान का या मनुष्य के जीवन के निर्माण का कोई बोध नहीं है। अगर स्त्री और पुरुष सहज और स्वाभाविक हो जाएं तो जीवन से सारी अनीति तिरोहित हो जाए।
कभी जाकर बस्तर के आदिवासी इलाकों में देखो, जहां स्त्रियां करीब-करीब अर्धनग्न होती हैं। उनके स्तन तो उघड़े होते हैं। तुम बस्तर में किसी स्त्री के स्तन पर हाथ रख कर पूछ सकते हो कि यह क्या है। वह कहेगीः यह बच्चे को दूध पिलाने का थन है। और बात खत्म हो गई। ठीक बात इतनी है ही। और आदिवासियों में कोई उत्सुकता नहीं है किसी स्त्री के स्तन देखने की। चारों तरफ स्त्रियां ही स्त्रियां हैं, स्तन ही स्तन हैं, देखना क्या है? लेकिन तुम्हारे मन में एक ही उत्सुकता बनी रहती है स्त्री के स्तन देखने की। तो स्त्रियां भी स्तनों को खूब संवार कर चलती हैं। प्लास्टिक के स्तनों को उभार कर रखने के कृत्रिम आयोजन किए गए हैं, जिनसे कि ढले-ढलाए स्तन ऐसे लगें कि अभी बिल्कुल जवान हैं! स्तन चाहे हों या न हों, रबर और प्लास्टिक के स्तन भी मिलते हैं। और लोग बड़े उत्सुक होकर देखते हैं। तुमने भी ख्याल किया होगा, बुरके में ढंकी हुई स्त्री को देखो--कैसा आकर्षण पैदा होता है! लाख काम छोड़ कर तुम पीछे लग जाते हो कि कहीं तो मौका मिलेगा, थोड़ा बहुत तो देख ही लेंगे। लेकिन जो स्त्री बुरके में नहीं ढंकी है, उसको देखने की कोई ऐसी उत्सुकता पैदा नहीं होती, देख ही ली।
जो चीज प्रकट है उसमें रस चला जाता है। किसी दरवाजे पर तख्ती लिख कर टांग दो कि यहां झांकना मना है, फिर देखना वहां से कितने सच्चरित्र व्यक्ति निकल सकते हैं जो बिना झांके निकल जाएं! और निकल भी जाएं तो लौट कर आएंगे। और दिन में न आ सकें तो रात में आएंगे। और अगर आ ही नहीं सके, बिल्कुल ही कायर और कमजोर हुए तो सपने में वहीं-वहीं मंडराएंगे कि है क्या, मामला क्या है, भीतर क्या है!
निषेध आकर्षण बन जाता है। कोई आवश्यकता नहीं है निषेध की। सारे पशु- पक्षी बिना निषेध के जी रहे हैं। मनुष्य को भी इतने निषेध की कोई आवश्यकता नहीं है। यह भी मनुष्य की कामोत्तेजना है जो उसने स्त्रियों को ढांका है। यह मनुष्य की ही कोशिश है पुरुष की--पुरुष ने स्त्री को ढंकने के लिए मजबूर किया, क्योंकि जितनी स्त्री ढंकी हो उतनी कामोत्तेजक हो जाती है। यह

चरित्र के कारण नहीं है, स्त्री को कामोत्तेजक बनाने के लिए है--उसे ढांको, छिपाओ। जिन-जिन अंगों में पुरुष को उत्सुकता है वे वे ही अंग हैं जो ढंके होते हैं। जो उघड़े हैं उनमें कोई उत्सुकता नहीं होती। अगर स्त्री पूरी उघड़ी हो, पुरुष पूरा उघड़ा हो, तो दुनिया में एक-दूसरे के शरीर में ऐसा पागल जो दीवानापन है, वह अपने आप नष्ट हो जाए।
तुम कहती होः "इस देश की युवतियां पश्चिम से आए फैशनों का अंधानुकरण करके अपने चरित्र का सत्यानाश कर रही हैं।"
जरा भी नहीं। एक तो चरित्र है नहीं कुछ... । और पश्चिम में चरित्र पैदा
हो रहा है। अगर इस इस देश की स्त्रियां भी पश्चिम की स्त्रियों की भांति पुरुष के साथ अपने को समकक्ष घोषित करें तो उनके जीवन में भी चरित्र पैदा होगा और आत्मा पैदा होगी। स्त्री और पुरुष को समान हक होना चाहिए।
एक युवक अपनी भावी पत्नी को देखने उसके घर गया। बातचीत के दौरान उसने लड़की से पूछाः क्या तुम्हें खाना बनाना आता है?
लड़की ने जवाब दियाः देखिए, हम लोगों को सिलसिलेवार ढंग से हर समस्या
के विषय में सोचना चाहिए। पहले आप बताइए कि आप कुछ कमाना जानते हैं? खाना वगैरह तो बाद में बनेगा, पहले कमाना तो आना चाहिए!
भारतीय लड़की तो घूंघट में दबी, क्या ऐसा प्रश्न पूछेगी? मगर यह प्रश्न पूछना जरूरी है।
एक लखपति का बेटा अपनी प्रेमिका से बोलाः कल मेरे पिताजी का दीवाला निकल गया।
मुझे पता था तुम्हारे पिताजी हमारी शादी में जरूर कोई न कोई बाधा डालेंगे--प्रेमिका निराश होकर बोली।
यह बात पुरुष तो हमेशा ही करते रहे हैं। स्त्रियों में उनकी उत्सुकता नहीं है; स्त्रियों के साथ मिलते दहेज में उत्सुकता है। स्त्री से किसको लेना-देना है! पैसा, धन, प्रतिष्ठा! मगर इस लड़की ने चौंका दिया होगा उसे। अब तुम कहोगी, यह पश्चिम का अंधानुकरण हो गया। लेकिन लड़की ने ठीक जवाब दिया, मुंहतोड़ जवाब दिया। यही जवाब होना भी चाहिए।
मगर हम तो छोटी-छोटी बच्चियों का विवाह करते रहे--इसी डर से कि कहीं वे सवाल न उठाने लगे। हम तो छोटे बच्चों के विवाह में भरोसा करते रहे। उसका कारण था कि छोटे बच्चों का विवाह कर दो, उनको पता ही नहीं क्या हो रहा है। मां-बाप के हाथ में सब निर्णय था। पंडित-पुरोहित निर्णय करते। जन्म-कुंडली देख कर निर्णय होता। यह झूठा विवाह, यह थोथा विवाह--और इसको तुम चरित्र कहते हो! यह तो दुश्चरित्रता की शुरुआत हो गई। यह पाप है, क्योंकि न इस लड़की ने इस लड़के को कभी प्रेम किया, न इस लड़के ने कभी इस लड़की को प्रेम किया। जहां प्रेम नहीं है वहां पाप है। जहां प्रेम है वहीं पुण्य है। मध्यस्थों के सहयोग से एक लड़की की शादी तय हो गई। अचानक लड़की रोने लगी। मां उसे ढाढस बंधाने लगी। रोते नहीं, मेरी बच्ची। शादी सभी की होती है। देख मैंने भी तो शादी की थी न!
वह तो ठीक है मां। लेकिन तुमने शादी पिता जी से की थी और मेरी शादी निपट अजनबी से हो रही है।
छोटे बच्चे! ठीक कह रही है छोटी बच्ची कि तुमने तो पिता जी से शादी की,
सो तुम्हें तो कोई अड़चन नहीं। लेकिन मेरी निपट अजनबी से शादी हो रही है, जिसको मैंने कभी देखा नहीं, पहचाना नहीं।
हम बच्चों पर शादी थोप देते थे। अब इसको तुम अंधानुकरण कहोगी कि लड़की कहे कि मैं लड़के को देखना चाहती हूं! लड़का कहे कि मैं लड़की को देखना चाहता हूं, वह ठीक। यह उसका हक है! लेकिन लड़की कहे मैं भी लड़के को देखना चाहती हूं; लड़की कहे कि मैं लड़के के साथ महीने दो महीने रह कर देखना चाहती हूं कि यह आदमी जिंदगी भर साथ रहने योग्य है भी या नहीं--तो चरित्र का ह्नास हो गया, पतन हो गया! और इसको तुम चरित्र कहते हो कि जिससे पहचान नहीं, संबंध नहीं, कोई पूर्व-परिचय नहीं, इसके साथ जिंदगी भर साथ रहने का निर्णय लेना। यह चरित्र है तो फिर अज्ञान क्या होगा? फिर मूढ़ता क्या होगी?
एक हकीम ने चंदूलाल से कहाः कौन कहता है तुम बीमार हो? चंदूलाल तुम्हारी नाड़ी तो घड़ी जैसी तेज चल रही है।

चंदूलाल ने कहाः हकीम साहब, आपका हाथ मेरी नाड़ी पर नहीं, घड़ी पर ही है। समस्याओं पर हाथ रखो। इस देश का चरित्र तो कब का सड़ गया है। जमाने हुए। इतने जमाने हो गए इस देश के चरित्र को सड़े हुए कि अब हम सड़े हुए चरित्र को ही चरित्र समझने लगे हैं। अब तो हम उसी को मानने लगे कि यही चरित्र है। हमने घोड़े देखे ही नहीं हम खच्चरों को ही घोड़े मानने लगे।
और अब जब पहली दफा दुनिया में एक स्वतंत्रता की हवा पैदा हुई है, लोकतंत्र की हवा पैदा हुई है और स्त्रियों ने उदघोषणा की है समानता की, तो पुरुषों की छाती पर सांप लोट रहे हैं। मगर मजा तो यह है कि पुरुषों की छाती पर सांप लोटे, यह तो ठीक; स्त्रियों की छाती पर सांप लोट रहे हैं। स्त्रियों की गुलामी इतनी गहरी हो गई है कि उनको पता ही नहीं रहा कि जिसको वे चरित्र, सती-सावित्री और क्या-क्या नहीं मानती रही हैं, वे सब पुरुषों के द्वारा थोपे गए जबरदस्ती के विचार थे।
कितनी सतियां हुईं, लेकिन एकाध सता भी तो होता! यह बड़े मजे की बात है। इसका अर्थ हुआ कि स्त्रियों ने ही पुरुषों को प्रेम किया; किसी पुरुष ने कभी किसी स्त्री को प्रेम नहीं किया। और ये ही पुरुष और ये... चमत्कार तो तब मालूम होता जब स्त्रियां भी इसमें सम्मिलित होतीं। "ढांढन सती की झांकी" बंबई में सजती रहती है। रोज! अखबारों में जब देखो तब ढांढन सती! जहां देखो वहां सती का मंदिर, सती का चौरा!
पुरुष यह शोरगुल मचाते हैं, यह तो समझ में आता है क्योंकि स्त्रियों
को कब्जे में रखने की उनकी जालसाजी का हिस्सा है। लेकिन ये स्त्रियां कैसी मूढ़ हैं! मगर उनको मूढ़ रखने का भी उपाय किया गया है। उनको शास्त्र पढ़ने नहीं दिए गए, वेद पढ़ने नहीं दिया गया। उनको जितना अशिक्षित रखा जा सके उतनी कोशिश की गई, ताकि जो पुरुष कहे वही उनको सत्य मालूम पड़े। वे भी पूजा कर रही हैं, वे भी नहीं पूछतीं कि एकाध कोई ढांढू सता भी हुए कि नहीं! कोई भोंदू सता भी हुए कि नहीं! एकाध उनका भी मंदिर और चौरा तो हो कहीं! लेकिन ये काम पुरुषों ने कभी किए ही नहीं। इधर स्त्री मरी उधर उन्होंने विवाह किया। मगर पुरुष मरे तो स्त्री को उसके साथ मरना चाहिए। क्यों! क्योंकि वह पुरुष की संपत्ति है और पुरुष को भरोसा नहीं है कि मेरे मर जाने के बाद कहीं कोई दूसरा पुरुष उस पर कब्जा कर ले या वह किसी से प्रेम करने लगे या विवाह कर ले। यह तो हद हो गई। तुमने जैसे आत्मा खरीद ली! स्त्री न हुई, वस्तु हो गई! और स्त्रियां इसको बरदाश्त करती रहीं। न केवल बरदाश्त करती रहीं, वरन धीरे-धीरे इसमें गौरव अनुभव करने लगीं कि इसमें कोई खूबी की बात है।
हम जो भी बातें सुनते-सुनते संस्कारित हो जाते हैं, वे हमारे खून में, हड्डी-मांस-मज्जा में मिल जाती हैं। फिर हमें होश आना मुश्किल हो जाता है। पश्चिम में एक शुभ घड़ी आई है। घबड़ाने की कोई आवश्यकता नहीं है। भयभीत होने का कोई कारण नहीं है। सच तो यह है कि मनुष्य-जाति अब तक बहुत चरित्रहीन ढंग से जीयी है। लेकिन ये चरित्रहीन लोग ही अपने को चरित्रवान समझते हैं। तो मेरी बातें उनको लगती हैं कि मैं लोगों का चरित्र खराब कर रहा हूं। मैं लोगों को केवल स्वतंत्रता और बोध दे रहा हूं, समानता दे रहा हूं। और जीवन को जबरदस्ती बंधनों में जीने से उचित है कि आदमी स्वतंत्रता से जीए। और बंधन जितने टूट जाएं उतना अच्छा है, क्योंकि बंधन केवल आत्माओं को मार डालते हैं, सड़ा डालते हैं, तुम्हारे जीवन को दूभर कर देते हैं।
एक प्रेमिका अपने प्रेमी से कह रही थीः अगर मैं तुम्हारे साथ शादी कर लूं तो तुम यह सिगरेट पीना छोड़ दोगे न?
प्रेमी ने सिगरेट जलाते हुए कहाः हां-हां, क्यों नहीं!
प्रेमिका ने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर कहाः और शराब पीना भी छोड़ दोगे न?
प्रेमी ने हीरो के अंदाज में कहाः मेरी जान, तुम्हारे लिए सब कुछ कर सकता हूं, सब कुछ छोड़ सकता हूं।
प्रेमिका बोलीः और क्या-क्या छोड़ दोगे?
प्रेमी ने अपना हाथ छुड़ा कर सिगरेट बुझाते हुए कहाः तुम्हारे साथ शादी करने का विचार।

एक-दूसरे की छाती पर सवार हो--यह छोड़ो, वह छोड़ो! ऐसा करो, वैसा करो! यह प्रेम न हुआ, कारागृह हो गया। यह विवाह न हुआ, एक-दूसरे के गले में फांसी हो गई। फिर इसका परिणाम यह होता है कि तुम्हारा विवाह सुख तो नहीं, दुख की एक लंबी कहानी हो जाती है, एक व्यथा हो जाती है। पत्नी तुम्हें सताती है, तुम पत्नी को सताते हो। लेकिन मौलिक कारण यह है कि तुम दोनों क्रुद्ध हो, क्योंकि तुम्हारी स्वतंत्रता छिन गई।
मैं तो विवाह के विरोध में हूं, शकुंतला पाराशर। मैं तो पश्चिम से बहुत आगे हूं। पश्चिम के लोगों को भी लगता है मैं खतरनाक बातें कह रहा हूं। पश्चिम के सारे देशों में मेरे खिलाफ लेख लिखे जा रहे हैं, किताबें लिखी जा रही हैं। क्योंकि उनको लगता है मैं खतरनाक बातें कह रहा हूं, मैं बरबाद कर दूंगा पश्चिम के चरित्र को। पश्चिम के चरित्र को! जिससे तुम डरी हुई हो, मैं उसको भी बरबाद करने में लगा हुआ हूं! तुम घबड़ाओ मत। मैं पश्चिम के चरित्र को तो बरबाद कर ही दूंगा। और रही तुम्हारी बात, सो तुम्हारा तो कोई चरित्र है ही नहीं। तुम तो निश्चिंत रहो। तुम तो घोड़े बेच कर सोओ। नंगा नहाए तो निचोड़े क्या? डर ही नहीं है निचोड़ने का, सुखाने वगैरह का तो सवाल ही नहीं उठता कि कहां सुखाएं, क्या करें!
तीन औरतें मरने के बाद स्वर्ग पहुंचीं। तीनों औरतों को सेंट पीटर के सामने लाया गया। सेंट पीटर ने पहली महिला से पूछा कि क्या आपने कभी किसी पराए पुरुष से प्रेम-संबंध स्थापित किया था?
महिला बोलीः अजी आप भी कैसी बातें करते हैं! शर्म नहीं आती? मैं सीता- सावित्री के देश की नारी, भला मैं पर-पुरुष के बारे में सोच भी सकती हूं! सेंट पीटर ने अपने सहायक से कहाः इसे स्वर्ण-महल में भेज दो। अब सेंट पीटर ने दूसरी महिला से पूछा कि क्या आपने कभी पर-पुरुष के साथ प्रेम संबंध स्थापित किया?
महिला बोली कि सिर्फ एक-दो बार ही मैंने अपने मोहल्ले के सेठ चंदूलाल
से शारीरिक संबंध बनाए थे। सेंट पीटर ने अपने सहायक से कहा कि इन्हें ले जाओ, हीरे-जवाहरातों से बने महल में पहुंचा दो। इसके बाद सेंट पीटर तीसरी महिला की तरफ मुखातिब हुआ और उससे बोलाः आप बताइए, आपने कभी किसी पुरुष से प्रेम-संबंध बनाया?
महिला ने कहाः माफ करिए, मैं झूठ नहीं बोलूंगी। मेरे पास तो जो भी आया, कभी खाली हाथ नहीं गया। शास्त्रों में कहा भी है, दान से बड़ा कोई धर्म नहीं।
सेंट पीटर यह सुन कर अपने सहायक से बोलेः इसे मेरे कमरे में पहुंचा दो।
तुम्हारे संत भी सती-सावित्रियों से नमस्कार करेंगे कि माता जी को ले जाओ दूर जहां ले जाना हो! वे भी किसी भली महिला को, ढंग की महिला को... । इस महिला ने ठीक बात कही कि मैं झूठ नहीं बोलूंगी। और दान से बड़ी कोई बात है? और प्रेम से बड़ा दान नहीं।
जीवन एक सहज आनंद, उत्सव होना चाहिए। इसे क्यों इतना बोझिल, इसे क्यों इतना भारी बनाने की चेष्टा चल रही है? और मैं नहीं कहता हूं कि अपनी स्वस्फूर्त चेतना के विपरीत कुछ करो। किसी व्यक्ति को एक ही व्यक्ति के साथ जीवन भर प्रेम करने का भाव है--सुंदर, अति सुंदर! लेकिन यह भाव होना चाहिए आंतरिक; यह ऊपर से थोपा हुआ नहीं, मजबूरी में नहीं। नहीं तो उसी व्यक्ति से बदला लेगा वह व्यक्ति, उसी को परेशान करेगा, उसी पर क्रोध जाहिर करेगा।
मैं भारत के इतने घरों में मेहमान रहा हूं। और मैं यह जान कर चकित हुआ हूं कि न तो पुरुष पत्नियों से प्रसन्न हैं, न पत्नियां पुरुषों से प्रसन्न हैं। पत्नियां क्रुद्ध हैं, पुरुष क्रुद्ध हैं। और मजा यह है कि दोनों को साफ नहीं है कि यह क्रोध क्यों है। यह क्रोध इसीलिए है कि दोनों एक-दूसरे के जीवन में बाधा बन गए हैं। दोनों एक-दूसरे के जीवन के प्रवाह को अवरुद्ध करते हैं। दोनों एक-दूसरे पर नजर रखे हैं जासूस की। दोनों एक-दूसरे का चरित्र सुधारने में लगे हैं। और ध्यान रखना, चरित्र सुधारने वालों को कोई कभी माफ नहीं करता।

शकुंतला पाराशर, ऐसा मालूम होता है कि तुम्हें दूसरों का चरित्र सुधारने की धुन सवार है। अपनी ही फिकर कर लो। अपने ही जीवन में कोई दीया जला लो। उतना ही काफी है। तुम्हें हक भी नहीं किसी दूसरे का चरित्र सुधारने का। प्रत्येक व्यक्ति अपने चरित्र का मालिक है। मैं अगर अपने चरित्र को बिगाड़ना चाहता हूं तो जब तक मैं दूसरे को नुकसान न पहुंचाऊं, मुझे रोकने का हक किसी को भी नहीं है। नियम, कानून, समाज वहीं आ सकते हैं जहां मैं किसी के जीवन में व्याघात पहुंचाऊं। लेकिन अगर मैं किसी के जीवन में कोई व्याघात नहीं पहुंचाता, मेरी स्वतंत्रता को जीता हूं, तो क्यों कोई मेरे जीवन में बाधा डाले?
मगर हम अब तक जैसे समाज में रहे हैं, वह ऐसा समाज था जिसमें हरेक की गर्दन हर एक-दूसरे आदमी के हाथ में है। और जरा सी बात हो कि पूरा समाज एक आदमी पर टूट पड़े। जरा सा नियम का उल्लंघन हो और हुक्का-पानी बंद! हमने व्यक्ति को व्यक्तित्व दिया ही नहीं। हमने व्यक्ति से व्यक्तित्व छीन लिया। हमने उसे समाज का एक मुर्दा अंग बना कर रख दिया। और स्वभावतः तब हम दो हजार साल तक गुलाम रहे। इसमें कोई और जिम्मेवार नहीं है। जहां व्यक्ति ही न थे वहां स्वतंत्रता की घोषणा कौन करता? जहां स्वतंत्रता का स्वाद ही नहीं था वहां परतंत्रता से राजी होने में अड़चन क्या थी? जो अपनी पत्नी की परतंत्रता सहने को राजी है, जो अपने पति की परतंत्रता सहने को राजी है, उसको क्या फर्क पड़ता है कि दिल्ली की गद्दी पर मुगल बैठे कि तुर्क बैठे कि हूण बैठे कि अंग्रेज बैठे, कि कौन बैठा, कोई बैठा रहे! वह तो जानता है कि मुझे तो गुलामी का जीवन जीना है, मेरा तो सारा जीवन गुलामी का है। तो इससे भी क्या फर्क पड़ता है कि एक और मालिक ऊपर बैठ गया है। बैठा रहे दिल्ली में कोई, इससे क्या फर्क पड़ता है!
इसलिए भारत स्वतंत्रता के लिए अपने को तैयार नहीं कर पाया। आज भी नहीं कर पाया है। तुम स्वतंत्र हो गए हो--किसी अपने गुण के कारण नहीं; सिर्फ विश्व की, जागतिक जो रूपांतरण हुए हैं परिस्थितियों में, उनके कारण। अन्यथा तुम स्वतंत्र अभी भी नहीं हो। और आज भी तुम्हें कोई गुलाम बनाना चाहे तो तुम तत्क्षण गुलाम बनने को राजी हो जाओगे, क्योंकि तुम्हारी भीतरी जड़ों में गुलामी घुस गई है।
जो पति अपनी पत्नी के सामने पूंछ दबा कर घुसता है घर में, जो पत्नी अपने पति को देख कर कंपती है, जो बच्चे अपने मां-बाप से डरते हैं, जो मां- बाप अपने बच्चों से डरते हैं, जहां डर ही डर व्याप्त है--वहां चरित्र का कहां से जन्म होगा? चरित्र के लिए स्वतंत्रता की भूमि चाहिए।
और मैं कोई खतरा नहीं देखता। पश्चिम के फैशनों में ऐसा क्या है? कुछ
भी तो नहीं, जिससे कि चरित्र भ्रष्ट हो जाए। और चरित्र अगर भ्रष्ट हो जाता हो फैशनों के कारण तो वह चरित्र दो कौड़ी का है। मेरा चरित्र अगर मेरे कपड़ों से भ्रष्ट हो जाता हो... समझ लो... ।
एक महिला ने मुझे कहा। वह हालैंड गईकृष्णमूर्ति के एक शिविर में भाग लेने और बिना भाग लिए लौट आई। मैंने उससे पूछाः क्या हुआ? तूने भाग नहीं लिया!
उसने कहाः भाग लेने की बात ही खत्म हो गई। मैंने कृष्णमूर्ति को एक सांझ, शिविर शुरू नहीं हुआ उसके एक दिन पहले, एक दुकान पर टाई खरीदते देखा। अब जरा बात अड़चन की तो है। जैसे महावीर स्वामी मिल जाएं किसी दुकान पर टाई खरीद रहे, या किसी दुकान पर बैठे भजिया खा रहे! महावीर स्वामी! कि भगवान बुद्ध मिल जाएं कि खड़े हैं किसी टाकीज के सामने, क्यू में टिकट खरीदने के लिए! बात खत्म हो गई। अब क्या बचा? इस महिला ने देखा कृष्णमूर्ति को, पहले तो उसे भरोसा ही नहीं आया अपनी आंखों पर। क्योंकि कृष्णमूर्ति जब भारत आते हैं तो वे कुर्ता-धोती पहनते हैं। ठीक है, भारत में कुर्ता-धोती बिल्कुल ठीक जमती है। लेकिन अब कुर्ता-धोती इंग्लैंड में पहनोगे तो दांत किटकिटाते रहेंगे, बोलोगे-बालोगे क्या! तो वहां तो वे सूट-पैंट पहनते हैं। और जहां ठंडे देश हैं वहां टाई बिल्कुल जरूरी है। इस देश में जो लोग टाई बांधते हैं वे गधे हैं, नंबर एक के गधे हैं! जहां गर्मी में लोग मरे जा रहे हैं! टाई बांधने का मतलब ही यह है कि शरीर में कहीं से भी

गले से भी हवा न प्रवेश कर सके। तो नीचे मोजे पहने हुए हैं, जूता कसे हुए हैं, ऊपर से टाई बांधे हुए हैं, ताकि सब तरफ से हवा भीतर प्रवेश न कर सके। लेकिन भारत में टाई बांधे हुए हैं, जूता पहने हुए हैं, मोजा कसे हुए हैं--ये छंटे हुए गंवार हैं। ये पढ़े-लिखे गंवार हैं।
कृष्णमूर्ति तो जिस देश में जाते हैं, उस देश के लिए जो जरूरी है वैसा कपड़ा पहनते हैं। और मैं मानता हूं यह बिल्कुल ठीक है। यह बिल्कुल ही एक जाग्रत पुरुष का व्यवहार है। मैं महात्मा गांधी के व्यवहार को जाग्रत पुरुष का व्यवहार नहीं मानता। वे इंग्लैंड में भी जाएंगे तो वही अपना ढांचा बनाए हुए हैं। वह ढांचा ठीक है वर्धा में, जहां गर्मी से लोग मरे जा रहे हैं। लेकिन इंग्लैंड में वह ढांचा बिल्कुल बेहूदा है, असंगत है, अप्रासंगिक है। कृष्णमूर्ति को मैं जाग्रत पुरुष कहूंगा, क्योंकि वे देखते हैं जैसी जरूरत है, जहां जैसी अनुकूलता है वहां उस ढंग से जीना चाहिए। कोई जीवन से ऊपर कपड़े नहीं हैं। जीवन के लिए कपड़े हैं, कपड़ों के लिए जीवन नहीं है।
मगर इस महिला की छाती पर तो बात ही जहर की तरह लगी, तीर चुभ गया, कि अरे जिसको मैं सोचती थी कि भगवान के अवतार हैं, वे टाई खरीद रहे हैं! इसका तो सारा मोह भंग हो गया। यह तो फिर शिविर में सम्मिलित ही नहीं हुई। इसके लिए तो चरित्र भ्रष्ट हो गया, टाई ने शायद चरित्र भ्रष्ट कर दिया!
तुम्हारा चरित्र क्या है? टाई बांधने से भ्रष्ट हो जाएगा! तो टाई ज्यादा मूल्यवान मालूम होती है तुम्हारे चरित्र से।
अब इंग्लैंड में अगर ब्रह्ममुहूर्त में उठोगे तो डबल निमोनिया होगा। इंग्लैंड में तो थोड़ी देर से उठना होगा। जरा धूप आ जाए, थोड़ा सूरज निकल आए; वह भी मुश्किल से कभी-कभी निकलता है। कम से कम सुबह तो हो जाए। हिंदुस्तान में ठीक है तुम तीन बजे से उठो और रामधुन करो। सच तो यह है कि मच्छर सोने ही कहां देते हैं! मच्छर तो रात भर रामधुन तुम्हारे कान में करते हैं। यहां तो ऐसा धार्मिक कार्य चल रहा है--अखंड! खटमल अलग तपश्चर्या करवा रहे हैं-- नीचे से तपश्चर्या! मच्छर ऊपर से तपश्चर्या करवा रहे हैं। बची-खुची बची, अब इनसे कुछ बची-खुची, और थोड़ा-बहुत समय बचा तो उठ आए तीन बजे और तुम रामधुन करने लगे। तुम मोहल्ले वालों को सताने लगे। वे किसी तरह सोने के करीब आ रहे थे, अब तुमने अखंड रामायण शुरू कर दी।
तुम्हारा चरित्र क्या है? किस चीज को तुम चरित्र कहते हो?
यहां हजारों सारी दुनिया से आए हुए संन्यासी हैं। आज छह साल से मैं यहां हूं। किसी एक विदेशी संन्यासी ने किसी एक भारतीय महिला को नहीं छेड़ा, न धक्का मारा, न धोती खींची, न च्यूंटी ली, किसी तरह का दुर्व्यवहार नहीं किया। और ये चरित्रहीन लोग हैं! और भारतीयों ने कितनी पाश्चात्य महिलाओं के साथ उपद्रव किया इन छह वर्षों में, बलात्कार करने की कोशिश की, करीब-करीब बलात्कार किया, लहूलुहान कर दिया स्त्रियों को, कपड़े फाड़ डाले। हर तरह से हमला बोला। कुछ नहीं तो कार से ही उनको धक्का दे देंगे। हाथ नहीं पहुंचा तो कोई बात नहीं, चलो कार ही पहुंच गई। कार से ही धक्का मार कर दिल खुश होकर गए घर। इन छह वर्षों में जितना अनाचार भारतीयों ने पाश्चात्य स्त्रियों पर किया है, उसको देख कर पता चलता है कि चरित्र किसके पास है। और तुम चरित्र की बातें... !
फिर से सोचो, फिर से सोचना शुरू करो। हमें चरित्र के संबंध में पुनर्विचार करना होगा। और हमें चरित्र के नये मापदंड खोजने होंगे। मैं उसी चेष्टा में संलग्न हूं। इसलिए अकारण ही न मालूम कितने चरित्र के ठेकेदार और समाज के ठेकेदार मेरे दुश्मन हो गए हैं, क्योंकि उनको लगता है कि मैं जो कह रहा हूं उसे वे गलत तो सिद्ध कर नहीं सकते। अब एक ही उपाय है कि मेरा मुंह कैसे बंद कर दिया जाए। मुझे बोलने ही न दिया जाए। मेरी गर्दन ही काट दी जाए। मुझे देश से बाहर ही निकाल दिया जाए। रोज अखबारों में पत्र छपते हैं कि इस व्यक्ति को देश के बाहर क्यों न निकाल दिया जाए?
मैं अकेला। इस देश में तुम्हारे कितने महात्मा, कितने साधु, कितने संत, इस एक आदमी के द्वारा सारे देश का चरित्र बिगड़ जाएगा? और तुम्हारे सारे साधु-महात्मा क्या करते रहेंगे? मगर तुमको डर है। और डर यह है कि

तुम्हारे भीतर भी बात साफ होने लगी है कि तुम्हारे साधु-महात्मा जिस बकवास की बातें कर रहे हैं, वे सिर्फ उन्हीं को प्रभावित कर सकती हैं जो पहले से ही प्रभावित हैं। तुम्हारे साधु-महात्माओं के पास न कोई तर्क है, न कोई प्रमाण है। और तुम्हारा पूरा इतिहास तुम्हारी चरित्र-हीनता का सबूत है, और कुछ भी नहीं। और यह भ्रांति तुम्हें छोड़ ही देनी चाहिए कि भारत कोई धार्मिक देश है। जितने जल्दी यह भ्रांति छूट जाए उतने जल्दी भारत धार्मिक देश हो सकता है। मैं भारत को धार्मिक देश बनाना चाहता हूं, मगर पहले तो भ्रांति छूटे। अब कोई बीमार आदमी को भ्रांति है कि मैं स्वस्थ हूं, तो इसका इलाज कैसे करो? पहले तो समझाना होगा कि तुम स्वस्थ नहीं हो, तब इलाज हो सकता है। लेकिन बीमार बड़े जिद्दी होते हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन को वहम पैदा हो गया कि वे मर गए। बहुत समझाया लोगों
ने कि आप मरे नहीं हैं, आप जिंदा हैं। अरे--वे कहें--आप भी कैसी बातें कर रहे हो! मैं तो मर चुका। प्रमाण क्या है मेरा जिंदा होने का?
अब क्या प्रमाण दो किसी को कि तुम जिंदा हो? मुर्दों ने कभी प्रमाण पूछे नहीं। इसलिए कभी प्रमाण खोजे भी नहीं गए। यह बीमारी भी नई। आखिर उन्हें मनोवैज्ञानिक के पास ले गए। मनोवैज्ञानिक ने बहुत खोजा-बीना कि क्या करना, क्या नहीं करना। आखिर उसने एक तरकीब निकाली। उसने कहाः मुझे एक बात बताओ। जब कोई आदमी मर जाए, अगर हम उसको चाकू से काटे तो खून निकलेगा कि नहीं?
नसरुद्दीन ने कहाः कभी नहीं, मरे हुए आदमी को कैसे खून निकल सकता है? खून तो जिंदा आदमी को निकलता है।
मनोवैज्ञानिक बहुत खुश हुआ। उसने कहाः अब एक सूत्र हाथ लगा। लाया चाकू और नसरुद्दीन के हाथ में उसने एक चीरा दिया। झर-झर खून आने लगा। उसने कहाः अब बोलो बड़े मियां! जिंदा हो कि मर गए?
नसरुद्दीन ने कहाः इससे सिर्फ इतना ही सिद्ध होता है कि वह जो पुराना ख्याल था कि मुर्दों को खून नहीं निकलता, वह गलत है। मुर्दों को भी खून निकलता है, इससे सिद्ध हो रहा है। साफ सिद्ध हो रहा है, अरे और क्या प्रमाण चाहिए? मैं मरा हुआ आदमी, तुमने चीरा मारा, खून निकल रहा है। पुरानी कहावत गलत थी।
कोई जिद्द ही किए बैठा हो कि मैं बीमार नहीं हूं तो उसे बीमार होने का भरोसा दिलाना तक मुश्किल है। और ऐसी ही जिद इस देश की है कि हम चरित्रवान हैं, हम धार्मिक हैं, हम पुण्यात्मा हैं, यहां देवता पैदा होने को तरसते हैं। इससे हमारे अहंकार को तृप्ति तो मिलती है। और कुछ हमारे पास है भी नहीं अहंकार की तृप्ति के लिए। बस यही थोथी बातें रह गई हैं। इन्हीं के सहारे किसी तरह अपने को सम्हाले रखते हैं कि हम भी कुछ हैं।
मगर जितनी जल्दी ये थोथी बातें छूट जाएं उतना अच्छा है। क्यों? क्योंकि हमारी क्षमता है कि हम धार्मिक हो सकते हैं। और अगर तुम मेरी बात समझ सको तो मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि हमारी क्षमता इस पृथ्वी पर सर्वाधिक है, क्योंकि पांच हजार साल से हमारे खेत में खेती हुई ही नहीं। जैसे किसी खेत में पांच हजार साल तक खेती न हो तो उसकी उर्वरा शक्ति बहुत बढ़ जाती है। उसमें अगर आज तुम बीज बो दो तो ऐसी फसल आएगी जैसी कि कभी किसी ने देखी न हो।
भारत हजारों साल से चरित्र को पैदा नहीं कर सका है। इसलिए उर्वरा शक्ति इकट्ठी होती गई है। हमारी ऊर्जा इकट्ठी होती गई है। अगर आज ठीक मौका मिले तो हम सारी पृथ्वी को चकाचौंध से भर दे सकते हैं। इतने दीये जल सकते हैं! इतने फूल खिल सकते हैं! मगर पहली तो बात उस भ्रांति को छोड़ देना होगा कि हम धार्मिक हैं।

अंतिम प्रश्नः ओशो, क्या यह सच है कि अहमक अहमदाबादी आपके संन्यासी हैं?

संत महाराज! यह बिल्कुल सच है। अहमक अहमदाबादी चूके जाते थे, बाल-बाल बचे। तय ही कर लिया था काशी जाकर करपात्री महाराज से दीक्षित होने का।

बहुत मैंने उन्हें समझाया, मगर माने ही नहीं। फिर मैंने कहाः जाओ, जैसी तुम्हारी मर्जी। अगर गधा ही होना है तो हो जाओ।
गधा यानी गंभीर रूप से धार्मिक। मैं तो न गंभीरता में मानता, न तथाकथित थोथी धार्मिकता में मानता। मेरा तो धर्म का अपना एक नया दृष्टिकोण है--हंसता हुआ, नाचता हुआ, प्रफुल्लित, आनंदमग्न। गंभीरता उसमें जरा भी नहीं। मेरे लिए धर्म नृत्य है, संगीत है, काव्य है। मेरे लिए धर्म उत्सव है, होली है, दीवाली है।
बहुत समझाया, मगर उनकी भी तकलीफ थी। अहमक अहमदाबादी की पत्नी मर गई। पत्नी के मरने से बहुत दुखी थे। इतने दुखी थे कि एकदम संन्यास का विचार उठा। इस देश में संन्यास का विचार ही ऐसी घड़ियों में उठता है--पत्नी मर जाए, दीवाला निकल जाए, चुनाव हार जाएं। बस फिर देर नहीं लगती, मूड़ मुड़ाए भए संन्यासी! वह एकदम काशी जाने की जिद! मैंने उनसे कहा कि इतने दुखी होने की जरूरत नहीं। पत्नी के होने से तुम कौन से सुखी थे, यह भी तो सोचो! मगर वे सुने ही नहीं। अगर पत्नी के होने से तुम सुखी थे तो तुम्हारा दुख मेरी समझ में आता है। पत्नी के होने से भी दुखी थे और पत्नी के न होने से भी दुखी हो, यह तर्क मेरी समझ के बाहर है। सिर्फ एक बात ख्याल में आती है कि तुम्हें दुख की आदत हो गई है। पत्नी तुम्हें दुख के लिए इतना आदी कर गई है कि अब मर गई, वह तो मर गई मगर आदत छोड़ गई। उल्लू मर जाते हैं, औलाद छोड़ जाते हैं। और अब तुमको अकेलापन अखर रहा है। अब तुमको कोई दुख देने वाला भी नहीं है। पहले तुम मुझसे कहते थे कि कभी थोड़ी देर के लिए भी एकांत मिल जाए। अब तुम्हें एकांत ही एकांत है, तो एकांत काट रहा है।
उन्हें मैंने बहुत से चुटकुले सुनाए, हंसाने की कोशिश की। मगर वे न हंसे, न सुने। जो प्रज्ञा ने कल पूछा था न कि दीवाल के कान होते हैं, जरूर होते हैं। मगर अहमक अहमदाबादी के कान नहीं। मैंने बहुत समझाया, नहीं सुने। दीवालों के तो कान होते हैं। प्रमाण-स्वरूप तुमने देखा। जिस दिन मैंने कहा कि मुझे स्वर्ग रॉल्स-रॉयस नहीं ले जाएगी, संत महाराज ले जाएंगे--उसी दिन से रॉल्स ठिठक गई। साल भर से नहीं ठिठकी थी। अंग्रेज महिला है, अकड़ गई! उसने कहा: अच्छा, तो देखें कौन तुम्हें लाओत्सु तक ले जाता है! उस दिन से टस से मस नहीं हो रही। अरे जब स्वर्ग में भोंदूमल, थोथूमल सब प्रवेश कर जाते हैं तो रॉल्स का कहना भी ठीक है कि मैं प्रवेश न कर सकूंगी, अब ले जाएं संत महाराज! उस दिन से मुझे भरोसा आ गया कि दीवाल के कान होते हैं। अरे जब कारों तक के कान होते हैं!
मगर आदमी कारों से गया-बीता है। इतना बेकार है आदमी कि अहमक को बहुत समझाया, नहीं समझे। तो मैंने कहाः जाओ भाड़ में! चले जाओ काशी, हो जाओ संन्यासी!
वे दूसरे दिन गुस्से में चले भी गए। शाम को एक धर्मशाला में रुके। थोड़ी देर में एक भिखारी और एक भिखारिन भी आकर उसी धर्मशाला में ठहरे तथा उनके पश्चात एक धोबी अपने खोए हुए गधे को खोजता हुआ भी उस धर्मशाला में रात बिताने के उद्देश्य से आ पहुंचा और सबसे अंत में एक गन्ने बेचने वाला भी अपने गन्ने लिए उस धर्मशाला में आकर ठहरा। रात जब काफी होने लगी तो भिखारी और भिखारिन प्रेमालाप में जुट गए। अंधेरा था, अतः जब प्रेमालाप चरम उत्कर्ष पर पहुंचने लगा तो भिखारी ने अपनी भिखारिन को पूछा कि मजा आ रहा है न? भिखारिन गदगद स्वरों में बोलीः अहा, बहुत मजा आ रहा है! तीनों लोक दिखाई दे रहे हैं!
यह सुन कर कोने में पड़ा हुआ धोबी चिल्लाया कि बाई, जरा देखना तो मेरा गधा कहीं दिखाई पड़ रहा है या नहीं? यह सुन कर भिखारिन चौंक गई, क्योंकि उसे पता नहीं था कि आस-पास और भी कोई मौजूद है। उसने जल्दी से भिखारी से कहाः जल्दी से निकालो, खिंचो-खिंचो, जल्दी करो!
यह सुन कर गन्ने वाला चिल्लाया। सालों, जिसने भी गन्ना निकाला उसके हाथ-पैर तोड़ दूंगा!
यह सुन कर अहमक अहमदाबादी को भी जोर से हंसी आ गई और उन्होंने सोचा अब काशी जाकर क्या संन्यासी होना, अब चलें भगवान के पास और उन्हीं के संन्यासी हो जाएं! सो वे लौट आए वापस। अब वे मेरे संन्यासी हैं। यहां

मौजूद हैं। नाम उनका मैंने बदल दिया है, ताकि हर कोई उनको पहचान न ले। अहमक अहमदाबादी, यह उनका और मेरे बीच प्राइवेट नाम है। यह निजी। जब वे अकेले में मिलते हैं, तब। नहीं तो उन्हें बड़ा सुंदर नाम दिया है, तुम खोजो। अरे खोजने वाले को क्या नहीं मिलता! जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ!

आज इतना ही।

बहुरि न ऐसो दांव
नौवां प्रवचन

आओ, बैठो--शून्य की नाव में

पहला प्रश्नः ओशो, आपके विचार मेरे विचारों से मिलते हैं। क्या मैं आपके किसी काम आ सकता हूं?

रामदास गुलाटी! यह तो मूल से ही भूल हो गई। अगर मेरे विचार तुम्हारे विचारों से मिलते हैं तो मुझे पूछना चाहिए कि क्या तुम्हारे किसी काम आ सकता हूं। तुम्हारे पास तो पहले से ही बोध है। तुम्हें तो शिष्यों की तलाश है, गुरु की नहीं। और तुम्हारे पास अगर विचार हैं ही, तो उन्हें क्या मिलाते फिर रहे हो?
लेकिन यही स्थिति बहुत लोगों की है, कहें या न कहें। तुमने बात सीधी- सीधी कह दी। चंडीगढ़ से हो, पंजाबी हो। तुम्हें बात कहनी न आई। नहीं, लोगों का मतलब यही होता है जो तुम कह रहे हो, लेकिन कहते वे जरा और ढंग से हैं, जरा छिपा कर कहते हैं। तुमने नग्न सत्य कह दिया।
लोगों को सत्य से कोई संबंध नहीं है; उनके विचारों से जो विचार मिलते हों, वे उन्हें सत्य मालूम होते हैं। जैसे कि उनके विचार सत्य हैं, इसमें तो संदेह का कोई सवाल ही नहीं! सत्य तो उन्होंने पाया ही हुआ है! पक्षपात, संस्कार, दूसरों से सुनी हुई बातें, उधार ज्ञान--उसी को तुम अपने विचार कह रहे हो। तुम ही नहीं हो तो तुम्हारे विचार कैसे होंगे? और कभी थोड़ा मनन किया, एक भी विचार तुम्हारा है? खोजोगे, तलाशोगे तो पाओगे सब विचार उधार हैं, उच्छिष्ट हैं। कोई गीता का होगा, कोई कुरान का होगा, कोई गुरुग्रंथ साहब का होगा। कोई यहां से, कोई वहां से। कहीं का ईंट, कहीं का रोड़ा, भानुमति ने कुनबा जोड़ा! और इस कुनबे को तुम कहते हो--मेरे विचार!
विचार तो कभी मौलिक नहीं होते, हो ही नहीं सकते। मौलिकता मन का धर्म नहीं। मौलिकता तो ध्यान में होती है। ध्यान अर्थात निर्विचार। और मुझसे अगर मेल बिठाना हो तो निर्विचार का बिठालना होता है, विचार का नहीं। विचार का मेल कोई मेल है? आज मिले, कल न मिले। एक मिला, दूसरा न मिले।
मेरे साथ बहुत लोग हो लेते हैं--यह सोच कर कि विचार मेल खा रहे हैं। मगर दो कदम भी नहीं चल पाते, क्योंकि मैं किसी विचार से बंधा हुआ नहीं हूं। इसलिए कल क्या कहूंगा, आज उसका कोई निर्णय नहीं हो सकता। हो सकता है कल कोई एक बात कह दूं जो तुमसे मेल न खाए, बस नाता-रिश्ता टूटा, फिर हुआ तलाक। जब विचार मेल खाए तो साथ चले, जब विचार मेल न खाए तो साथ टूट गया। सीधा गणित है।
विचार का कोई नाता मुझसे नहीं हो सकता। मैं कोई राजनेता नहीं हूं। राजनेता तुम्हारे विचारों को देख कर बोलता है। वह यह सोच कर बोलता है; जो तुमसे मेल खाए वही बोलता है। इस ढंग से बोलता है कि कहीं मेल न टूटे। उसे तुम्हारा शोषण करना है। वह अनुयायी चाहता है, सेवक चाहता है। मुझे न अनुयायी चाहिए, न सेवक चाहिए। मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। मेरा कोई काम बचा भी नहीं है। मेरा काम पूरा हो चुका। मैं वीतकाम हूं, अब कोई काम बचा नहीं। निष्काम भी नहीं--वीतकाम।
ये तीन शब्द समझ लेने जैसे हैं। एक तो काम का जगत है--यह करना है, वह करना है; यह होना है, वह होना है। वासनाओं-तृष्णाओं की भीड़ होती है। काम यानी वासना, तृष्णा। कुछ है जो कम है, जिसे भरना है; यद्यपि वह कभी भरा नहीं जा सकता। मन की कोई पेंदी नहीं होती। कितना ही उसमें डालो, मन कभी भरता नहीं। बिन पेंदी की बाल्टी में तुम जल भरना चाहोगे तो क्या भर सकोगे? मन ऐसा ही है। जो भी डालो, सब खो जाता है। मन उतना का उतना खाली। और भरने में जो समय गया वह अलग हाथ से छूटा। इसलिए रोज-रोज आदमी उदास होता जाता है। जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है, वैसे-वैसे आशा टूटती है। फूल खिलते नहीं, कलियां भी झड़ जाती हैं। फिर पत्ते भी झड़ जाते हैं। बुढ़ापा आते-आते आदमी तो ठूंठ हो जाता है--निराशा का, हताशा का। फिर चाहे उस हताशा में ईश्वर स्मरण करने लगे, भजन-कीर्तन करने लगे। वह हताशा को छिपाने का उपाय है। कहने लगेः हारे

को हरिनाम! हार तो गए हैं, अब हार को कैसे छिपाना? तो हरिनाम की धुन लगा दे। मगर हार ऐसे छिपती नहीं। मन से कोई कभी जीता नहीं। मन में तो हार ही होनी है। और मन बिल्कुल उधार है, कचरा है, कूड़ा-करकट तुमने इकट्ठा किया हुआ है। मन से तुम्हारा अगर मेरे साथ कोई-कोई तालमेल बैठा तो यह दोस्ती ज्यादा देर न चलेगी; दो कदम भी चल जाए तो बहुत। ऐसे बहुत लोग मेरे साथ आए और विदा हो गए। चले चार कदम--जब तक उनके विचारों से मेरे विचार मेल खाए! मगर चूंकि मुझे उनके विचारों की कोई चिंता नहीं और उनके विचारों से मेल खाने के लिए मुझे कोई उत्सुकता नहीं, मैं चाहता नहीं कि उनके विचार मुझसे मेल खाएं। मैं तो चाहता हूं वे विचारों से मुक्त हो जाएं। मेल खा-खा कर क्या उन्हें मजबूत करवाना है? मेल खाने का तो अर्थ है उन्हें बल देना, शक्ति देना, पोषण देना, समर्थन देना।
तुम्हें यही अच्छा लगा होगा। तुम्हारे किसी विचार से मेरा विचार मेल
खा गया होगा, यह संयोग की ही बात होगी। इतने लोग यहां बैठे हैं, किसी न किसी का विचार कभी न कभी मेल खा जाएगा। उसके अहंकार को बड़ी तृप्ति होगी कि अहा, मैं भी क्या खोजी, क्या सत्यान्वेषी! पहले से ही जानता था, अब और बात पक्की हो गई। जैसे जानने में भी पक्का करना बाकी रह जाता है! एक और समर्थन मिल गया। एक और सहारा मिल गया। जैसे सत्य को भी सहारे की कोई जरूरत होती है! सहारे की जरूरत झूठ को होती है।
इसलिए विचार तर्क मांगता है, सहारे मांगता है, शास्त्रों के द्वारा समर्थन मांगता है। मगर विचार। सत्य कोई समर्थन नहीं मांगता। सत्य अपने पैरों खड़ा हो सकता है। सत्य को किसी बैसाखी की कोई जरूरत नहीं है।
विचार का जगत काम का जगत है। जो विचार से मुझसे जुड़े, जुड़े ही नहीं। भ्रांति हो गई। एक धोखा हो गया उन्हें।
फिर विचार, काम के ऊपर एक जगत है--निष्काम। निष्काम की स्थिति बिल्कुल विपरीत है। काम में वासना की दौड़ है। निष्काम में वासना के विपरीत जाने की दौड़ है। लेकिन दौड़ अभी भी है, काम राग है; निष्काम--वीतराग, वैराग्य, उदासीनता, त्याग। काम संसार है; निष्काम--संसार को छोड़ देना। लेकिन इन दोनों के पार भी एक जगत है--वीतकाम। न वासना रही, न निर्वासना रही। न तो मुझे कुछ काम पूरा करना है, न किसी काम को पूरा न हो जाए इसका मुझे भय है। न तो मैं संसार में उत्सुक हूं, न संसार में अनुत्सुक हूं। यह जोश्वास बाहर गई, भीतर न आए, तो राजी हूं, आए तो राजी हूं। आए तो ठीक, न आए तो ठीक। मेरा कोई काम अधूरा नहीं है। किसी के सहयोग की, सहारे की कोई जरूरत नहीं है।
और फूल इतने धोखा दे जाते हैं कि अब कांटों का कौन भरोसा करे! और सहारे इतना धोखा दे जाते हैं कि अब सहारों का कौन भरोसा करे! बेसहारा होने में ही मजा है। और सहारा ही मांगना हो तो परमात्मा का मांगना है, आदमी से क्या सहारा मांगना है! आदमी खुद ही बेसहारा है। वह बेचारा क्या किसी को सहारा देगा?
तो मेरा तो कोई काम शेष रहा नहीं। जितने दिन हूं, मौज का, मस्ती का गीत गाता रहूंगा। आखिरी क्षण तक भी बांसुरी बजती रहेगी। कभी शब्द में, कभी शून्य में! जिनको पीना हो पी लें। काम-धाम की बात ही न करो। पीने की बात करो, जीने की बात करो।
लेकिन तुम विचारों से भरे हुए होओगे। और तुम तलाश कर रहे हो कि तुम्हारे विचारों को कोई सहारा मिल जाए। और मेरी चेष्टा यहां बिल्कुल उलटी है। मैं चाहता हूं तुम्हारे विचार समाप्त हो जाएं, क्योंकि मैंने जो भी पाया वह विचार से मुक्त होकर पाया। विचार जब शून्य हुए तब जीवन पूर्ण हुआ। निर्विचारता अगर फले तो मुझसे जोड़ बने। दोशून्य मिल सकते हैं, दो व्यक्ति नहीं। दो व्यक्ति मिलेंगे तो खटर-पटर होगी। जैसे दो बर्तन पास-पास रखोगे तो आवाज करेंगे। दोशून्य मिल सकते हैं। और मजा यही है कि दोशून्य मिलते हैं तो एक ही शून्य बनता है, दोशून्य नहीं बनते। पचास शून्य मिलें तो भी एक ही शून्य बनता है। शून्यों के इस मिलन का नाम ही संघ है, कम्यून है। मेरे संन्यासी जो मुझसे मिल रहे हैं, वे शून्य होकर मिल रहे हैं। यह संन्यासियों का जो संघ है, इसमें बहुत लोग नहीं जुड़ रहे हैं। यह यूं है, जैसे सागर में नदियां आती हैं और लीन हो जाती हैं; बहुत कोई बचते

नहीं, अलग-अलग कोई बचते नहीं। गंगा अपना गंगापन छोड़ देती, यमुना अपना यमुनापन छोड़ देती है। सब सागर के ही स्वाद में एक हो जाते हैं, सभी नमकीन हो जाते हैं।
जुड़ना हो मेरे साथ तोशून्य में जुड़ो। मगर शून्य में जुड़ने के लिए बड़ा साहस चाहिए। अभी तो तुम संन्यासी भी नहीं हो। क्या खाक...
तुम कहते होः "आपके विचार मेरे विचारों से मिलते हैं।"
अब क्या मैं तुमसे संन्यास लूं, क्या करूं? तुम ज्यादा महत्वपूर्ण मालूम होते हो, तुम्हारे विचार ज्यादा महत्वपूर्ण मालूम होते हैं। यह मेरा सौभाग्य कि मेरे विचार तुम्हारे विचारों से मेल खाते हैं।
जरा सोचो तो तुमने क्या पूछा है, क्या तुमने कहा है? तुम यह भी न कह सके कि तुम्हारे विचार मुझसे मेल खाते हैं। नहीं, मेरे विचार तुमसे मेल खाते हैं! तुम हो आधार। तुमसे मुझे मेल खाना चाहिए। तब तुम बहुत भटकोगे, बहुत भरमोगे। तुम कुछ का कुछ समझ रहे होओगे, क्योंकि मैं तो जो बात कर रहा हूं वह निर्विचार की है। और तुम अपने विचारों के परदे के पीछे से छिपे सुन रहे होओगे। विचारों के घूंघट को तुम उठाते भी न होओगे। तुम्हारी आंखों पर परदे पड़े होंगे।
नौकर जब आठ बजे आया तो मालिक ने गुस्से में कहाः मैंने तुमसे बोला था
कि छह के लिए अलार्म भर कर सोया कर, फिर इतनी देर कैसे हो गई?
नौकर ने जवाब दियाः हुजूर, मेरे घर में सात जन हैं, मैंने छह के लिए अलार्म भरा था; बाकी छह तो समय पर जाग गए, मैं ही अकेला बच रहा। अब आप बताइए मेरी क्या गलती है?
छह के लिए अलार्म भर दिया था, सो छह उठ गए। अब सातवां कैसे उठे?
तुम कुछ का कुछ सुन रहे होओगे। तुमने जो कहा है, उससे जाहिर हो गया। तुमने नाहक अपने को उघाड़ दिया। तुम नाहक नंगे हो गए।
मम्मी की अनुपस्थिति में बारह वर्षीय फरीदा को मेहमानों के लिए चाय बनानी पड़ी। एक मेहमान बोलाः यार नसरुद्दीन, तुम्हारी बेटी के हाथों बनी चाय में तो मजा आ गया।
फरीदा ने दरवाजे की ओट से ही झांक कर कहाः चाचाजान, यदि दूध में बिल्ली ने पेशाब न की होती तो और भी ज्यादा मजा आता।
ये बच्चों जैसी बातें छोड़ो। कुछ थोड़ी प्रौढ़ता लाओ। मगर बच्चों को यह आदत होती है। छोटा बच्चा भी बाप का हाथ पकड़ कर चलता है तो वह यही सोचता है कि बाप मेरा हाथ पकड़ कर चल रहा है।
आठ साल का हरि अपने पिता जी के साथ दिल्ली जा रहा था। पिताजी रिजर्वेशन के संबंध में पूछताछ करने गए तो उन्हें बहुत देर लग गई। हरि डर गया कि कहीं वे खो तो नहीं गए। सोच-समझ कर उसने एक उपाय निकाला। पूछताछ के काउंटर पर जाकर उसने लाउड स्पीकर पर घोषणा के लिए एक कागज लिख कर बढ़ाया-- हरि के पिता श्री देवकृष्ण खो गए हैं। वे सफेद पतलून और नीला बुशर्ट पहने हुए हैं। उनके माथे पर बहुत कम बाल हैं और आगे के ऊपर वाले चार दांत नदारद हैं। जिनको मिल जाएं वे उन्हें उनके पुत्र के पास पूछताछ के काउंटर पर पहुंचा देने की कृपा करें।
खुद नहीं खोया है, बाप खो गए हैं! खोया खुद है, लेकिन सोच रहा है कि बाप
खो गए हैं। बच्चों के सोचने के अपने ढंग होते हैं। बच्चे माफ किए जा सकते हैं। मगर तुम तो बच्चे नहीं हो।
फिर से दृष्टि डालना, क्या तुमने पूछा है कि "भगवान आपके विचार मेरे विचारों से मिलते हैं!" अभी "मैं" बहुत मजबूती से बचा हुआ है। और मैं है तो मेल नहीं हो सकता। और मैं बनता ही विचारों से है।
मेरा सारा का सारा काम तुम्हारे एक-एक विचार को धीरे-धीरे खींच लेना है, एक-एक ईंट को, ताकि धीरे-धीरे यह मन का तुम्हारा जो मकान है, भूमिसात हो जाए, गिर जाए। फिर जोशेष रह जाएगा, शून्य, दीवालों से मुक्त आकाश, वही तुम हो। तत्वमसि! उससे फिर मिलन है। क्योंकि वही मैं हूं। वही यह सारा अस्तित्व है। अभी तो तुमने बात ही गलत कर दी। अभी तो तुमने जो नतीजा लिया वह इतना खतरनाक है कि जितने जल्दी चेत जाओ उतना अच्छा है, अन्यथा जल्दी ही मेरे दुश्मन हो जाओगे।

मेरे दुश्मन होना बहुत आसान है, मेरे दोस्त होना बहुत मुश्किल है। क्योंकि मेरे दोस्त होने के लिए अहंकार को गंवाना होता है। और इसलिए तो मैं इतने दुश्मन अकारण ही पैदा कर लेता हूं। करना नहीं चाहता, मगर वे हो जाते हैं। क्योंकि वे अहंकार खोने को तैयार नहीं। वे चाहते थे मैं उनके अहंकार में पोषण करूं, थोड़ी और सजावट दे दूं, थोड़ा औरशृंगार कर दूं, उनके अहंकार को और थोड़े नये वस्त्र पहना दूं, उनके अहंकार को और थोड़ी जवानी दे दूं, उम्र दे दूं, आशीष दे दूं, उनके अहंकार को और थोड़े विजय सिंहासन पर चढ़ा दूं, थोड़ा मोरमुकुट बांध दूं--तो वे मुझसे राजी होते, मेरे मित्र होते। इधर कितने लोग मेरे साथ आए। इन बीस वर्षों की कथा जिस दिन पूरी समझी जाएगी, हैरानी की होगी। कितने हजारों लोग मेरे साथ आए और गए। अलग-अलग कारणों से साथ आए, मगर गए सब एक ही कारण से।
मेरे साथ जैनों का बड़ा समूह था, क्योंकि उनको लगा कि उनके विचारों से मेरे विचार मेल खाते हैं। फिर वह समूह छंट गया। फिर उनमें से वे ही थोड़े से जैन बच रहे, जिन्होंने इस तरह नहीं सोचा था; जो मेरे शून्य के साथ जुड़े थे, मेरे विचार के साथ जिन्होंने कोई नाता नहीं बनाया था; जो मेरे साथ होने को अपने विचार छोड़े थे, अपने विचारों को पोषण नहीं दिया था। थोड़े से। अर्थात जो न होने को तैयार थे, जो अपने जैन होने तक को पोंछ डालने को तैयार थे--वे मेरे साथ रुके, बाकी तो दुश्मन हो गए।
मेरे साथ गांधीवादियों का बड़ा हुजूम था। थोड़ी दूर साथ चले, जब तक उन्हें लगा कि मेरे विचार उनसे मेल खाते हैं। फिर जैसे ही मैंने कुछ बातें कहीं, वे चौंके, घबड़ाए, बेचैन हुए, दुश्मन हो गए। मेरे साथ वेदांती थे। जब तक उन्हें ऐसा लगा कि मैं वेदांत की बात कर रहा हूं, तब तक मेरे साथ थे। जैसे ही उन्हें लगा कि यह बात तो कुछ आगे निकल गई, यह बात तो कुछ और हो गई-- छोड़ भागे, दुश्मन हो गए।
बहुत तरह के लोग मेरे साथ थे। समाजवादी मेरे साथ थे, साम्यवादी मेरे साथ थे। लेकिन उनमें से कुछ थोड़े से लोग टिकते रहे, वे थोड़े से लोग एक ही कारण से टिके। जो गए, अलग-अलग कारणों से आए थे, अलग-अलग कारणों से गए, उनके अलग-अलग विचार थे, कभी मेल खा गया तो साथ हो लिए, कभी मेल नहीं खाया तो दुश्मन हो गए। लेकिन जो टिके वे एक ही कारण से टिके--जो अपने को मिटाने को राजी थे।
यह तो मिटने वालों की जमात है। यह तो पियक्कड़ों का जगत है। तुम तो बहुत होश वाले मालूम पड़ते हो। तुम तो गणित बिठा रहे हो। तुम तो सोच रहे होः ठीक है, यही बात तो मैं सोचता था, यही बात तो मैं सोचता था। तो मैं बिल्कुल ठीक सोचता था। तो मैं आदमी बिल्कुल ठीक हूं। तुम किसी झंझट में पड़ोगे। चंदूलाल अपने मित्र से कह रहा थाः अरे अहमक, तुम तो दूसरी शादी के विरुद्ध थे, फिर तुमने शादी कैसे कर ली?
अहमक अहमदाबादी ने कहाः चंदूलाल, तुम समझे नहीं। मुझे बिल्कुल अपने विचारों की लड़की मिल गई, वह भी दूसरी शादी के विरुद्ध थी!
यह विचारों का मेल खतरनाक साबित हो सकता है। तुम जरा इससे सावधान होओ। नहीं तो जिंदगी यूं ही गंवा दोगे। विचार हैं क्या? पानी के बबूले हैं, कि पानी पर खींची गई लकीरें हैं। अधिक लोग विचारों में ही जिंदगी गंवा देते हैं।

जिंदगी है कि ये तूफान घिरा है कोई
सब तरफ मौत का सामान दिनो-रात सजे

जीते जाते हैं, मगर जीने का सलीका भी नहीं
हम किधर जाएं, किसे ढूंढें जो राजे-हयात कहे

और मैं तुमसे जीवन का राज कह रहा हूं, मगर तुम सुनोतब न? तुम तो पहले
से ही पंडित हो, ज्ञानी हो। पंडित और पंजाबी--बड़ी मुश्किल में पड़े हो!

जिंदगी है कि ये तूफान घिरा है कोई

सब तरफ मौत का सामान दिनो-रात सजे

जीते जाते हैं, मगर जीने का सलीका भी नहीं हम किधर जाएं, किसे ढूंढें जो राजे-हयात कहे

दम घुटा जाता है बदबू में बीती यादों की
इस सड़न से भरे कमरे में क्यूं बयार चले

आंख खुलती नहीं ख्वाबों के धुओं के मारे हाथ को हाथ नहीं सूझे क्या आफताब करे

दिन के हंगामों में तो वक्त गुजर जाता है दिल का सूनापन खटकता है जरा रात गए

यूं तो सुन रक्खे हैं वाइज से पयम्बर के जवाब हम ही बेअक्ल हैं जो न एक सवालात मिटे

सारी तरकीबें ताली में हिदायतें नाकाम
खुद को कैसे भला यह लफ्जों की बकवास छले

उलझनें बढ़ती चली जाती हैं हर रोज इधर
किसको फुरसत है जो कभी खुद पे ख्यालात करे

जिंदगी मुश्किल यहां मौत बहुत सस्ती है बिन खरीदे ही लगा लेती अकस्मात गले

गम के बोझों से कमर झुकती चली जाती है
सांस टूटेगी लगता है इसी पहाड़ तले

जिंदगी है कि ये तूफान घिरा है कोई
सब तरफ मौत का सामान दिनो-रात सजे

जीते जाते हैं, मगर जीने का सलीका भी नहीं
हम किधर जाएं, किसे ढूंढें जो राजे-हयात कहे

संयोग तुम्हें एक ऐसी जगह ले आया है, जहां जीवन का राज समझ सकते हो। मगर उस राज को समझने की शर्त तो पूरी करनी होगी। शर्त एक ही है--छोटी कहो, बड़ी कहो--शर्त एक ही हैः निर्विचार होकर सुनो।
मैं तुम्हें विचार नहीं दे रहा हूं। मैं कोई विचारक नहीं हूं। मैं कोई दार्शनिक नहीं हूं। मैं कोई जीवन का फलसफा निवेदन नहीं कर रहा हूं। मैं तो तुम्हें मन से मुक्त होने की कीमिया दे रहा हूं। और एक तुम हो कि तुम कुछ का कुछ समझे चले जा रहे हो।
अहमक अहमदाबादी चंदूलाल से बोलेः भई, तुम्हारे घर की मक्खियां बहुत तंग कर रही हैं। बार-बार उड़ाता हूं, फिर भी मेरी नाक के ऊपर आकर बैठ जाती हैं।
चंदूलाल ने कहाः मैं भी इनकी आदत से बहुत परेशान हूं। जो भी गंदी चीजें देखती हैं उन्हीं पर बैठ जाती हैं।
विचार भी मक्खियों जैसे हैं। अजीब-अजीब चीजों पर बैठ जाते हैं। भिन-भिन, भिन-भिन करते रहते हैं भीतर, भिनभिनाते रहते हैं। इनकी भिनभिनाहट में ही तो तुम विक्षिप्त हुए जा रहे हो।
रामदास गुलाटी, छूटो इस भिनभिनाहट से। छूटो इन मक्खियों से। जागो, बहुत सो लिए इन सपनों में। अब जरा शून्य की यात्रा करें। आओ, बैठो--शून्य

की नाव में! तब होगा मिलन। तब होगा महामिलन। और ऐसा मिलन, जो फिर कभी टूटता नहीं।

दूसरा प्रश्नः ओशो, क्या आप राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, जीसस और मोहम्मद की कोटि के व्यक्ति हैं? कृपया मेरे संशय दूर करें।

कैलाश कोठारी! राम राम हैं, कृष्ण कृष्ण, बुद्ध बुद्ध, मैं मैं हूं। न
तो वे मेरी कोटि के व्यक्ति हैं, न मैं उनकी कोटि का व्यक्ति हूं। इस दुनिया में दो व्यक्ति एक जैसे होते ही नहीं, कोटियां तो होंगी कैसे? तुम वस्तुओं की बातें कर रहे हो या आदमियों की? और ये तो फिर आदमियों में भी आदमी हैं! ये तो फूलों में भी फूल हैं! इनकी कोई कोटियां होती हैं? राम जैसा कोई दूसरा व्यक्ति हुआ?
क्या तुम सोचते हो राम और कृष्ण एक ही कोटि के व्यक्ति हैं? कोई तालमेल दिखता है तुम्हें राम और कृष्ण में? राम हैं मर्यादा पुरुषोत्तम, फूंक-फूंक कर कदम रखते हैं। आज्ञाकारी हैं। नितांत आज्ञाकारी। परंपरावादी हैं, रूढ़िग्रस्त हैं। सठियाए बाप ने चौदह साल जंगल भेज दिया, तो भी चले गए। यह भी न कहा कि क्यों, किसलिए, क्या कारण है! और बाप निश्चित सठियाया हुआ था। बूढ़े आदमी जब भी कभी जवान लड़कियों से शादी कर लेते हैं तोझंझटें खड़ी होती हैं। यह राम के पिता ने एक जवान लड़की से शादी कर ली थी; अब वह जवान लड़की जो भी मनवाती थी मानना पड़ता था। यूं तो हर पति को मानना पड़ता है, लेकिन जितना बूढ़ा हो उतना ज्यादा मानना पड़ता है। इसने एक बिल्कुल बेहूदी असंगत अन्यायपूर्ण बात मनवा ली कि चौदह साल के लिए राम को वनवास दे दो। और दशरथ यह भी न कह सके कि इसकी तुक क्या है! खैर दशरथ न कह सके, ठीक थी। मगर राम! राम में बगावत तो है ही नहीं। राम तो बिल्कुल जी-हुजूर हैं! क्रांति तो है ही नहीं। क्रांति की चिनगारी तो है ही नहीं। एकदम आज्ञाकारी हैं। बिल्कुल गोबर-गणेश हैं!
अगर मैं राम की कोटि का होऊं भी तो भी इनकार कर दूं। उनके साथ मैं नहीं बैठ सकता। मेरी उनसे न बनेगी। मेरे पिता अगर मुझसे कहते कि चौदह साल जंगल चले जाओ, चौदह साल की तो बात दूर, चौदह मिनट के लिए भी कहते, तो मामला आसान नहीं था। मैं तो वही करूंगा जो मुझे ठीक लगता है। मैं तो इंच भर अपने अनुभव, अपने बोध से अन्यथा नहीं कर सकता हूं, चाहे लाख कोई कहे, पिता कहें, सारी परंपरा कहे, शास्त्र कहें, पंडित-पुरोहित कहें।
राम पंडित-पुरोहितों को खूब जंचे। इसलिए राम की कोई हैसियत भगवान की नहीं है, लेकिन पंडित-पुरोहितों ने राम को भगवान का पर्यायवाची कर दिया। राम शब्द भगवान का पर्यायवाची हो गया। कृष्ण शब्द भगवान का पर्यायवाची नहीं हुआ, ख्याल रखना। बुद्ध शब्द भगवान का पर्यायवाची नहीं हुआ। इस देश में कोई दूसरा नाम भगवान का पर्यायवाची नहीं हुआ। राम भगवान का पर्यायवाची हो गया। राम कहा यानी भगवान कहा। राम को जपो यानी भगवान को जपो। राम यानी अल्लाह। राम यानी खुदा।
क्यों पंडित-पुरोहितों ने राम के नाम को इतना ऊपर चढ़ा दिया? कारण है, क्योंकि अतीतवादी हैं राम। बाप की ही नहीं मानी, बाप की मानना तो केवल प्रतीक है। बाप की मानना मतलब--बीते की मानना, व्यतीत की मानना, जो जा चुका उसकी मानना, जो मर चुका उसकी मानना, जो सड़ चुका उसकी मानना। अतीत को मानने का नाम... वह तो प्रतीक है बाप को मानना! बाप यानी अतीत। और जो अतीत को मानता है वह पंडित को भी मानेगा, पुरोहित को भी मानेगा।
कैसी-कैसी मूढ़तापूर्ण बातें राम ने मान लीं! पंडितों ने कह दिया कि इस शूद्र के कान में शीशा पिघला कर डाल दो, क्योंकि मनु-स्मृति कहती है कि कोई शूद्र अगर वेद सुन ले तो उसके कानों में शीशा पिघला कर डाल देना चाहिए। राम ने डाल दिया। मैं यह न कर सकूंगा। शीशा तो दूर पिघलाया हुआ, किसी शूद्र के कान में पानी भी नहीं डाल सकूंगा। मैं कैसे राम की कोटि में हो सकता हूं? मैं परंपरा-मुक्त, मैं परंपरा-विद्रोही। राम से मेरा क्या लेना-देना हो सकता है? राम को तो मैं भगवान भी मानने को राजी नहीं हूं।

यह देश जिस दिन राम से मुक्त हो जाएगा उस दिन इस देश में क्रांति होगी, उसके पहले क्रांति नहीं हो सकती। क्योंकि राम की आड़ में पंडित छिपे हैं, पुरोहित छिपे हैं, इस देश के सारे न्यस्त स्वार्थ छिपे हैं। वे सब बच्चों को बचपन से सिखाना शुरू कर देते हैं कि राम जैसे बनो, देखो क्या मर्यादा, क्या पिता की आज्ञा! मैं इन बातों का कोई मूल्य नहीं मानता। आज्ञाकारिता का जो इतना गुणगान किया जाता है, वह कौन करता है गुणगान? वह वे ही लोग गुणगान करते हैं आज्ञाकारिता का जो समाज में कोई रूपांतरण नहीं देखना चाहते।
मैं बगावती हूं। मैं इस जिंदगी को बदला हुआ देखना चाहता हूं। आदमी दुख में बहुत जी लिया, नरक में बहुत जी लिया। यह पृथ्वी स्वर्ग बन सकती है। तो राम की कोटि का तो मैं नहीं हूं। कृष्ण की कोटि का भी मैं नहीं हूं, क्योंकि कृष्ण में सब तरह की राजनीति है। मेरे जीवन में राजनीति से कोई लेना-देना नहीं है। कृष्ण धोखाधड़ी भी करने में कोई संकोच नहीं करते। कृष्ण अवसरवादी हैं, जैसा मौका देखे वैसा करने को राजी हो जाते हैं। उनके जीवन में और मेरे जीवन में क्या तालमेल हो सकता है? कृष्ण तो युद्ध को छोड़ कर भाग गए। इसलिए तो उनका एक नाम बन गया--रणछोड़दास जी। हम होशियार हैं अच्छे नाम देने में। भगोड़ा न कहा, रणछोड़दास जी कहा। और कृष्ण तो बेईमान भी साबित हुए। वचन दिया था कि शस्त्र नहीं उठाऊंगा युद्ध में और शस्त्र उठा लिया, वचन का भंग कर दिया। वचन वगैरह की कोई कीमत नहीं है, कोई मूल्य नहीं है। जैसे राजनेता बदल जाते हैं, अभी कुछ, कभी कुछ। क्या कहते हैं क्या करते हैं, कुछ हिसाब नहीं। कृष्ण न मालूम किन-किन की स्त्रियां चुरा लाए, सोलह हजार स्त्रियां इकट्ठी कर लीं! इस तरह की बातों में मुझे कोई रस नहीं है। कृष्ण की गीता से भी मैं पूरी तरह राजी नहीं हूं, क्योंकि वह मूलतः हिंसा का संदेश है--प्रेम का नहीं, शांति का नहीं। और कृष्ण की गीता असंगतियों से भरी है, विरोधाभासों से भरी है। क्योंकि चेष्टा है कि उस समय तक जो भी धर्म की धारणाएं थीं, सबको किसी तरह समाहित कर लिया जाए। राजनेता हमेशा यह हरकत करते हैं। गांधी भी यही हरकत में लगे हुए थे। इसलिए वे गीता को माता कहते थे। कहेंगे ही गीता-माता, क्योंकि वही गोरखधंधा वे भी कर रहे थे--अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान। न अल्लाह से मतलब है, न ईश्वर से मतलब है। न सबको सन्मति मिले, इससे मतलब है। मतलब कुछ और है। मतलब यह है कि यह हिंदुस्तान बंट न जाए।
राजनेता हमेशा बड़ा देश चाहता है, छोटे देश से घबड़ाता है। जितना छोटा देश उतनी छोटी उसकी राजनीति। उतनी सीमित उसकी राजनीति।
गांधी राम के भी बड़े भक्त थे। अंतिम समय भी जब गोली लगी तो उनके मुंह
से "हे राम" निकला। और यूं हरिजनों की बात करते थे। मगर गांधी ही हरिजनों को हिंदुओं के घेरे में रोकने का कारण बने। हरिजनों को कभी का हिंदुओं से मुक्त हो जाना चाहिए। क्या रहना ऐसे लोगों के साथ, जिन्होंने सिवाय तुम्हें सताया और कुछ भी न किया? पांच हजार साल जो तुम्हारी छाती पर मूंग दले, उन दुष्टों के साथ क्या रहना? अलग हो जाओ, हट जाओ! लेकिन गांधी ने हर तरह की कोशिश करके हरिजनों को अच्छा नाम दे दिया--"हरिजन।" अछूत, शूद्र भद्दे लगते हैं, अच्छा नाम दे दिया। रहे आओ। सब तरह समझा-बुझा कर उनको रखने की कोशिश की। उन्हीं मंदिरों में प्रवेश करवाने की गांधी कोशिश करते रहे, जिन मंदिरों ने हरिजनों की जिंदगी को दूभर कर दिया है।
मुझसे कोई कहे कि हरिजनों को मंदिर प्रवेश मिलना चाहिए, मैं तो कहूंगा कि हरिजनों को अगर ब्राह्मण पैर भी पड़ें और कहें हमारे मंदिर आओ तो नहीं जाना चाहिए। ये मंदिर प्रतीक हैं गुलामी के। ये इन्हीं हरिजनों को सताने के प्रतीक हैं। ये इन्हीं के खून के गारे से बने हैं। इन मंदिरों में कदम नहीं रखना चाहिए, थूकने भी नहीं जाना चाहिए। लेकिन गांधी जी की पूरी जीवन चेष्टा यही रही। उनके भक्त विनोबा की भी यही चेष्टा है कि हरिजनों का प्रवेश होना चाहिए मंदिर में। किसका मंदिर है यह? मतलब हिंदू के घेरे के बाहर हरिजन न चला जाए, नहीं तो और ताकत कम हो जाएगी, और राजनीति टूट जाएगी। हरिजन को भी रोक लो; पाकिस्तान भी न बने, यह भी रोक लो। इसलिए अच्छी-अच्छी बातें करो धर्म की, भजन-कीर्तन करो।

कृष्ण और मेरी कोटि में क्या लेना-देना? बुद्ध को हुए ढाई हजार वर्ष
हो गए। ढाई हजार वर्ष में तुम सोचते हो आदमी वहीं का वहीं है? मैं बुद्ध के ढाई हजार साल बाद आया हूं। ढाई हजार साल में आदमी ने बहुत विकास किया है। बहुत! बुद्ध तो डरते थे स्त्रियों को संन्यास देने में और मैंने स्त्रियों के हाथ में पूरा का पूरा संघ समर्पित कर दिया है। बुद्ध तो वर्षों तक इनकार करते रहे कि स्त्रियों को संन्यास नहीं दूंगा, क्योंकि उनको भय थाः अगर स्त्रियां संघ में सम्मिलित हुईं तो मेरा धर्म नष्ट हो जाएगा। यह भी क्या धर्म हुआ, जो स्त्रियों के सम्मिलित होने से नष्ट हो जाता हो? बड़ा कमजोर धर्म हुआ, जिसको स्त्रियां नष्ट कर दें। लगता है बुद्ध अभी भी यशोधरा से डरे हुए हैं, अभी भी! कहते हैं न कि दूध का जला छाछ भी फूंक-फूंक कर पीने लगता है! पता नहीं यशोधरा ने कितना सताया होगा, कि ऐसी घबड़ाहट छा गई कि बुद्धत्व आ गया, ज्ञान को उपलब्ध हो गए, मगर वह यशोधरा का डर जो समाया है वह नहीं निकलता। स्त्रियों को इनकार करते थे, नहीं सम्मिलित करेंगे। और कहा भी, जब सम्मिलित किया... मजबूरी में किया। क्योंकि बुद्ध की मां मर गई थीं जन्म देने के बाद ही। तो सौतेली मां ने बुद्ध को बड़ा किया। सौतेली मां जब संन्यास लेने आई तो बुद्ध इनकार न सके। जिसने बड़ा किया, पाला-पोसा और बहुत प्रेम दिया, जितनी सगी मां भी न दे सकती उतना प्रेम दिया--कैसे उसे इनकार करें? इनकार न कर सके, उसे स्वीकार करना पड़ा। और जब मां को स्वीकार कर लिया तो फिर स्वभावतः और भी स्त्रियों के लिए द्वार खुल गया। तो बुद्ध ने जिस दिन मां को दीक्षा दी उस दिन यह घोषणा की कि मेरा धर्म पांच हजार वर्ष टिकता, अब केवल पांच सौ वर्ष टिकेगा। क्योंकि स्त्रियां सम्मिलित हो गईं, अब सब भ्रष्ट हो जाएगा।
मुझे तुम कैसे बुद्ध की कोटि में रख सकते हो? बुद्ध अपने भिक्षुओं को कहते थे--जब वे यात्रा पर जाते--कि देखो रास्ते में कोई स्त्री मिल जाए तो देखना मत। मेरा कहीं तालमेल बैठ सकता है? मैं तो कहूंगाः रास्ते में कोई स्त्री मिल जाए तो जी भर कर देख लेना, कि फिर लौट-लौट कर न देखना पड़े। थोड़ी दूर लौट कर भी उसके साथ चलना पड़े तो चल पड़ना। थोड़ी दूर चल कर साथ-साथ देख ही लेना, ठीक से ही देख लेना, ताकि सपने में न आए, ताकि पीछे सताए न।
बुद्ध कहते थे, स्त्रियों को देखना ही मत। बुद्ध अपने भिक्षुओं को कहते थे कि चार फीट से ज्यादा देखना ही मत आगे, चार फीट जमीन पर नजर रखना। न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी। जब चार फीट देख कर चलोगे तो क्या खाक स्त्री को देखोगे! स्त्री दिखाई ही नहीं पड़ेगी।
आनंद बुद्ध से प्रश्न पूछा करता था। आनंद की बड़ी कृपा है मनुष्य-जाति पर, क्योंकि उसने ऐसे प्रश्न पूछे जोशायद अगर न पूछे होते तो हमें पता भी न होता कि बुद्ध के उत्तर क्या होते। आनंद ने पूछा कि भगवान, यह भी हो सकता है कभी, देखना पड़े। कोई ऐसी स्थिति हो सकती है कि देखना पड़े।
सच तो यह है कि मैं यह पूछूंगा कि जब तक तुम देखोगे नहीं कि यह स्त्री
है कि पुरुष, तब तक स्त्री को नहीं देखना यह तय कैसे करोगे? पहले तो देखना ही पड़ेगा कि भई कौन है, स्त्री है कि पुरुष, स्त्री है तो नहीं देखना। मगर वह तो देखना हो ही गया। अब चाहे आंखें मींचो, चाहे जोर से भींच लो, कस कर भींच लो, पट्टी बांध लो; मगर क्या, देख तो चुके ही। या तो यह कहो कि किसी को देखना ही मत, स्त्री हो कि पुरुष, गधा हो कि घोड़ा, हाथी हो कि ऊंट, देखना ही मत--तो ठीक। जब तुम कहते होस्त्री को मत देखना, तो इसका मतलब, भेद तय करना पड़ेगा--घोड़ा जा रहा है, खच्चर जा रहा है, हाथी जा रहा है, आदमी जा रहा है कि स्त्री जा रही है, कौन जा रहा है? एक दफा तो देखना ही पड़ेगा। फिर चाहे आंखें नीची कर लेना, फिर चाहे आंखें बंद कर लेना, चाहे फोड़ ही लेना।
तो मैं तो यह मानता हूं, जब तक तुम स्त्री को देखोगे नहीं तब तक नहीं देखने का सवाल ही नहीं उठता। और जब देख ही लिया तो अब क्या खाक नहीं देखना! अरे अब देख ही लो। अब जी भर कर देख लो। निपटारा ही कर लो। अधूरा-अधूरा देखोगे तो यह स्त्री की छवि झलकती रह जाएगी। और मनुष्य की कल्पना स्त्री को जितना सुंदर कर लेती है उतना यथार्थ में कोई स्त्री सुंदर नहीं होती, न कोई पुरुष इतना सुंदर होता है। कल्पना। कल्पना खूब रंग भर देती है। इंद्रधनुष बना देती है जहां कुछ भी नहीं। फूल खिला देती है जहां राख भी

नहीं। तारे सजा देती है जहां अंधकार भी नहीं। रात को दिन बना देती है।
मिट्टी को सोना कर देती है। कल्पना जादू है।
लेकिन आनंद ने पूछा कि अगर किसी स्थिति में देखना ही पड़े, फिर क्या करना? तो बुद्ध ने कहाः फिर छूना मत। अगर देख भी लो, भूल-चूक से देखना भी पड़े तो आंख बचा कर निकल जाना। मगर छूना मत।
एक तरफ तो कहते हो कि शरीर हड्डी-मांस-मज्जा, अरे, इसमें रखा क्या है!
और दूसरी तरफ कहते हो--छूना मत! हड्डी-मांस-मज्जा को छूना मत! एक तरफ कहते होशरीर तो मिट्टी का पुतला और दूसरी तरफ कहते हो छूना मत। दोनों बातों में विरोध है। अगर शरीर मिट्टी का पुतला है तो छुओ न छुओ बराबर है। मिट्टी को तो छूते हो रोज। मिट्टी से तो बच कर नहीं चलते।
बुद्ध ने तो अपने भिक्षुओं को कहाः जूते मत पहनना। अगर यह बात सच थी
कि मिट्टी को छूने में खतरा है तो बुद्ध के भिक्षु को तो जूता निकालना ही नहीं चाहिए, चाहे रात सोए, चाहे कुछ भी करे, भोजन करे, जूता तो डांटे ही रहना चाहिए। क्योंकि कहीं मिट्टी छू जाए! मिट्टी ही अगर स्त्री का आधार है, देह का आधार है, तो फिर तो मिट्टी को भी छूने में घबड़ाहट होनी चाहिए। मगर नहीं, यह सब बात कहने की है। यह सिर्फ निंदा के लिए कि मिट्टी है।
यह सिर्फ घबड़ाने के लिए है। यह वीभत्सता प्रकट करने के लिए कि स्त्री में क्या है--हड्डी-मांस-मज्जा, मवाद! अरे क्या इसको छू रहे हो! शर्म नहीं आती? और तुममें क्या है? तुम्हारे शरीर में क्या है? स्त्री के ही शरीर से तुम्हारा शरीर बना है। तुम्हारे शरीर में भी वही हड्डी-मांस-मज्जा है। और हड्डी-मांस-मज्जा हड्डी-मांस-मज्जा को छुए, इसमें किसी को क्या एतराज? अरे हड्डी-मांस-मज्जा हड्डी-मांस-मज्जा से निकली है। हड्डी-मांस-मज्जा हड्डी- मांस-मज्जा ही है, इसमें इतना क्या परेशान होना?
बुद्ध ने कहाः छूना मत। लेकिन आनंद भी एक था! उसने कहाः कोई ऐसी स्थिति भी हो सकती है कि छूना पड़े। समझो कि कोई स्त्री गिर गई और उसको उठाना पड़े; न होस्त्री, कोई भिक्षुणी गड्ढे में गिर जाए तो उसको निकालना पड़े, तो छूना कि नहीं?
बुद्ध ने कहाः छूना पड़े छू लेना मगर बोलना मत। देख रहे हो क्या शतरंज
की चालें चली जा रही हैं! इधर आनंद भी चाल चला जा रहा है, उधर बुद्ध भी चाल चलते हैं कि बोलना ही मत। और आनंद ने कहाः भई कोई ऐसी हालत भी हो सकती है कि बोलना भी पड़े, कि पूछना पड़े कि बाई कैसे गिर गई, कि टांग तो नहीं टूट गई, कि अस्पताल पहुंचा दूं, कि तेरा घर कहां है, कि क्या करूं, क्या न करूं? चल लेगी कि कंधे पर उठा कर ले चलूं। कुछ पूछना पड़े और बिल्कुल बिना पूछे एकदम उठा कर भाग खड़े होओ, वह भी नहीं जंचेगा। और दूसरे लोग पकड़ लें तुमको कि क्या मामला है, तुम्हीं ने तो नहीं गिराया था इस स्त्री को? इसकी हड्डी टूट गई, तुम भाग खड़े हुए! बोले तक नहीं! यह भी न पूछा कि बाई, चोट कहां लगी! सज्जनता भी कोई चीज है, शिष्टाचार भी।
तो आनंद ने कहा कि अगर कुछ पूछना भी पड़े तो? तो बुद्ध ने आखिरी चाल चली। उन्होंने कहाः फिर तुम्हें जो करना हो करना, एक बात ख्याल रखना कि ध्यान रखना, जागरूक रहना। होश न खो देना।
मुझे तुम बुद्ध की कोटि में कहां रखोगे? मैं भी कहता हूंः होश रखना। अरे जब होश ही रखना है तो जी भर कर छूना! जब होश ही है तो फिर क्या डर! फिर बोलो भी, बतियाओ भी, गपशप भी करो, छुओ भी, नाचो भी, गाओ भी! जब होश ही है... । यह तो होश न हो उनके लिए ये बातें ठीक थीं, बुद्ध ने जो कहीं। और जिनमें होश नहीं है वे अगर न भी देखेंगे तो क्या होगा? बच कर भी निकल जाएंगे तो क्या होगा?
मैं तो कहता हूंः होश पर्याप्त है। और होश को साधने के लिए यह सम्यक अवसर है। होश को साधोगे कहां? उसके लिए चुनौती कहां है? जहां चुनौती है वहीं साधने की सुविधा है।
मैं बुद्ध से पच्चीस सौ साल बाद हूं, उसी कोटि में कैसे हो सकता हूं? कोई उपाय नहीं।
और तुम कहते हो--महावीर! महावीर से मेरा क्या तालमेल बिठाओगे? असंभव
है तालमेल बिठालना। महावीर मानते हैं शरीर को दमन करने में, सताने में,

गलाने में। मैं शरीर का दुश्मन नहीं। मैं तोशरीर को मंदिर मानता हूं। मैं तो कहता हूंः शरीर को प्रेम करो; शरीर परमात्मा की देन है, किसी पाप का फल नहीं। शरीर को स्वस्थ रखो, सुंदर रखो, सजाओ। महावीर तोशरीर के बड़े दुश्मन हैं। वे तो कहते हैंः भूखे मरो, अनशन करो, उपवास करो। मैं तो सम्यक आहार पर भरोसा करता हूं। न ज्यादा खाओ, न कम। दोनों दुश्मनी हैं। ज्यादा खाओ तोशरीर के साथ दुश्मनी, कम खाओ तोशरीर के साथ दुश्मनी। उतना खाओ जितना शरीर को जरूरत है। न कम, न ज्यादा। उतने सोओ जितना शरीर को जरूरत है। महावीर तो तपस्वी हैं। मैं तो तपश्चर्या के पक्ष में नहीं। मैं तो तपश्चर्या को एक तरह की हिंसा मानता हूं। कुछ लोग दूसरों को सताते हैं, कुछ लोग खुद को ही सताते हैं। दुनिया में दो तरह के सताने वाले लोग हैं। जो दूसरों को सताते हैं वे कम से कम बेहतर हैं उनसे जो खुद को सताते हैं, क्योंकि दूसरे को सताओगे तो दूसरे को कम से कम आत्मरक्षा का उपाय तो है। तुम तलवार चलाओ तो वह ढाल तो उठा सकता है, भाग तो सकता है। वह भी तो तलवार निकाल सकता है। मगर खुद को सताओगे तो, तो कोई आत्मरक्षा का उपाय ही न बचा। जब तुम ही सताने वाले हो, जब रक्षक ही भक्षक हो गया, तो फिर तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी।
महावीर तो बाल लोंचते हैं। मैं तो बाल लोंचने को पागलपन का लक्षण मानता हूं। अक्सर स्त्रियां जब गुस्से में आ जाती हैं तो बाल लोंचती हैं।
तुम भी जब बहुत गुस्से में होते हो ऐसा मन होता है कि लोंच-लांच कर रख दो। यह तो क्रोध में, विक्षिप्तता में... । लेकिन महावीर बाल लोंचते हैं। क्यों? क्योंकि उस्तरा तो एक वैज्ञानिक साधन हो गया। हद हो गई--उस्तरा और वैज्ञानिक साधन! तो खुद ही अपने घर में ही लोहे को घिस-घिसा कर उस्तरा बना लो, और क्या करोगे? मगर लोंचना बालों को! मगर वह महावीर की तपश्चर्या का अंग है। नंगे रहना--धूप में, सर्दी में... ! मुझे तुम कैसे महावीर की कोटि में रखोगे?
और महावीर तो कहते हैंः संसार दुख है, आवागमन से छुटकारा पाना है। और मैं कहता हूंः संसार आनंद है और प्रभु की अनुकंपा है कि तुम्हें उसने संसार की भेंट दी। इस संसार में ही संन्यास के फूल को खिलाना है। महावीर तो संसार को छोड़ने के पक्षपाती हैं। मैं संसार को जीने का पक्षपाती हूं-- उसकी समग्रता में, उत्सवपूर्वक, अनुग्रह से। मुझे तुम कैसे महावीर की कोटि में रखोगे?
जीसस तो कहते हैंः मैं ईश्वर का बेटा हूं। मेरे लिए तो ईश्वर जैसा कोई व्यक्ति ही नहीं है, इसलिए उसका कोई बेटा होने का सवाल उठता नहीं है। बाप ही नहीं है तो बेटा कोई कैसे होगा? मेरे लिए ईश्वर कोई व्यक्ति नहीं है, भगवान कोई व्यक्ति नहीं है--भगवत्ता है। यह सारा जगत भगवत्ता से आपूर है। और सब इसके बेटे हैं। जीसस तो कहते हैंः मैं प्रभु का इकलौता बेटा हूं। यह भी खूब हो गई बात! इकलौते, फिर क्या हुआ? फिर माता जी मर गई, कि पिता जी मर गए, कि तलाक हो गया, कि संतति-नियमन के उपाय करने लगे, फिर हुआ क्या? और अनंतकाल में एक बेटा पैदा किया--और ये सर्वशक्तिमान ईश्वर! इनको तो कोई भी भारतीय मात दे दे। इनसे तो भारतीय ज्यादा शक्तिशाली दिखाई पड़ते हैं। चाहे हड्डी निकल रही हों, मगर दस-बारह लड़के-बच्चे तो खड़े कर ही देंगे। एक दर्जन से कम कोई भारतीय खड़ा करे तो कोई भारतीय है? कोई आश्चर्य नहीं कि देवता भारत में पैदा होने को तरसते हैं! अरे और कहीं पैदा ही उनको कौन होने देगा? यहीं पैदा हो सकते हैं, क्योंकि यहां तो कोई हिसाब ही नहीं, कोई रुकावट ही नहीं। और ईश्वर तो एक बेटा पैदा कर चुका सो खत्म। और मामला तो बड़ा खराब है, कम से कम ईश्वर ने तो एक बेटा पैदा किया और जीसस, उन्होंने एक भी पैदा नहीं किया। बूढ़ा वंश कबीर का, उपजा पूत कमाल! ये तो कमाल बेटा पैदा हो गए! अरे कम से कम एक तो पैदा कर देते! तो सिलसिला तो जारी रहे, नहीं तो सिलसिला ही मिट जाएगा।
जीसस जो बातें करते हैं, वे ढाई हजार साल पुराने जेरुसलम में सार्थक मालूम रही होंगी। क्योंकि यहूदी मानते थे एक ईश्वर में व्यक्ति की तरह।
और यहूदी मानते थे कि ईश्वर का बेटा आएगा।

जीसस मांसाहारी थे, मैं मांसाहारी नहीं हूं। जीसस शराबी थे, मैं शराबी नहीं हूं। मुझे तुम जीसस की कोटि में कैसे रखोगे, किस हिसाब से रखोगे? मुझे जीसस की कोटि में रखने का कोई उपाय नहीं। जीसस अपनी कोटि हैं। मोहम्मद जिंदगी भर तलवार लेकर लड़ते रहे। उनकी जिंदगी तो लड़ने में ही गई। संघर्ष, झगड़ा, जेहाद, धर्म-युद्ध। तलवार से लड़ने को मैं कोई बड़ी कला नहीं मानता। यह बहुत नीचे तल की लड़ाई है। अरे जब विचारों से लड़ा जा सकता हो और विचारों की तलवारों पर धार रखी जा सकती हो, तो क्या तलवार हाथ में लेना? तलवार हाथ में लेना तो कमजोरी का लक्षण है। जब हम विचार से लड़ सकते हों, जब हम विचार से ही जीत सकते हों, तो क्यों तलवार हाथ में लेना? तलवार तो वह हाथ में लेता है जो पाता है कि अब विचार से मैं जीत सकता नहीं, तब उठा लो तलवार! कुछ लोगों के लिए एक ही तर्क मालूम है--तलवार। वे कोई दूसरा तर्क नहीं जानते।
और मोहम्मद की वह आदत मुसलमानों में छूट गई, वह अभी भी गई नहीं। वे वही
एक तर्क मानते हैं--तलवार। और जो जीत जाए तलवार से। उसका विचार सत्य था। यह भी खूब मजा रहा! सत्य का और तलवार से निर्णय होता है? तो, तो फिर जीसस को फांसी लग गई, इनके विचार गलत हो गए। फिर तो सुकरात को जहर देकर मार डाला, सुकरात के विचार गलत हो गए। जिन्होंने जहर दिया उनके विचार सच्चे और जिन्होंने सूली लगाई उनके विचार सच्चे।
मोहम्मद, जीसस, महावीर, बुद्ध, कृष्ण, राम--सब अपने ढंग के लोग हैं। मैं किसी की कोटि में क्यों सम्मिलित होऊं? मैं किसी क्यू में खड़े होने में उत्सुक ही नहीं हूं। मैं अपनी कोटि का व्यक्ति हूं।
कैलाश कोठारी, तुम भी क्या फिजूल के प्रश्न पूछते हो! मैं यह नहीं कह रहा हूं कि उनसे ऊपर हूं, वे मुझसे नीचे हैं या वे मुझसे ऊपर हैं, मैं उनसे नीचे हूं। मैं तो मानता हूं इस पृथ्वी पर कोई न ऊंचा है, न कोई नीचा है। राम और कृष्ण और बुद्ध को ही ऊंचा नहीं, नीचा नहीं, मोर और हिरण और गुलाब के फूल, इनको भी मैं अपने से ऊंचा या नीचा नहीं रखता। यह सारा अस्तित्व एक है। इसमें कोई दूसरा है ही नहीं कि कोई ऊंचा हो सके, कोई नीचा हो सके। इसमें अगर कोई फर्क भी है लोगों में, तो बस एक ही बात का फर्क है। कुछ लोग सोए हैं, उनकी मर्जी, उनको हक है सोने का। और कुछ लोग जाग गए हैं, उनकी मर्जी। उनको नहीं सोना, जाग गए। दुनिया में बस इतना ही फर्क है कि सोए हुए लोग और जागे हुए लोग। मगर दोनों में कोई ऊंचा-नीचा नहीं है। मैं तो अज्ञानी को भी बुद्धों से नीचा नहीं मानता, क्योंकि दोनों का अंतर्तम तो एक ही है। यह तो सब अभिनय है, जो बाहर चल रहा है कि कोई राम बना है, कोई रावण बना है। और परदे के पीछे, जब परदा गिर जाता है, तो राम और रावण दोनों साथ बैठ कर चाय पीते हैं, गपशप करते हैं।
मेरे गांव में रामलीला होती थी तो मेरा खास रस रामलीला में कम था, मेरा रस था रामलीला के पीछे, जहां अभिनेता तैयार होते हैं, सजते हैं, परदे पर आते हैं, फिर अंदर चले जाते हैं। मैं वहां किसी न किसी तरह घुस कर पहुंच जाता था। मुझे कई दफा रामलीला के मैनेजर कहें भी कि भई, तुम्हें यहां क्या करना? वहां बाहर सारी दुनिया बाहर इकट्ठी है, सब लोग वहां देख रहे हैं, तुम यहां क्या देखते हो?
मैंने कहाः मुझे यहीं देखने दो, क्योंकि यहां मैं एक से एक गजब की चीजें देखता हूं! यहां मैं सीता मैया को बीड़ी पीते देखता हूं, जो मैंने वहां कभी देखा ही नहीं। अब यह चीज है सार की, जो वक्त पर काम आएगी। और आ रही है काम, अब भी काम आ रही है। यहां रामचंद्र जी को और रावण को गले में हाथ डाले देखता हूं, जो वहां कभी दिखते ही नहीं। यहां मैंने हनुमान जी को रामचंद्र जी को चपत लगाते देखा है कि ऐसी की तैसी तेरी! और रामचंद्र जी कुछ न कर पाए। बाहर ये ही हनुमान जी पूंछ दबाए हुए और बिल्कुल बैठक मार कर रामचंद्र जी के पास बैठे रहते हैं कि जी हुजूर, जो आज्ञा, जो हुक्म! और ऐसी चपत दी अंदर, क्योंकि वे जो हनुमान जी बनते थे वे तो गांव के पहलवान थे, एक लफंगा थे। अब छंटा हुआ कोई लफंगा ही बने हनुमान जी और कौन बने! उनकी शक्ल-सूरत भी बंदरों से मिलती थी। और रामचंद्र जी तो बेचारा एक छोकरा था पंद्रह-सोलह साल का, हनुमान जी तो उसकी मिट्टी पलीद कर दें अगर जरा गड़बड़

करे। वहीं ठिकाने लगा दें कि जिंदगी भर के लिए याद आ जाए कि अब कभी राम नहीं बनना।
पीछे जो खेल मैंने देखा वह असली था। बाहर जो खेल चल रहा था, वह नकली था।
यह सारा जगत एक बड़ा मंच है, जिस पर बहुत तरह के अभिनय चल रहे हैं। अभिनय के पीछे एक ही सत्ता है, एक ही परमात्मा है। वही कभी राम में धनुष लेकर खड़ी होती है, कभी कृष्ण में बांसुरी बजाती है, कभी बुद्ध में मौन ध्यान करती है, कभी महावीर में नग्न तपश्चर्या करती है, कभी जीसस में सूली पर लटकती है, कभी मोहम्मद में तलवार हाथ में लेकर धर्म की रक्षा को निकल पड़ती है। मगर सब खेल, सब अभिनय।
कोटियों में बांटो तो प्रत्येक व्यक्ति अपने में एक कोटि है।
और तुम कहते होः "कृपया मेरे संशय दूर करें।"
तुम्हारे संशय मैं कैसे दूर करूं? मन से मुक्त हो जाओ, संशय से मुक्त
हो जाओगे। मन रहेगा तो संशय और उठेंगे। मन रहेगा तो मन में ऐसे ही प्रश्न लगते हैं, संशय लगते हैं, जैसे वृक्षों में पते लगते हैं। एक में से एक बात निकलती आती है। मन तो पूर्वाग्रहों से भरा होता है। अब तुम अगर राम के भक्त हो तो तुम्हें चोट लग जाएगी। तुम अगर कृष्ण के भक्त हो तो चोट लग जाएगी। तुम अगर बुद्ध के भक्त हो तो चोट लग जाएगी।
मैं तो किसी का भक्त नहीं हूं। मैं तो इन सारे लोगों में जो-जो अनूठा है, उसको प्रेम करता हूं। लेकिन जो नहीं है अनूठा, जो मुझे अनूठा नहीं लगता, उसे मैं साफ कह देता हूं कि यह बात कुछ अनूठी नहीं है, मुझे कुछ जंचती नहीं। मैंने किसी को अपना आराध्य नहीं मान लिया है। मेरा कोई आराध्य नहीं है--न राम, न कृष्ण, न मोहम्मद, न बुद्ध, न महावीर। महावीर में जो सुंदर था, उस पर मैं बोला हूं। महावीर में जो सुंदर नहीं था, उस पर मैं अभी नहीं बोला हूं, कभी जरूरत पड़ी तो बोलूंगा। दिन करीब आ रहे हैं कि शायद बोलना पड़े। बुद्ध पर जो सुंदर है, उस पर मैं बोला हूं, लेकिन बहुत कुछ जो सुंदर नहीं है, जरूरत पड़ी तो उस पर भी तलवार की धार रखूंगा। तैयारी कर रहा हूं। अभी लोग इकट्ठे हो जाएं, जिनको मैं चाहता हूं वे आ जाएं, जो मेरी बात समझ सकेंगे--तो मैं दूसरा पहलू भी जरूर बोलूंगा। बिना बोले नहीं जाऊंगा। क्योंकि यह तो एक पहलू की बात हुई कि मैंने गीता में जो सुंदर था उस पर बोल दिया, लेकिन बहुत कुछ है जो असुंदर है। और भ्रांति हो सकती है, क्योंकि तुम्हें लगे कि सभी सुंदर है। सभी सुंदर नहीं है। सभी सुंदर होता तो गीता मेरे लिए आराध्य ग्रंथ हो जाती; मेरे लिए कोई आराध्य ग्रंथ नहीं है। बहुत कुछ असुंदर है, जो मैंने अभी नहीं बोला है, क्योंकि अभी वे लोग तैयार नहीं हैं जो उसे सुन सकें। अभी तो जो सुंदर है उसको बोलने में भी लोगों को अड़चन खड़ी होती है, क्योंकि मेरे सौंदर्य की दृष्टि भी अलग है। और जब मैं उनकी कुरूपता उघाडूंगा तो, तो निश्चित उपद्रव होने वाला है, भारी उपद्रव होने वाला है। उस उपद्रव के पहले लोग तैयार हो जाएं। इसलिए प्रतीक्षा कर रहा हूं। जल्दी वह घड़ी आएगी।
मैं दोनों पहलू सामने रख देना चाहता हूं। अब तक किसी ने यह काम किया नहीं। दुश्मनों ने वह कहा जो गलत था। भक्तों ने वह कहा जो ठीक था। न मैं किसी का दुश्मन हूं, न किसी का भक्त। मैं तो बिल्कुल साक्षी हूं। मैं तो पूरी बात कह देना चाहता हूं। तो मोहम्मद में जो प्रिय है वह भी कहूंगा और जो अप्रिय है वह भी कहूंगा। मैं तो बात पूरी खोल कर रख देना चाहता हूं। मैं किसी की कोटि में नहीं हूं। इससे तुम यह मत समझना कि मैं यह कह रहा हूं कि मैं उनसे ऊपर हूं। मैं सिर्फ इतना ही कह रहा हूं कि यहां कोई किसी की कोटि में होता ही नहीं। तुम भी किसी की कोटि में नहीं हो। तुम तुम हो, मैं मैं हूं। और यही शुभ है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं हो।
मगर पूर्वाग्रह तुम्हें कष्ट दे रहे होंगे। तुम्हारे प्रश्न में यह बात छिपी है।
तुम पूछते होः "क्या आप राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, जीसस और मोहम्मद की कोटि के व्यक्ति है?"

तुम सोच रहे होओगे कि मैं कहूंगा कि हां, मैं उनकी कोटि का व्यक्ति हूं। तो तुम्हें एक मौका मिल जाएगा कि देखो यह आदमी अहंकारी, दंभी, यह अपने को बुद्ध, महावीर, कृष्ण की कोटि का व्यक्ति कहता है! अब तुम मुश्किल में पड़ोगे, क्योंकि मैंने कहा कि मैं उनकी कोटि का नहीं हूं, वे भी मेरी कोटि के नहीं हैं। मेरे उत्तर की तुम पहले से अपेक्षा करना ही मत, क्योंकि मेरे उत्तर का कुछ हिसाब नहीं है। मैं कोई भरोसे का आदमी नहीं हूं। तुमने सोचा होगा कि दो ही उत्तर हो सकते हैं; या तो मैं कहूंगा कि हां मैं उनकी कोटि का हूं, सो तुम जाकर जाहिर कर सको कि अरे, यह आदमी अहंकारी, दंभी; या तुम कहोगे कि यह आदमी कहेगा कि मैं उनकी कोटि का नहीं हूं, तो तुम पूछ सकोगे कि फिर आपको लोग भगवान कहते हैं, आप इनकार क्यों नहीं करते? अब मैंने तुम्हें असली मुश्किल में डाला। न मैं उनकी कोटि का हूं, न वे मेरी कोटि के हैं। वे अपने ढंग के भगवान हैं, मैं अपने ढंग का भगवान हूं, ढंग-ढंग के भगवान हैं, किस्म-किस्म के भगवान हैं!
लेकिन तुम्हारा कोई पूर्वाग्रह होगा। ये जो तुमने चार-पांच नाम गिनाए हैं, इनमें से कोई एकाध नाम तुम्हारा पूर्वाग्रह होगा। तुमने चार-पांच में छिपाने की कोशिश की है।
संशय किसलिए उठ रहा है तुम्हें? और मैं कौन हूं, इसमें तुम्हें संशय
की क्या जरूरत? तुम अपनी फिकर करो कि तुम कौन हो। उससे तुम्हारी नाव पार लगेगी। मैं कौन हूं और कौन नहीं हूं, इससे तुम्हें क्या चिंता? मेरी चिंता होनी चाहिए। मुझे फिकर होनी चाहिए।

अरे यार पेड़!
कब से यूं ही खड़े हो
किस बात पर अड़े हो
क्या पैर दुखा नहीं
तन तुम्हारा थका नहीं?

ऐसा भी क्या तनना
इतना भी क्या चौकस रहना
चलो तुम्हें टहला लाएं
कुछ दूर की सैर करा लाएं
और नहीं तो कम से कम
एक कप कॉफी ही पिला लाएं

चलोगे तो हिलोगे, नई हवा में नया कुछ सुनोगे
शायद मुक्त मन से उसे गुनोगे
फिर तबीयत करे तो यहीं लौट आना
या और आगे बढ़ जाना
ओह बड़े जिद्दी हो, चलो भी
पुराने से इतना क्या चिपटना
चेतन होकर भी ऐसा क्या जड़ होना

मगर बस लोग यूं ही पेड़ों की तरह गड़े खड़े हैं। और हम तो ऐसे अजीब लोग हैं, गड़े होने से हमारा इतना मोह है कि हम चलती हुई चीज को भी गाड़ी कहते हैं। गाड़ी यानी गड़ी हुई। चलती हुई चीज को भी गाड़ी कहते हो--रेलगाड़ी, कि बैलगाड़ी, कि घोड़ागाड़ी! चलती हुई चीजों को गाड़ी! गाड़ी से कैसा मोह है तुम्हारा? खुद तो गड़े खड़े ही हो।

चलो जरा मेरे साथ चलो
और नहीं तो कम से कम
एक कप कॉफी ही पिला लाएं
चलोगे तो हिलोगे, नई हवा में

नया कुछ सुनोगे
शायद मुक्त मन से उसे गुनोगे
और फिर तबीयत न लगे
तो यहीं लौट आना
या और आगे बढ़ जाना

मगर ऐसे चिपके हैं लोग अपनी-अपनी धारणाओं से, वे धारणाएं चाहे कितनी
ही मूढ़तापूर्ण क्यों न हों, चाहे उन धारणाओं के पक्ष में एक भी प्रमाण न हो--मगर चिपके हुए हैं।
अदालत में यह पूछे जाने पर कि आप तलाक क्यों देना चाहती हैं अपने पति को, चंदूलाल की पत्नी ने उत्तर दियाः मुझे इस बात का विश्वास है कि मेरे पति मेरे प्रति वफादार नहीं हैं। और इसका स्पष्ट प्रमाण है कि मेरे एक बेटे की भी शक्ल उनसे नहीं मिलती।
देखा, क्या प्रमाण दिया!
अहमक अहमदाबादी अपनी पत्नी से बोलेः बार-बार मैं तुम्हारे मुंह से बेवकूफ शब्द सुन रहा हूं। उम्मीद है कि तुम मुझे नहीं कह रही हो।
पत्नी बोलीः आप अपने आपको समझते क्या हैं? क्या दुनिया में आप अकेले
ही बेवकूफ हैं?
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी एक दिन मुझसे कह रही थीः मेरे पति बड़े दयालु हैं। उनसे किसी का दुख नहीं देखा जाता।
मैं थोड़ा चौंका। मुल्ला नसरुद्दीन को मैं भलीभांति जानता हूं। मैंने नसरुद्दीन की पत्नी से कहाः सच! तुम तो मुझे हैरान करती हो। कोई उदाहरण है तुम्हारे पास?
उसने कहाः अरे, उदाहरण की क्या कमी है! मैं जब लकड़ी चीरती हूं, तो वे पड़ोस में जाकर गपशप करने लगते हैं। उनसे किसी का कष्ट नहीं देखा जाता। मैं जब बर्तन मलती हूं, वे शराबखाने चले जाते हैं। उनसे किसी का कष्ट नहीं देखा जाता। अरे, यहां तक कि एक दिन वे बीमार थे और मैं लकड़ी चीर रही थी, कहीं जा तो नहीं सकते थे, सो आंख बंद करके लेट रहे। मैंने पूछा, क्यों आंख बंद कर लीं, कहने लगे--मुझसे किसी का दुख नहीं देखा जाता।
आदमी अपनी हर चीज के लिए चाहे तो प्रमाण खोज ले। और मन बहुत चालबाज है, प्रमाण खोजने में कुछ गड़बड़ नहीं लगती, कुछ देर नहीं लगती।
मुल्ला नसरुद्दीन से मैंने एक दिन पूछा कि नसरुद्दीन, तुम तो कहते थे
कि जब तक समय न आए, कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता, फिर तुम जब बाहर जाते हो तो साथ में बंदूक क्यों रखते हो?
नसरुद्दीन ने कहाः हो सकता है मेरा समय न आया हो, लेकिन किसी और का समय
आ गया हो।
तुम अपने संबंध में सोचो, कैलाश कोठारी। यह संशय दूर कैसे करोगे? और संशय दूर करने की जरूरत क्या? राम से तुम्हें कुछ लेना? कृष्ण से तुम्हें कुछ लेना? बुद्ध से कुछ मतलब, कुछ प्रयोजन? मैं कौन हूं, क्या हूं--इससे तुम्हें क्या मिलेगा? जान भी लोगे तो क्या मिलेगा? संशयरहित भी जान लोगे तो क्या मिलेगा? इसकी फिकर करो कि तुम कौन हो। पूछो कि मैं कौन हूं।
और दो ही स्थितियां हो सकती हैं--या तो सोए हुए हो, या जागे हुए हो। जागे हुए होते तो पूछते ही नहीं। इसलिए साफ है कि सोए हुए हो। अब सोया हुआ आदमी क्या कृष्ण को समझेगा, क्या बुद्ध को समझेगा, क्या महावीर को समझेगा, क्या मुझको समझेगा? और सोए हुए आदमी के संशय दूर कैसे होंगे?
जागो। जागने में संशय दूर हो जाते हैं। और जागने का जो अभूतपूर्व क्रम है वह तुम्हारे भीतर घटना है, मेरे भीतर नहीं घटना है। मैं तो जाग चुका। मेरे तो सारे संशय दूर हो गए। सच पूछो तो मैंने कभी किसी से कोई प्रश्न पूछा ही नहीं। अपने बचपन में जरूर पूछता था प्रश्न, वे भी गांव में जो साधु-संत महात्मा आते थे उनको सताने के लिए, और किसी कारण से नहीं। सिर्फ सताने के लिए।
जैसे एक महात्मा मेरे गांव में आए हुए थे, वे हमेशा आते थे। उनका व्याख्यान होता था गांव में जो राममंदिर था उसमें। राममंदिर में जब किसी

का व्याख्यान होता था तो वे मुझे घुसने नहीं देते थे। वे कहते कि तुम और किसी समय... चौबीस घंटे राममंदिर तुम्हारे लिए खुला है, मगर जब किसी का प्रवचन हो तब नहीं। मैं कहता कि भई मेरे कुछ संशय हैं। राममंदिर का पुजारी कहता कि भैया मुझे पक्की तरह पता है कि तुम्हारे कोई संशय नहीं हैं। तुम सिर्फ उस बेचारे को परेशान करना चाहते हो। हम तो किसी तरह महात्माजी को लिवा कर लाए हैं और मैं तुमसे सच कहे देता हूं कि आने के पहले महात्माजी ने कह दिया था कि वह छोकरा तो नहीं आएगा? वे लोग पहले शर्त लगा देते हैं हम करें क्या?
मैं उनसे कहता कि अगर मुझे मंदिर, मंदिर में नहीं आने दिया तो मैं मंदिर के बाहर उपद्रव मचाऊंगा। मैं लोगों से कहूंगाः ये किस तरह के महात्मा हैं कि मेरा संशय दूर नहीं करते! जो भी भीतर जाएगा उससे ही मैं कहूंगा कि पूछना महात्माजी से कि छोकरा बाहर खड़ा है, उसका संशय दूर करना है उसे और आप अंदर नहीं आने देते। अगर एक छोकरे का संशय दूर नहीं कर सकते तो हमारा क्या खाक संशय दूर करोगे!
सो उपद्रव और न बढ़ जाए, मुझे अंदर आने देता। और महात्माजी मुझे देखते
ही से गड़बड़ हो जाते। और मैं तो बिल्कुल सामने ही बैठता। वे एक-एक शब्द तौल कर बोलते, क्योंकि वे जानते कि मैं कोई भी शब्द पकड़ लिया तो मुश्किल खड़ी हो जाएगी। जैसे वे एक दिन बोल रहे कि शरीर तो मिट्टी है। मैंने कहाः ठीक! अगर मैं एक दो-चार चपत आपको लगा दूं तो आप नाराज तो नहीं होंगे? अगर शरीर मिट्टी है तो इसमें क्या नाराजगी है? अरे क्या तुम्हारी मिट्टी क्या मेरी मिट्टी, सबकी मिट्टी मिट्टी है!
वे कहने लगेः कैसी बातें करते हो?
मैंने कहाः आप कैसी बातें करते हो? आप ही ने उपद्रव खड़ा कर दिया। आप कह रहे कि शरीर मिट्टी है। तो अगर मिट्टी के साथ मिट्टी जैसा व्यवहार किया जाए तो इसमें एतराज क्या है?
एक दिन बोले संसार माया है। सो उनका जो कमंडलु था, मैं लेकर चला। तो बोलेः ऐ, मेरा कमंडलु कहां ले चले?
मैंने कहाः आपने ही कहा कि संसार माया है। कहां का कमंडलु, कौन ले जाने वाला, किसका? जब सब माया ही है! तुमने ही कहा कि सब स्वप्नवत है। महाराज, स्वप्न देख रहे हो कमंडलु का! और यह भी स्वप्न देख रहे हो कि कोई कमंडलु ले जा रहा है। स्वप्न में ही बड़बड़ा रहे हो कि कहां कमंडलु ले चले, कैसा कमंडलु!
अरे--बोले--रखो मेरा कमंडलु!
वैसे और लोगों ने भी कहा कि भई छोकरा बात तो ठीक कह रहा है। आप ही समझा रहे थे कि सब संसार माया है, इसने सिद्ध कर दिया कि संसार माया नहीं है। ऐसे प्रश्न पूछने मैं जाता था। बाकी मेरा संशय कोई नहीं था। मैं परिपूर्ण रूप से जानता हूं कमंडलु सत्य है। बिल्कुल माया नहीं है। माया जैसी कोई चीज ही नहीं है। संसार भी सत्य है, परमात्मा भी सत्य है। दोनों सत्य के दो पहलू हैं। और जिसने भी एक को इनकार किया वह मुश्किल में पड़ेगा। तुम्हारा संशय संशय है या कि तुम सोचते थे, तुम मुझे मुश्किल में डाल दोगे? एक बात तो पक्की समझ लो कि तुम मुझे मुश्किल में नहीं डाल सकते। मुश्किल में डालने के जितने ढंग हैं वे सब मुझे आते हैं। मैंने एक ढंग नहीं छोड़ा है जो मुश्किल में डालने का हो, जो मुझे न आता हो। उसका मैंने खूब अभ्यास किया है। सच पूछो, मैंने पूरी जिंदगी सिवाय इसके और कोई अभ्यास किया ही नहीं। स्कूलों में अध्यापकों पर आजमाया, कालेज में प्रोफेसरों पर आजमाया, सभाओं में नेताओं पर आजमाया, सत्संगों में महात्माओं पर आजमाया। मैं एक ही अभ्यास किया हूं जिंदगी में। मुझे कोई मुश्किल में नहीं डाल सकता। यह असंभव है।
जब मैं पहली दफा कालेज में प्रोफेसर हुआ तो मेरे प्रधान ने मुझे कहा
कि देखो, अभी तुम नये-नये हो, छोकरे इस कालेज के बदमाश हैं।
मैंने कहाः आप उनकी फिकर मत करो। छह साल में कालेज में विद्यार्थी रह
कर ऐसा-ऐसा अभ्यास किया हूं कि उन छोकरों को पानी पिला दूंगा।

वे बोलेः क्या कहते हो! ये बहुत बदमाश छोकरे हैं। और सिवाय उपद्रव के कुछ भी नहीं करते।
मैंने कहाः तुम फिकर तो छोड़ो। अगर न वे शिकायत लाएं तुम्हारे पास कि
भई यह कहां का अध्यापक ले आए आप, यह हमको परेशान किए दे रहा है... !
और वही हुआ। दो-चार दिन बाद ही उन्होंने कहा कि मामला क्या है, लड़के मेरे पास आने लगे। वे कहते हैं कि यह शिक्षक हमें हैरान किए दे रहा है। क्योंकि मैंने पहले दिन से उन पर अभ्यास शुरू कर दिया। लड़के-लड़कियां अलग-अलग बैठे थे, मैंने कहाः इकट्ठे हो जाओ। चौंके लड़के-लड़कियां। मैंने कहाः इतनी दूर बैठोगे, चुटैया कैसे खींचोगे? न लड़कियों को मजा आए, न तुम्हें मजा आए, न मुझे मजा आए। चलो, इकट्ठे हो जाओ! जैसे दूध में पानी मिल जाता है, इस तरह मिलो!
वे एक-दूसरे की तरफ देखें कि यह हो क्या रहा है! अध्यापकों का काम तो कांस्टेबल का है कि वह बीच में खड़ा रहे--लड़के अलग, लड़कियां अलग। और मैंने कहाः मैं पढ़ाना शुरू नहीं करूंगा, जब तक तुम मिलते नहीं। अरे, मेल-जोल करवाना ही तो अध्यापक का कार्य है।
मैंने जबरदस्ती उनको मिलवा-जुलवा दिया। अब बैठे सिकुड़-पिकुड़ कर। वैसे तो चिट्ठियां फेंकते थे। चिट्ठियां फेंकें, कंकड़ मारें। मैंने कहाः कंकड़ कहां हैं, चिट्ठियां कहां हैं?
एक लड़के ने कहाः आप बातें कैसी करते हो? मैं खीसे में कंकड़ लाया था, मैंने कहाः ये लो। बिना कंकड़ के मजा ही क्या आएगा! अरे मारो कंकड़! और लड़कियों से भी मैंने कहा कि तुम्हारे लिए भी लाया हूं, और दूसरे खीसे से मैंने और बड़े कंकड़ निकाले कि ये तुम लो। ऐसी खोपड़ी पर बजाओ इनकी!
वे तो बहुत घबड़ाए कि पढ़ाई-लिखाई क्या होगी! एक लड़की बोली कि सर, पढ़ाई-लिखाई! मैंने कहाः पढ़ाई-लिखाई भाड़ में जाने दो! पढ़ाई-लिखाई जिनको करना है, वे कालेज आते हैं? छह साल मैं भी कालेज में रहा, पढ़ाई-लिखाई मैंने कभी की नहीं, न तुमको करने दूंगा।
कालेज में मेरा नियम था कि पहले जाकर मैं कहता कि पांच मिनट का समय है, शोरगुल करो, उछलो-कूदो, डेस्कें ता.ेड़ो, जो भी करना है कर डालो। पांच मिनट मैं तमाशा देखूंगा। फिर अपन पढ़ाई शुरू करेंगे। और अगर तुमने पांच मिनट में कुछ गड़बड़ नहीं की तो फिर ख्याल रखना, बीच में अगर गड़बड़ की तो मुझसे बुरा कोई नहीं। किसी को भी कक्षा छोड़ कर जाना हो, बिल्कुल मजे से जा सकते हो। जब जाना हो तब जा सकते हो। पूछने-पाछने की कोई जरूरत नहीं। पूछ कर मेरा समय खराब करने की आवश्यकता नहीं। मेरा काम पढ़ाना है सो मैं पढ़ाऊंगा, कोई रहे कि न रहे।
प्रधान ने मुझे बुलाया कि लड़के ऐसी-ऐसी बातें कह रहे हैं कि आप कंकड़-पत्थर खीसों में लाते हैं! मैंने कहाः बच्चों की, विद्यार्थियों की सेवा करना ही तो अध्यापक का कर्तव्य है।
वह प्रधान ने भी अपनी खोपड़ी से हाथ मार लिया। उसने कहा हद हो गई! आप ठीक ही कहते थे कि आपको वे नहीं सता सकते। आपको क्या वे खाक सताएंगे! "संशय" तुम कहते हो कैलाश कोठारी, संशय नहीं हैं, तुम ज्ञान से भरे हो। विनम्रता दिखला रहे हो भारतीय ढंग की कि "मेरे संशय दूर करें।" अरे, ज्ञान से भरे हो, तुम्हारा ज्ञान दूर करेंगे! तुम्हारा संशय वगैरह कुछ भी नहीं है। अज्ञानी को कहीं संशय होता है? अज्ञानी कहता हैः मैं जानता ही नहीं, संशय क्या खाक करूं!
संशय होता है ज्ञानी को, पंडित को। तुम्हारा पांडित्य तुम्हें दिक्कत
दे रहा है। तुम्हारे पांडित्य के कारण तुम्हें न मालूम किस-किस तरह के सवाल उठ रहे होंगे। जरा टिको कुछ दिन यहां। सब धुल जाएगा, सब बह जाएगा। यहां ज्ञान को तो ऐसा साबुन रगड़-रगड़ कर धोते हैं कि जब तक बिल्कुल आदमी अज्ञानी न हो जाए, तब तक छोड़ते ही नहीं। और एक दफा अज्ञानी हो गए, फिर तुम पक्का समझो, जिसको मैंने अज्ञानी बनाया उसको इस पृथ्वी पर कोई ज्ञानी नहीं बना सकता दुबारा।

आखिरी प्रश्नः ओशो, कल आपने सेंट पीटर और तीन स्त्रियों की कहानी सुनाई। कृपया बताएं कि फिर उसके बाद क्या हुआ?

संत महाराज! कुछ अपनी भी बुद्धि दौड़ाया करो। कोई भी कहानी कभी पूरी नहीं बताई जाती, क्योंकि कुछ तो तुम्हारी कल्पना पर भी भरोसा करना पड़ता है कि कुछ तुम भी सोच सकोगे। तुम खुद ही सोच सकते थे कि आगे क्या होगा। मामला इतना साफ था।
भैया, होगा क्या! जो होना था वही हुआ। सेंट पीटर उन तीन स्त्रियों से किसी तरह निपटे ही थे कि फिर तीन देवियां आ पहुंचीं। इनमें से एक के मुंह पर सफेद मुंहपट्टी बंधी थी, वह जैन साध्वी थी। दूसरी एक खूबसूरत फ्रेंच मॉडल गर्ल थी और तीसरी एक रजनीशी संन्यासिनी थी। सेंट पीटर ने सबसे पहले फ्रेंच लड़की से उसकी कमर के निचले हिस्से की ओर इशारा करके पूछाः इसका तूने क्या उपयोग किया?
वह सुंदरी इठला कर बोलीः इसका उपयोग मैंने अपने आठों विवाहित पतियों
और करीब डेढ़ सौ प्रेमियों के साथ मजा-मौज लूटने में किया। साथ ही साथ भिन्न-भिन्न प्रकार की मुद्राओं के फोटोग्राफ निकलवा कर धन कमाने और मॉडल गर्ल की तरह विश्व में ख्याति पाने में भी इसका उपयोग किया।
सेंट पीटर ने अपने सहायक से कहाः इसे पकड़ कर नरक में डाल आओ। यहां पागलों के लिए कोई जगह नहीं है।
यह सुन कर मुंहपट्टी धारी जैन साध्वी बहुत प्रसन्न हुई और मन ही मन नमोकार मंत्र का जाप करने लगी। सेंट पीटर ने रजनीशी संन्यासिनी से वही प्रश्न किया, वह बोलीः मैंने अपनी वासना का उपयोग संभोग से समाधि की ओर जाने के लिए किया। संभोगातून समाधीकड़े!
पीटर ने अपने सहायक को आदेश दियाः इन माताजी को मोक्ष ले जाओ।
जब जैन साध्वी की बारी आई तो उसकी ओर इशारा करके सेंट पीटर ने फिर वही सवाल दोहराया। साध्वी बोलीः जी, मैंने इसका उपयोग सिर्फ पेशाब करने के लिए किया।
पीटर ने आश्चर्य से पूछाः सच कहती हो? तुमने सिर्फ पेशाब ही की और जिंदगी भर कुछ भी नहीं किया?
साध्वी ने लजाते हुए जवाब दियाः आपको कैसे भरोसा दिलाऊं? मैंने सिर्फ पेशाब की, और कभी कुछ नहीं। और पेशाब भी सदा सूखी भूमि पर की, यह भी आपको बता दूं।
सेंट पीटर ने अपने सहायक को कहाः इस औरत को वापस हिंदुस्तान भेज दो।
जैन साध्वी बोलीः क्यों, आखिर यह मामला क्या है?
पीटर ने कहाः बकवास मत करो, चलोभागो यहां से। यह स्वर्ग है, कोई पेशाबघर नहीं है।

आज इतना ही।

बहुरि न ऐसो दांव
दसवां प्रवचन

नये सूर्य को नमस्कार

पहला प्रश्नः ओशो, कहते हैं कि बुद्धपुरुष जहां वास करते हैं, जहां भ्रमण करते हैं, वे-वे स्थान तीर्थ बन जाते हैं। यह बात तो समझ में आती है। लेकिन श्रीमद्भागवत में उल्लेख है कि संत स्वयं तीर्थों को पवित्र करते हैं। स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति संतः। यह बात समझ में नहीं आती।
ओशो, समझाने की अनुकंपा करें।

सहजानंद! पहली बात अगर समझ में आती है तो दूसरी भी जरूर समझ में आएगी।
और यदि दूसरी समझ में नहीं आती तो पहली भी समझ में आई नहीं, सिर्फ समझने का भ्रम हुआ है। क्योंकि पहली बात ज्यादा कठिन है, दूसरी बात तो बहुत सरल है। पहला सूत्र है कि जहां संत उठते-बैठते, जहां बुद्ध चलते-विचरते, वहां तीर्थ बन जाते हैं। तीर्थ का अर्थ समझो। तीर्थ का अर्थ होता हैः जहां से व्यक्ति अज्ञात में प्रवेश कर सके। तीर्थ का अर्थ होता हैः जहां से व्यक्ति मन से छलांग लगा सके--अमन में। तीर्थ का अर्थ होता हैः जहां से व्यक्ति समय को पीछे छोड़ दे और समयातीत को अनुभव करे। प्रभु का साक्षात्कार जहां हो जाए, वहीं तीर्थ है। और प्रभु का साक्षात्कार तो बुद्धों की सन्निधि में ही हो सकता है। वे ही सेतु हैं।
इसलिए जैनों ने अपने बुद्धपुरुषों को तीर्थंकर कहा। तीर्थंकर का अर्थ हैः तीर्थ को बनाने वाले। लेकिन मनुष्य की बड़ी संकीर्ण बुद्धि होती है। तो जैन सोचते हैं कि सिर्फ उनके तीर्थंकर ही तीर्थ को बनाने वाले हैं। जैसे जरथुस्त्र ने तीर्थ नहीं बनाया! जैसे कि बुद्ध ने तीर्थ नहीं बनाया! जैसे कि लाओत्सु ने तीर्थ नहीं बनाया! जैसे कि जीसस ने तीर्थ नहीं बनाया! सौभाग्य का होगा वह दिन, जिस दिन हम सब तीर्थ बनाने वालों को तीर्थंकर कह सकेंगे--फिर वे नानक हों कि कबीर, फरीद हों कि जुन्नैद, बाशो हों कि बोधिधर्म, च्वांगत्सु हों कि मैन्सियस, साक्रेटीज हों कि पाइथागोरस। इससे कुछ भेद नहीं पड़ता कि तुम कैसे रंग की नाव में बैठे। इससे कुछ भेद नहीं पड़ता कि नाव लकड़ी की बनी थी, कि तांबे की बनी थी, कि लोहे की बनी थी, कि नाव कहां बनी थी, किसने बनाई थी। बात मतलब की केवल इतनी है कि नाव उस पार ले गई। और जो नाव पार ले जाए, वही नाव है। और किसी ने ठेका थोड़े ही लिया है कि बस इसी घाट से लोग पार उतर सकेंगे। वह तो एक है, मगर उस तक पहुंचाने वाले घाट अनेक हैं।
जो भी घाट को बनाता है, वह तीर्थंकर। लेकिन बनाता है, ऐसा कहना शायद ठीक नहीं। क्योंकि कोई तीर्थंकर गणित बिठा कर, हिसाब लगा कर तीर्थ को नहीं बनाता। तीर्थ गणित से बनता ही नहीं, तीर्थ तो प्रेम से बनता है। तीर्थ का कोई गणित होता ही नहीं, तीर्थ का तो काव्य होता है। तीर्थ का हिसाब असंभव है, तीर्थ तो बेहिसाब होता है। यह तीर्थ कोई ऐसी शराब नहीं कि पैमानों में भर कर पिलाई जाए। यह तो शराब यूं है कि जैसे सागर भरा हो।
जीसस के संबंध में प्यारी कहानी है कि उन्होंने एक बार पूरे शराब में बदल दिया एक सागर को, पूरे सागर को शराब में बदल दिया! ऐसा कुछ ऐतिहासिक रूप से हुआ हो, यह मैं नहीं कहूंगा। न इससे राजी होऊंगा। लेकिन यह बात पते की है--पूरे सागर को शराब में बदल दिया! जहां स्पर्श हुआ किसी जाग्रत पुरुष का, वहीं से मधुरस बहने लगता है; वहीं रसविमुग्धता पैदा हो जाती है।
तो पहला सूत्र है कि जहां-जहां बुद्ध भ्रमण करते हैं, वास करते हैं, उठते हैं, बैठते हैं, वहां-वहां तीर्थ बन जाता है। क्योंकि वहीं-वहीं से उनके पास बैठने वाले लोग, उनके पास चलने वाले लोग, उनमें डूबने वाले लोग पदार्थ का अतिक्रमण कर जाते हैं और परमात्मा में प्रवेश हो जाता है। सदगुरु के पास मौन में बैठ जाना, बस नाव में बैठ जाना है।
दूसरी बात तो बहुत सरल है। सहजानंद, क्यों दूसरी बात तुम्हें समझ में
न आ सकी?
तुम कहते होः "यह बात समझ में आ गई।"

यह तो बड़ा से बड़ा चमत्कार है कि किसी की सन्निधि में नाव मिल जाए--जो ज्ञात से अज्ञात में ले जाए; जो क्षणभंगुर से शाश्वत में ले जाए; जो क्षुद्र से विराट में ले जाए; जो सीमित से ऊपर उठा दे और असीम के साथ एक कर दे; जो बूंद को सागर बना दे; जो मरणधर्मा को अमृत का अनुभव करा दे।
कहते होः "यह बात समझ में आ गई।"
अगर समझ में आ गई होती तो दूसरी बात तो बहुत सरल है।
दूसरी बात हैः "श्रीमद्भागवत में उल्लेख है कि संत स्वयं तीर्थों को पवित्र करते हैं। स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति संतः। कहते होः यह बात समझ में नहीं आती।"
यह बात सरल है, मधुर भी, मीठी भी। इसका अर्थ हुआ कि जैसे ही कोई सदगुरु देह को छोड़ता है वैसे ही उसका तीर्थ उजड़ जाता है। ऐसे तो सब वही का वही होता है। बोधगया में अब भी सब वही का वही है--वही वृक्ष, ठीक वही वृक्ष! पच्चीस सौ वर्ष से सम्हाल कर रखा गया है। उसी की शाखाएं बार-बार लगाई गई हैं, ताकि पुराना वृक्ष मर न जाए। वही वृक्ष, जिसके नीचे बैठ कर गौतम सिद्धार्थ गौतम बुद्ध बने थे। वे ही पत्ते, वे ही शाखाएं, वही रसधार, वही भूमि, वही आकाश--सब कुछ तो बोधगया में वही है। मगर तीर्थ कहां? कितने दूर-दूर से लोग आते हैं उस वृक्ष के पास बैठने को और बैठ कर चले जाते हैं। न कुछ हाथ लगता, न कुछ अनुभव होता। उजड़ गया है यह तीर्थ। कभी यहां बस्ती थी, अब तो वीरान है। कभी यहां मरूद्यान था, अब तो मरुस्थल है। कभी यहां अदभुत फूल खिले थे--ऐसे कि जो कभी-कभी ही खिलते हैं, अनूठे, अलौकिक, आकाश के। अब तो घास के फूल भी नहीं लगते। पंडे-पुजारी मंदिर पर कब्जा किए बैठे हैं।
और तुम चकित होओगे यह बात जान कर कि बुद्ध का मंदिर और ब्राह्मण पुजारी उस पर कब्जा किए बैठा है! हिंदू पुजारी कब्जा किए बैठा है बुद्ध के मंदिर पर। बुद्ध ने जिस ब्राह्मणवाद का विरोध किया, जीवन भर सतत संघर्ष किया, जिस वर्णाश्रम धर्म के खिलाफ बगावत उठाई, आग लगाई, उसी के ठेकेदार बुद्ध के मंदिर पर कब्जा किए बैठे हैं।
मोहम्मद जब काबा में थे और जब उन्होंने काबा की तीन सौ पैंसठ मूर्तियों को निकाल कर बाहर फिंकवा दिया था, काबा के मंदिर को कचरे से खाली कर दिया था, तो वह तीर्थ था, अब नहीं। अब तो फिर मूर्ति बन गई। अब तो काबा का काला पत्थर ही मूर्ति का काम करने लगा। पहले लोग मूर्तियों के पैर चूमते थे, अब इस पत्थर को जाकर चूम आते हैं। मोहम्मद रोते होंगे, उनकी आंख से आंसू झरते होंगे कि क्या इसीलिए इतना मैंने श्रम किया था?
मगर यह इस जगत का स्वभाव है। यहां कोई भी बगीचा लगाओ, सदा नहीं रह सकता। यहां कितने ही सुंदर महल बनाओ, आज नहीं कल धूल-धूसरित हो जाएंगे। इस जगत में परमात्मा को कोई कभी खींच कर ले भी आता है तो ज्यादा देर टिका नहीं पाता। जब तक खुद होता है, लंगर की तरह जहाज रुका रहता है। फिर लंगर ही न रहा, जहाज फिर अनंत में लीन हो जाता है।
लेकिन जिस जगह किसी बुद्धपुरुष ने कभी तीर्थ निर्मित किया हो, उस जगह पुनः तीर्थ निर्मित करना बहुत आसान होता है। यही अर्थ है उस सूत्र का। कुछ तो छाप रह ही जाती है। कुछ तो हवाओं में बात रह ही जाती है। कुछ तो गूंज बाकी रह ही जाती है। यह तो मानना असंभव है कि बुद्ध ने जिस वृक्ष के नीचे बैठ कर बोधि पाई, आज भी उस वृक्ष के पत्तों में उस बोधि के हस्ताक्षर नहीं हैं। यह मानना असंभव है कि जिस बोधिवृक्ष के पास बुद्ध उठ-उठ कर टहला करते थे, क्योंकि बैठे-बैठे थक जाते ध्यान में। तो बुद्ध ने दो ध्यान विकसित किए थे--एक बैठ कर करने का ध्यान, विपस्सना और एक चल कर करने का ध्यान-- चंक्रमण। दोनों एक से ही ध्यान हैं। एक में बैठ कर श्वास पर ध्यान रखना होता है और एक में चलते हुए श्वास पर ध्यान रखना होता है। तो उसी बोधिवृक्ष के पास वे पत्थर आज भी हैं, जिन पर बुद्ध के चरण न मालूम कितनी हजार बार लाखों बार पड़े होंगे। क्योंकि दिन में एक घंटा वे बैठते, फिर एक घंटा चलते; फिर एक घंटा बैठते, फिर एक घंटा चलते। यूं रोज घंटों चले होंगे। छोटा सा स्थान, वहीं वृक्ष के पास, करोड़ों बार उनके पैरों को उन पत्थरों ने छुआ होगा।

आदमी भूल जाए, पत्थर इतनी आसानी से नहीं भूलते। आदमी विस्मरण कर दे, पत्थरों में स्मृति छिपी रह जाती है। तो अगर कोई बुद्ध चाहे तो बोधगया को पुनरुज्जीवित कर लेना बहुत आसान होगा, लेकिन एक अर्थ में बहुत कठिन भी। मैं बोधगया गया था। उसमें यह नजर भी थी कि अगर संभव हो तो वहीं रुक रहूं। लेकिन वह असंभव है। क्योंकि जिन पंडित-पुजारियों ने इन पच्चीस सौ वर्षों में बोधगया पर कब्जा कर लिया है, वे यह बरदाश्त न कर सकेंगे कि मैं बोधगया में रुक जाऊं। उनका तो धंधा मर जाएगा। उनकी तो जड़ें कट जाएंगी। उन्हें बुद्ध से क्या लेना-देना? उन्हें तीर्थ से क्या लेना-देना? उनका तो अपना न्यस्त स्वार्थ है।
तुम जान कर चकित होओगे, जब बोधगया में मैंने ध्यान का शिविर लिया तो सिर्फ एक बौद्ध भिक्षु हिम्मत करके चोरी से रात मुझसे मिलने आता था--सिर्फ एक बौद्ध भिक्षु! वह भी चोरी से, हिम्मत करके! वह भी रात, एकांत में! क्योंकि सबके सामने आए, और भिक्षुओं को पता चल जाए, तो अड़चन खड़ी हो सकती है, तत्क्षण अड़चन खड़ी हो सकती है कि तुम क्यों गए किसी और गुरु के पास? तुम तो बुद्ध के अनुयायी हो! और यह व्यक्ति तो बुद्ध का अनुयायी नहीं, यह तो बौद्ध नहीं।
और निश्चित ही मैं बौद्ध नहीं हूंः जब बुद्ध ही हो सकते हो तो बौद्ध क्या होना? जो बुद्ध हो सकता है वह अगर बौद्ध होने की कोशिश करे तो बुद्धू है। जब जिन ही हो सकते हो तो महावीर क्या होना? और जब तुम स्वयं परमात्मा से जुड़ सकते हो तो क्यों जीसस को बीच में लेना? जहां तक बन सके, वहां तक सीधा संबंध हो जाए तो अच्छा।
और सदगुरु का काम यही है कि वह शिष्य के और परमात्मा के बीच में नहीं आता। अगर आता हो तो वह असदगुरु है; उसको ही मैं कुगुरु कहता हूं। सदगुरु वही है कि जो हाथ पकड़ कर तुम्हें चलना सिखा दे और जैसे ही तुम चलने योग्य होने लगो, हाथ अलग करने लगे और जल्दी ही तुम्हें अपने पैरों पर खड़ा कर दे। बुद्ध ने कहा है अपने शिष्यों कोः अगर कभी सत्य के रास्ते पर मैं तुम्हें मिल भी जाऊं तो मेरी गर्दन काट देना। मुझे तुम्हारे और सत्य के बीच एक क्षण भी खड़े मत रहने देना। मेरी गर्दन काट देना।
ये सदगुरु के वचन हैं। लेकिन पंडित-पुजारियों को क्या करना? पंडित-पुजारियों को तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी।
जैन साध्वी है--चंदना। उसका मुझसे अति स्नेह है। वह राजगृह में जैनों
का एक आश्रम है, उसमें प्रमुख है--वीरायतन! छिपे-छिपे, कोई कभी वहां पहुंच जाता है, तो वह मुझे खबर पहुंचाती है कि आप यहां क्यों नहीं आ जाते? राजगृह--महावीर का तीर्थ, महावीर उठे-बैठे, बोले, चले! न मालूम कितने लोग महावीर के साथ उड़े आकाश में, पंखों को पाए! न मालूम कितने फूल खिले! आप यहां क्यों नहीं आ जाते? सुंदर पहाड़ हैं, झीलें हैं! राजगृह प्यारी जगह है! मेरे एक स्वामी चैतन्य कीर्ति जब चंदना को मिलने गए, चाहे वह कितनी ही छिप कर मुझे संदेश भेजती हो, मगर जैनियों में उस पर संदेह तो है ही। चैतन्य कीर्ति ने जैसे ही किसी से पूछा कि मैं चंदना से मिलना चाहता हूं, तो जिससे पूछा, उसने नीचे से ऊपर तक देखा और कहा कि वही रजनीश की चेली? तुम उसी से मिलना चाहते हो? क्या काम है? मिला तो दिया चंदना से और चंदना ने मिलते ही यह कहा कि भगवान को कहना कि यहां आ जाएं, सुरम्य है सब! उनकी प्रतीक्षा है यहां!
पर क्या तुम सोचते हो, जैन मुझे राजगृह में प्रवेश करने देंगे? कच्छ में प्रवेश नहीं करने देते, जहां उनका एक तीर्थंकर नहीं गया! जहां न कभी कोई तीर्थंकर हुआ, न जहां कभी कोई बुद्ध हुआ, जहां न कोई कृष्ण हुए, न कोई राम हुए, न कोई जरथुस्त्र, न लाओत्सु। कच्छ में कोई अवतार हुआ, ऐसा उल्लेख तो नहीं। शायद कछुए का अवतार हुआ हो तो हुआ हो! शायद उसी से कच्छ शब्द बना हो, कौन जाने! वहां की संस्कृति खतरे में पड़ जाती है! वहां का धर्म मिटा जा रहा है! वहां के प्राण संकट में हैं! तो मुझे राजगृह में जैन प्रवेश करने देंगे?
पालीताना जैनों का तीर्थ है। पालीताना के महाराजा की खबर मेरे पास आई
थी कि मेरा महल है, सौ एकड़ भूमि है, आप यहां आ जाएं, आप सम्हाल लें, मैं इसे

दान कर दूं। मैंने कहाः तुम तो दान कर दो, मगर वहां पांच हजार जैन साधु- साध्वी बैठे हैं। उनकी आत्मा को कितना कष्ट पहुंचेगा! उनके कष्ट का भी कुछ सोचो। मैं तो आ जाऊं, मुझे क्या अड़चन? लेकिन वे पांच हजार साधु-साध्वी, जैनों का तीर्थ। मैं तो उसे पुनरुज्जीवित कर दूं। मैं तो फिर से तीर्थ में प्राण डाल दूं। मगर मैं तीर्थ में प्राण डालूं तो मुर्दा तीर्थ से जिनके न्यस्त स्वार्थ जुड़ गए थे, वे तो मुश्किल में पड़ जाएंगे न!
दूसरी बात का इतना ही अर्थ है कि अगर कभी कोई बुद्धपुरुष किसी प्राचीन तीर्थ पर बैठ जाए तो वह प्राचीन तीर्थ फिर नया हो जाता है, फिर पुनरुज्जीवित हो जाता है। वहां गंगा फिर बहने लगती है। जहां भगीरथ बैठा वहां गंगा उतरी। स्वर्ग से उतरना ही होगा उसे, कोई और उपाय ही नहीं। इसलिए कहा हैः "स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति संतः।" संत स्वयं तीर्थों को पवित्र करते हैं। तीर्थ बार-बार अपवित्र हो जाते हैं। तुम्हें शायद सहजानंद, इससे ही अड़चन हुई होगी कि तीर्थ को और पवित्र करना! तीर्थ तो वही है जो पवित्र है। माना, तीर्थ वही है जो पवित्र है, मगर तभी तक पवित्र होता है जब तक एक प्राण का दीया वहां जलता है, एक ज्योति वहां जलती है। ज्योति बुझी तो तीर्थ से ज्यादा अपवित्र इस पृथ्वी में फिर कोई दूसरी जगह नहीं होती, यह ख्याल ले लेना। क्योंकि जितनी ऊंचाई से चीज गिरती है उतनी ही नीचाई में चली जाती है। जो समतल भूमि पर चलता है वह गिरेगा भी तो क्या बहुत ज्यादा गिरेगा? लेकिन जो हिमालय की चोटी पर चढ़ रहा हो, अगर गिरा तो खाई-खड्डों में हड्डी-पसली टूट जाएगी, शायद उसके टुकड़े-टुकड़ों का भी पता नहीं चलेगा कि वह कहां खो गया।
यही घटना तीर्थों के साथ घटती है। बुद्धों के साथ तो वे आकाश की सैर
को निकल जाते हैं, पृथ्वी के हिस्से ही नहीं रह जाते। इसलिए इस देश में यह धारणा रही है कि काशी पृथ्वी का हिस्सा नहीं है। यह बात प्यारी है। अगर समझो तो प्यारी है। अगर मूर्खतापूर्ण जिद करने लगो तो हर सुंदर चीज असुंदर हो जाती है। काशी पृथ्वी का हिस्सा नहीं है। है तो पृथ्वी का ही हिस्सा, हम सब जानते हैं; लेकिन क्यों कहा है कि काशी पृथ्वी का हिस्सा नहीं है--इसीलिए कि इतने बुद्धपुरुष हुए... स्वयं बुद्ध ने भी अपना पहला प्रवचन काशी के निकट सारनाथ में दिया। सबसे पहले वे काशी आए। शंकराचार्य काशी गए। कबीर तो जिंदगी भर काशी रहे, सिर्फ मरते वक्त काशी से हटे।
काशी की अनंत धारा है। कहते हैं वह शिव की नगरी है। संभवतः शिव पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने काशी को तीर्थ बनाया, फिर और-और शिव आते रहे। जिन्होंने शिवत्व जाना, वे ही शिव हो गए। और काशी को पवित्र करते रहे। मगर आज काशी से ज्यादा अपवित्र कोई स्थान पृथ्वी पर है? नहीं है। और कारण स्वाभाविक है। काशी इतनी ऊंची उठी कि जब बुद्धों का सहारा न रहा तो उतनी ही नीची गिरी भी। बुरी तरह गिरी। झोपड़ा गिरेगा भी तो क्या गिरेगा? जब कोई महल गिरता है तब गिरता है। झोपड़ा तो पहले से ही गिरा हुआ है। यूं चार बांस लगा कर छप्पर बांध रखा है--गिरा तो न गिरा तो--फिर चार बांस खड़े कर लेंगे, फिर छप्पर उठा देंगे। गिरता है जब कोई गगनचुंबी महल तो फिर उठना मुश्किल हो जाता है।
और सबसे बड़ी कठिनाई यही आती है कि पुराना बुद्ध, जिसने कि तीर्थ को निर्मित किया था, उसके जाने के बाद पंडित-पुरोहितों का एक जाल उस तीर्थ का शोषण करने लगता है। उस तीर्थ का नाम, उस तीर्थ की साख हो जाती है। उस तीर्थ के लिए बाजार हो जाता है। और एक बार वहां असली सिक्के थे, तो वह खबर, वह ख्याल सदियों तक चलता है कि शायद अब भी होंगे। कबीर ने उस ख्याल को तोड़ने के लिए मरते वक्त कहा कि मैं काशी में नहीं मरना चाहता, क्योंकि काशी में यह धारणा हो गई थी कि जो काशी में मरता है, जो काशी-करवट लेता है, वह सीधा स्वर्ग जाता है।
निश्चित ही बुद्धों के पास कोई करवट लेगा तो और जाएगा कहां! लेकिन कबीर के समय में भी काशी गंदी हो चुकी थी; वह बात न रही थी। कबीर ने बहुत कोशिश भी की, लेकिन कबीर सफल नहीं हो सके; नहीं हो सकते थे, क्योंकि कबीर एक तो ब्राह्मण नहीं। तो ब्राह्मण पंडित उनको मंदिरों तक में न घुसने दें।
ब्राह्मण तो दूर, कबीर का यह भी पक्का नहीं है कि वे हिंदू हैं कि मुसलमान।

मुसलमान भी उनके भक्त हैं, हिंदू भी उनके भक्त। मगर कबीर को जो भक्त मिले वे नीचे वर्ग के मिले। स्वभावतः ऊंचे वर्ग का कोई आदमी तो कबीर के पास आने में संकोच करे। उसका आभिजात्य उसे रोके। मिले गरीब, दीन-दरिद्र। उनके बल पर काशी को पवित्र करना आसान न था। कबीर रहे काशी में, लेकिन रहे करीब-करीब काशी के बाहर--अंत्यज, त्याज्य। कबीर ने कहा मरते वक्तः मुझे काशी से हटा लो।
लोगों ने कहाः आप पागल हो गए हैं! काशी मरने लोग दूर-दूर से आते हैं। जैसे लोग बूढ़े होने लगते हैं, वहां काशी पहुंचने लगते हैं। क्योंकि काशी में मरेंगे तो स्वर्ग निश्चित है।
यह बात कभी सही रही होगी, जरूर सही रही होगी। आखिर हर झूठी से झूठी बात
के पीछे भी कहीं कोई सत्य होता है, चाहे हजारों साल पीछे दब गया हो। कभी यह बात सच रही होगी। जब शिव जीवित रहे होंगे तो शायद यह बात सच रही होगी कि अगर उनके पास मृत्यु घट जाए... जिनके पास जीवन परमात्ममय हो जाता है उनके पास मृत्यु भी परमात्ममय हो जाती है।
जो थोड़े से संन्यासी यहां मरे हैं, कभी आगे यात्रा में तुम्हें मिल जाएं तो उनसे पूछना। अब तो मुझे पत्र आते हैं संन्यासियों के। कोई बीमार हो जाता है, उसकी खबर आती है कि मैं आना चाहता हूं, वहीं मरना चाहता हूं, कहीं और नहीं मरना है। जीना है यहां, मरना है यहां। क्यों? क्योंकि यह उत्सव और कहां संभव हो सकेगा? मृत्यु कहां उत्सव बन सकेगी आज पृथ्वी पर? जब प्रेम चिन्मय की शवयात्रा, संन्यासियों का उत्सव-नृत्य, चिता के आस-पास संगीत--इसकी फिल्म अमरीका पहुंची तो लोग एकदम अवाक रह गए, भरोसा न कर सके कि कहीं पृथ्वी पर कोई ऐसी जगह भी है जहां मृत्यु भी उत्सव है! हालतें तो यूं हो गई हैं कि जीवन ही उत्सव नहीं रहा है, मृत्यु कैसे उत्सव होगी? शीला लेकर गई थी फिल्म को, तत्क्षण अमरीकी टेलीविजन ने स्वीकार कर लिया कि हम इसे सारे मुल्क में, सारे टेलीविजन स्रोतों से विस्तीर्ण करना चाहते हैं। क्योंकि यह तो अनूठी बात है कि कोई मरे और मृत्यु उत्सव में परिणित की जाए। न सुना हमने कभी, न देखा हमने कभी।
कभी जरूर काशी में लोग मरने आते रहे होंगे। लेकिन वह बात जमाने हुए तब बीत गई। फिर तब से तो बहुत बुद्ध हो चुके हैं, लेकिन काशी उनको टिकने नहीं देती। काशी उनकी सबसे बड़ी दुश्मन सिद्ध होती है। क्योंकि हर नया बुद्ध, नया जीवन, नया प्रकाश, नई दृष्टि, नया दर्शन लेकर आता है। नया सूरज है नया बुद्ध। उसके सामने कल के सब सूरज फीके हो जाते हैं। हो ही जाने चाहिए, क्योंकि कल के सूरज तो सिर्फ स्मृतियां हैं और आज का सूरज जीवंत है।
तो कठिन है तीर्थों को पवित्र करना। बहुत कठिन है, लेकिन अगर कभी कोई बुद्धपुरुष किसी पुराने तीर्थ पर बस जाए तो उसकी मौजूदगी उसे भी पवित्र कर देती है; जो मर गया था, उसमें फिर श्वासें आ जाती हैं; जो सो गया था, वह फिर जग आता है।
सूत्र तो सच है। सूत्र में कोई भूल-चूक नहीं है, सहजानंद। संत तीर्थ
का निर्माण करते हैं। फिर उन तीर्थों के पुनर्जीवन के लिए सिवाय संतों के और कोई उपाय नहीं हैं। मगर सब धर्म यह चेष्टा करते हैं कि आगे आने वाले बुद्धों के लिए द्वार बंद कर दिए जाएं। तो मुसलमान कहते हैं--मोहम्मद आखिरी पैगंबर। क्यों? क्योंकि कोई दूसरा पैगंबर आए तब तो चौदह सौ वर्ष बाद वह आएगा। चौदह सौ वर्ष में जिंदगी बदल चुकी, गंगा का कितना पानी नहीं बह चुका! आज क्या मोहम्मद की भाषा बोलनी पड़ेगी? और आज जो मोहम्मद की भाषा बोलेगा वह पागल मालूम पड़ेगा; जैसे अयातुल्ला खोमैनी, इस तरह का पागल आदमी। आज कोई मोहम्मद की भाषा बोलेगा तो असंगत मालूम होगी। उस भाषा के लिए आज कोई संदर्भ नहीं रहा। आज तो कोई आज की ही भाषा बोलेगा। तो भय है। तो मुसलमानों ने द्वार बंद कर दिया, कि कुरान आखिरी किताब है, अब इसके बाद और कोई किताब नहीं आएगी, अब कोई और नया संशोधित रूप नहीं आएगा, परमात्मा ने आखिरी संदेश दे दिया। जैसे कि कुरान जहां आया वहीं मनुष्य का विकास भी ठहर गया!
यह बात बेहूदी है। विकास कभी नहीं ठहरता। किताबें आती रहेंगी, किताबें उतरती रहेंगी और विकास जारी रहेगा। लेकिन सब धर्मों का यही रिवाज

है। यहूदी इसीलिए जीसस को स्वीकार न कर सके, क्योंकि जीसस ने कहाः तुमसे पुराने पैगंबरों ने कहा है कि ईंट का जवाब पत्थर से और मैं तुमसे कहता हूं--सुनो, मैं तुमसे कहता हूं--कि जो तुम्हारे बाएं गाल पर चांटा मारे, तुम दायां गाल भी उसे दे देना। तुमसे पुराने पैगंबरों ने कहा है कि जैसे को तैसा, यही नियम है और मैं तुमसे कहता हूं कि जो तुम्हारा कोट भी छीने, तुम उसे कमीज भी दे देना। तुमसे पुराने पैगंबरों ने कहा है कि आंख के बदले आंख और मैं तुमसे कहता हूं जो तुमसे कहे एक मील मेरा सामान ढो चलो, तुम दो मील उसका सामान ढो देना।
खतरा पैदा हो गया। यह आदमी तीर्थ को पवित्र करने में लगा था। पंडित-पुजारी जो गंदगी कर चुके थे, उस तीर्थ को पवित्र करने में लगा था। इसको बरदाश्त नहीं किया जा सकता। इस आदमी को समाप्त करना ही होगा। अगर इसने तीर्थ को पवित्र कर दिया तो पुराना सारा धंधा, जो उसी तीर्थ के आस-पास, मुर्दा तीर्थ के आस-पास चलता था, मर जाएगा।
तीर्थ पुनरुज्जीवित हो तो पुरोहित मर जाता है। पुरोहित जीए तो तीर्थ
को मरा हुआ होना चाहिए। इस गणित को तुम समझ लो तो बात बिल्कुल साफ हो जाएगी। इसलिए पंडित और पुरोहित, तथाकथित महंत, महामंडलेश्वर, शंकराचार्य, इमाम अयातुल्ला इत्यादि-इत्यादि तरह के लोग हमेशा बुद्धपुरुषों के विपरीत होंगे। उनके धंधे का सवाल है। उनकी बात भी मैं समझता हूं। लेकिन वे गंदा करते ही जाते हैं।
तीर्थ हमारे गंदगियों के ढेर हो गए हैं। जितनी ज्यादा कुरूपता और जितना जघन्य कुत्सित रूप धर्म का तुम तीर्थों में पाओगे, और कहीं नहीं। मगर चूंकि उसके तुम देखने के आदी हो गए हो, राजी हो गए हो, तुम चुपचाप बरदाश्त किए जाते हो। तुम्हें होश भी नहीं आता कि तुम क्या सह रहे हो! सिक्खों ने दसवें गुरु के बाद कह दिया कि बस, अब गुरुग्रंथ साहब पूरा
हो गया, अब आगे कोई गुरुग्रंथ साहब में कुछ भी नहीं जोड़ सकता।
जैनों ने कह दियाः चौबीसवें तीर्थंकर महावीर के बाद अब कोई तीर्थंकर नहीं। तो सड़ेगा ही तीर्थ। अगर जैन मर गए, सड़ गए, तो कोई और जिम्मेवार नहीं है। जिस दिन तुमने कह दिया कि अब कोई तीर्थंकर नहीं हो सकेगा, उस दिन तुमने दरवाजे बंद कर लिए अपने मंदिर के, तुमने द्वार-खिड़कियां बंद कर लीं अपने मंदिर की। न अब सूरज की रोशनी भीतर पहुंचती है, न अब चांद झांकता है, न अब शुद्ध हवाएं आती हैं, न अब पक्षियों के गीत गूंजते हैं। अब बैठे रहो पत्थरों की दीवारों में अपनी-अपनी कब्रों में बंद।
अच्छी मनुष्यता किसी दिन पैदा होगी तो हम नये तीर्थ भी बनाएंगे, पुराने तीर्थों को भी पुनरुज्जीवित करते रहेंगे। सारी पृथ्वी को तीर्थ बना लेना चाहिए। और अगर हमने समझदारी की होती तो अब तक सारी पृथ्वी तीर्थ बन गई होती। क्योंकि कौन सा ऐसा कोना है पृथ्वी का, जहां कभी न कभी कोई न कोई जाग न गया हो? अगर हमने दुनिया को अलग-अलग धर्मों में न बांटा होता और हर धर्म ने जिद न की होती कि मैं ही ठीक हूं और सब गलत हैं, और हर धर्म ने अपने द्वार-दरवाजे बंद करके सील-मोहर न लगा दी होती, तो आज सारी पृथ्वी तीर्थ होती। क्योंकि पृथ्वी के चप्पे-चप्पे पर कोई न कोई बुद्ध चला है। कहीं न कहीं बुद्ध की वाणी गिरी है। फिर नाम कुछ हो, जरथुस्त्र हो कि लाओत्सु हो; महावीर हो कि कृष्ण हो--इससे कुछ भेद नहीं पड़ता। और अगर हम राजी रहते, खुले रहते, नई हवाओं का स्वागत करते रहते... पुराने सूर्यों को नमस्कार करो ठीक, मगर नये सूर्यों को नमस्कार करना मत भूल जाओ। क्योंकि काम तो नया सूरज ही आएगा। पुराने सूरज को धन्यवाद दो और नये सूरज को नमस्कार करो--तो यह सारी पृथ्वी तीर्थ बन सकती है। मैं एक ऐसे ही महत आयोजन में संलग्न हूं। इस सारी पृथ्वी को ही तीर्थ बनाना है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, मैं अभागा कब आपको समझ सकूंगा? अब तो आप ही कुछ करें तो बात बने।

नरोत्तमदास! कुछ बातें हैं जो कोई दूसरा नहीं कर सकता, चाहे तो भी नहीं कर सकता। तुम्हें ही समझना होगा। मैं तो समझता ही हूं मैं क्या कह

रहा हूं। अब और क्या करूं? तुम्हारे भीतर तुम्हारी आत्मा बन कर कैसे बैठ जाऊं? तुम्हें जगाने के लिए पुकार दूंगा, चुनौती दूंगा, चेतावनी दूंगा, हिलाऊंगा-डुलाऊंगा। तुम गालियां भी दोगे, क्योंकि तुम्हें हिलने-डुलने में तकलीफ होगी, नींद टूटेगी, तुम क्रोध में भी आओगे। कितने लोग मुझ पर क्रुद्ध हैं! कितनी गालियां! जितनी ज्यादा गालियां मुझे मिलती हैं उतना मैं खुश होता हूं, क्योंकि मैं सोचता हूं कि चलो ये थोड़े लोग और हिले, थोड़े लोग और डुले; चलो लोगों तक बात पहुंचने लगी! नाराज होने लगे, मतलब बात पहुंचने लगी! लोगों के कानों में कुछ न कुछ सरसराहट होने लगी। लोगों के प्राणों में कुछ न कुछ भनक पड़ने लगी।
मगर कुछ चीजें हैं जो तुम्हें ही करनी होंगी। मैं कह सकता हूं कैसे करो, मगर मैं कैसे कर सकूंगा?
तुम कहते होः "अब तो आप ही कुछ करें तो बात बने।"
नहीं जी, तुम्हीं करोगे और बात बनेगी। तुम्हीं से बात बनवा कर रहेंगे। यूं आसानी से मत छूट निकलो कि सब आप पर ही छोड़ दिया, अब तो आप ही करें तो कुछ बात बने। यूं निश्चिंत न हो जाओ। यूं अपना उत्तरदायित्व मत छोड़ दो।
मेरा संन्यासी अनिवार्य रूप से अपने उत्तरदायित्व को समझता है। तुम
तो अभी मेरे संन्यासी नहीं हो। लेकिन चल पड़े हो रास्ते पर, अगर बात समझने की उत्सुकता पैदा हुई है तो कितनी देर बचोगे? और बात समझना हो तो संन्यास में छलांग ले ही लो, फिर समझना आसान हो जाता है। क्योंकि कई छोटी-छोटी बातें जिनके कारण तुम नहीं समझ पाते, संन्यास लेते ही टूट जाती हैं। जैसे ही तुमने संन्यास लिया, लोगों ने समझा कि पागल हो गए, गए काम से! और जैसे ही लोगों ने समझा पागल हो गए, फिर तुम्हें भी क्या डर! फिर अब समझ ही लो, अब पागल तो हो ही गए, अब क्या डर? वह पागल होने का डर ही कि कहीं कोई पागल न कहे, तुम्हें समझने नहीं देता।
लोग मुझसे कहते हैं कि हम ध्यान तो करते हैं, सक्रिय ध्यान करते हैं, मगर ऐसे करते हैं कि किसी को कानोंकान पता न चले, नहीं तो लोग समझते हैं पागल हो गए। अब तुम ऐसे करोगे सक्रिय ध्यान कि किसी को कानोंकान पता न चले, तो क्या कंबल ओढ़ कर बिस्तर में करोगे, कहां करोगे? और पत्नी को तो पता चल ही जाएगा। पत्नियों से कौन कब क्या छिपा पाया है? अभी तक कोई ऐसा राज नहीं जो पुरुष पत्नी से छिपा पाया हो। सीधे अंगुली तो सीधे, नहीं तो वह तिरछी अंगुली निकाल लेती है, मगर राज निकाल कर रहती है। तुम अगर जरा हिले-डुले बिस्तर में तो वह फौरन आ जाएगी--क्यों हिल-डुले रहे हो? क्या माजरा है? किसके साथ हिल-डुल रहे हो? किसकी कल्पना कर रहे हो? हेमामालिनी की या किसकी? ऐसे क्या हिल-डुल रहे हो? ऐसे मेरे साथ नहीं हिलते-डुलते। ऐसे क्या मौज-मजे में आ रहे हो? क्या हो रहा है तुम्हें? होश है कि बेहोश हो, कि ज्यादा पीकर आ गए हो?
लेकिन एकबारगी संन्यासी हो गए नरोत्तमदास, फिर तो पागल हो ही गए; सील-मोहर ही लग गई कि यह आदमी पागल है। फिर तुम हू-हू करो, हुंकार भरो, लोग कहेंगे--इससे तो यही आशा है। तुम न हू-हू करो तो लोग पूछेंगे कि भई, हू-हू क्यों नहीं करते? कैसे आधे-आधे पागल? अरे हू-हू करो!
अब यहां पास ही कहीं बैठे होंगे गौतम--इंदौर से आए हुए हैं--वे एक जगह ध्यान करते थे। मुसलमानों की बस्ती। मुसलमानों का कब्रिस्तान पास, जहां वे ध्यान करते और संन्यासियों को ध्यान करवाते। मुसलमानों में खबर पहुंच गई कि बड़ा खतरनाक ध्यान है, इसमें हू-हू करने से जो कब्रों में लोग सो रहे हैं वे जग जाएंगे। बड़ा धूम-धड़ाम मचाया उन्होंने कि यह आश्रम तो बंद ही होना चाहिए। यह तो हमारी मुर्दों को जगाने की कोशिश है। और मुर्दे जग जाएं तो कौन नहीं डरता! अरे तुम्हारा बाप ही जग जाए तो भी डर लगता है कि भैया, अब तुम सो गए तो सोए ही रहो! बामुश्किल तो सोए। अब रो-धो कर हम निपटे, अब और जग कर क्या हमारी जान लेनी है? किसी की पत्नी जग जाए, किसी का पति जग जाए; किसी का बेटा जग जाए। कौन झंझट ले। और पता नहीं कहां-कहां के लोग मरघट में सो रहे हैं, किस-किस जमाने से सो रहे हैं! और मुसलमानों में तो हिसाब यह है कि कयामत तक सोना है और कयामत आएगी, कब आएगी! आखिरी निर्णय का दिन। अनंतकाल

लगने वाला है। और यह हू-हू की जो आवाज है, इसमें एकदम से भूत-प्रेत जग जाते हैं।
यह बड़े मजे की बात है। मैं जिंदा आदमियों को जगाने की कोशिश कर रहा हूं और वे घबड़ाने लगे कि भूत-प्रेत जग जाते हैं। और गौतम की पत्नी ऐसी मस्त होने लगी हू-हू करके, उन्होंने कहा कि इसको भूत-प्रेत लग गए हैं। यानी इतनी मस्ती कहीं होती है? अरे हू-हू करने में क्या मस्ती होने वाली है! कोई भूत-प्रेत घुस गए हैं। यह ऐसी नाचती, डोलती, लेट जाती, घंटों सन्नाटे में शून्य हो जाती।
तो गौतम ने मुझे लिखा कि क्या करना अब? मुसलमान बड़े खिलाफ हो रहे हैं
कि और सब करो भैया, हू-हू नहीं करने देंगे, क्योंकि हू-हू तो खतरनाक चीज है। और यह तुमको किसने सिखाया? हिंदू तो ओंकार का जाप करते, राम-राम करते; यह हू-हू, यह तो भूत-प्रेतों को जगाने की विद्या है। यह तो अल्लाहू का हिस्सा है। यह तुम जोर-जोर से हू-हू करोगे, यह तो कयामत के दिन होने वाला है, जब अल्लाह सबको जगाएगा मुर्दों को, तो चिल्लाएगा हू-हू, तो वे सब जाग कर खड़े हो जाएंगे।
और तुम यह भी कयामत अभी लाए दे रहे हो।
एक बार पागल हो जाओ, फिर मजा ही मजा है। फिर तुम बीच बाजार में हू-हू खड़े होकर करो, तो लोग कहेंगेः अरे यह तो संन्यासी है! यह तो इससे अपेक्षा ही है, यह कुछ न कुछ उलटा-सीधा करेगा ही।
यह काम मुझसे तो न हो सकेगा।
गार्ड ने हरी झंडी दिखाई और गाड़ी चलने को थी। प्लेटफार्म पर खड़ी मां- बेटी का वार्तालाप खत्म ही न होता था, आखिर उसको खत्म होता न देख गाड़ी के गार्ड सरदार विचित्तरसिंह ने उन्हें कहाः माई, जल्दी करो। गाड़ी में सवार हो जाओ, गाड़ी छूटने को है।
युवती ने कहाः पहले मैं अपनी मां का चुंबन तो ले लूं, फिर सवार होती हूं।
गार्ड ने कहा कि आप गाड़ी में सवार हो जाएं, वह काम मैं कर दूंगा।
कुछ काम खुद ही करने होते हैं, दूसरा नहीं कर सकता। मगर सरदार विचित्तरसिंह, उन्होंने कहाः बाई तू तो चढ़, तेरी माता से मैं निपट लूंगा। तुम कहते होः "मैं अभागा, कब आपको समझ सकूंगा?"
अरे, यही क्या कम सौभाग्य है कि इतना समझ में आया कि मैं अभागा आपको कब समझ सकूंगा! यहां ऐसे-ऐसे अभागे हैं, जो समझते हैं कि समझ ही गए। समझे खाक नहीं, समझे राख नहीं, मगर समझते हैं कि समझ गए। लोग बड़े अजीब-अजीब हैं।

मुट्ठियों में खाक लेकर दोस्त आए बादे-दफ्न
जिंदगी भर की मोहब्बत का सिला देने लगे

जब कोई मर जाता है तो लोग मुट्ठियों में खाक लेकर उसकी कब्र पर डालने जाते हैं। उसको जब दफनाते हैं तो सब अपना-अपना भाग, हिस्सा अपना-अपना, थोड़ी-थोड़ी मिट्टी डाल देते हैं उसके ऊपर।

मुट्ठियों में खाक लेकर दोस्त आए बादे-दफ्न
जिंदगी भर की मोहब्बत का सिला देने लगे
यह भी क्या दुनिया है...
जिंदगी भर की मोहब्बत का सिला देने लगे!
वह जिंदगी भर जो प्रेम किया था उसका यह फल...
और किसी के मुंह से भी न निकला
कि इन पर राख न डालो, ये हैं आज नहाए हुए आज ही बदले हैं इन्होंने कपड़े
और ये हैं आज नहाए हुए
किसी के मुंह से भी यह न निकला बादे-दफ्न

लोग और लोगों के तर्क, लोगों के सोचने की प्रक्रियाएं बड़ी अजीब हैं। जिंदगी भर भी तुम पर राख डालते हैं--तुम्हें समझ में आए या न आए--मर जाते हो तब भी राख डालते हैं। उनके पास कुछ और है भी नहीं। जो है वही तो डालेंगे न! लोगों के पास अहंकार है। अहंकार एक भ्रांति देता है कि मुझे सब समझ में आता है। अभी कल तुमने सुना नहीं, एक मित्र रामदास गुलाटी कह रहे थे कि "आपके विचार मेरे विचारों से बिल्कुल मिलते हैं।" वे बीच में हैं, केंद्र पर वे हैं। उनके विचारों से मेरे विचार मिलते हैं! इसलिए वे मुझसे राजी हैं। उलटा नहीं कि मेरे विचारों से उनके विचार मिल रहे हैं।
तुम कम से कम इतना तो समझे कि "मैं अभागा हूं, कब आपको समझ सकूंगा।" यह अच्छी शुरुआत है। यह समझ की शुरुआत है।
एक डाक्टर ने एक महिला से कहाः श्रीमतीजी, आपके पति को पूर्णतया आराम
की जरूरत है।
महिला ने कहाः पर डाक्टर साहब, वह तो मेरी एक भी नहीं सुनते।
डाक्टर ने कहाः यह तो बहुत अच्छी शुरुआत है।
एक दूसरी महिला किसी डाक्टर से कह रही थी कि मेरे पति को रात नींद नहीं आती, क्या करूं? तो डाक्टर ने कहाः ये दो गोलियां लो और सब ठीक हो जाएगा।
चलते वक्त वह पूछने लगी कि ये गोलियां पति को कब देनी हैं? डाक्टर ने कहाः पति को नहीं देनी है, ये तुम्हें लेनी हैं। अगर तुम सो गईं तो वे तो सो ही जाएंगे। माई, कोई तरह तुम सो जाओ!
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी एक दिन उससे कहने लगी कि तुम रात भर यह क्या बक-झक करते हो, न खुद सोते न मुझे सोने देते। कल तुम्हें डाक्टर के पास ले चलूंगी। नसरुद्दीन ने कहाः कहीं ले जाने की जरूरत नहीं। बाई, मुझे दिन में थोड़ा बोलने का मौका दे तो रात में अपने आप बोलना बंद कर दूं। अब दिन भर मुझे मौका ही न मिले तो रात न बोलूं तो कब बोलूं? दिन और रात दो ही तो चीजें हैं।
तुम अभागे हो, यह बात ख्याल में आ गई, सौभाग्य की है। और बातें जो मैं
कह रहा हूं, यूं तो कठिन नहीं। यूं तो सरल हैं। मगर उनकी सरलता ही कठिनाई है। इतनी सरल हैं, इसलिए चूक-चूक जाती हैं। जिंदगी के बड़े राजों में एक राज यह है कि सरल बात बहुत मुश्किल से समझ में आती है। कठिन बात जल्दी समझ में आ जाती है, क्योंकि कठिन बात को समझने के लिए तर्क लगाना पड़ता है, बुद्धि लगानी पड़ती है, खून-पसीना बनाना पड़ता है। सरल बात को समझने में न तर्क की जरूरत, न बुद्धि की जरूरत, न खून को पसीना बनाना। सरल बात तो इतनी सरल है कि तुम्हें कुछ करना नहीं। सिर्फ सुन ली, मौन, शांत, शून्य--और आई समझ में। सत्य तो यूं समझ में आता है कि बस शून्य में सुनने की कला आ जानी चाहिए, और कुछ भी नहीं करना पड़ता।
मैं कुछ भाषा नहीं बोल रहा हूं। ऊपर से तो भाषा ही बोल रहा हूं। मैं कुछ शब्द नहीं उपयोग कर रहा हूं। यूं तो शब्द ही उपयोग कर रहा हूं। लेकिन पीछे निःशब्द है। जरा तलाशो, जरा टटोलो। और निःशब्द पर तुम्हारा हाथ पड़ जाए तो सब समझ में आ जाएगा। और शब्दों को ही पकड़ा तो मुश्किल खड़ी हो जाती है, बहुत मुश्किल खड़ी हो जाती है।
ट्रैफिक पुलिस के सिपाही ने एक महिला चालक को रोक कर चालान करते हुए कहाः आपने पीछे पढ़ा नहीं कि चालीस से ऊपर गाड़ी चलाना मना है?
महिला चालक ने कहाः लेकिन मैं तो अभी सिर्फ बाईस की ही हूं।
शब्दों को पकड़ने वाले लोग...
साहब ने चपरासी को बुला कर कहाः आज बड़ी मुश्किल से टाइपिस्ट ओवर टाइम
के लिए रुकी है। मगर यदि मैं मौजूद न रहा तो काम पूरे नहीं होने वाले। तुम बंगले पर जाकर मेरी श्रीमतीजी को बता देना कि मैं रात नहीं आ सकूंगा। चपरासी चला गया। अगले रोज वह सबेरे-सबेरे ही आफिस पहुंचा तो देखा-- साहब और टाइपिस्ट एक ही साथ टेबल पर सोए पड़े थे। उसने दस्तक देकर जगाया, क्योंकि अन्य कर्मचारी भी आने वाले थे। शाम को चपरासी को बुला कर साहब ने फिर कहा कि वह बंगले पर जाकर कह दे कि रात नहीं आ सकेंगे। चपरासी बोलाः

साहब, आप बेफिकर रहें। कल मेमसाहब ने मुझे बंगले पर ही रोक लिया था और ओवर टाइम भी दिया था।
अब यह "ओवर टाइम" शब्द को पकड़ो तो बात कुछ और। और शब्द के जरा पीछे चलो
तो बात कुछ और।
एक सांझ प्रेमी-प्रेमिका का एक जोड़ा एक बगीचे के कोने में प्रेम-क्रीड़ा में संलग्न था। एक पुलिसवाले ने उन्हें ऐसा करते पकड़ लिया और उन्हें पुलिसथाने ले गया। युवक से थोड़ी पूछताछ की और उसे मार-पीट करके अलग कर दिया गया। लेकिन युवती से स्टेटमेंट लेने के लिए पुलिस-चौकी पर बिठाए रखा गया। पहले थानेदार ने स्टेटमेंट ली, फिर हवालदार ने स्टेटमेंट ली, उसके बाद सुपरिनटेंडेंट ने स्टेटमेंट ली। रात भर स्टेटमेंट चलती रही और जब सुबह हो गई तो युवती को मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया। मजिस्ट्रेट ने भी युवती को देखते ही आदेश दियाः स्टेटमेंट दो! वह युवती अलसाए स्वरों में बोलीः माफ करो, अब मेरी स्टेटमेंट में बहुत दर्द हो रहा है।
रात भर स्टेटमेंट, तो स्टेटमेंट में दर्द होगा ही!
नरोत्तमदास, शब्द न सुनो भैया। थोड़ा निःशब्द गुनो। सब समझ में आ जाएगा। बात कुछ कठिन नहीं है। बात तो सीधी-सादी है। लेकिन अगर कहीं तुम्हारे कोई पूर्व-पक्षपात हों तो उनको जरा हटा दो। और सबके पूर्व-पक्षपात होते हैं इसलिए उसमें कुछ अपने को अभागा मानने की जरूरत नहीं। मजबूरी है। अनिवार्य बुराई है। क्योंकि हर बच्चे को मां-बाप से सीखना होगा, स्कूल में सीखना होगा, बाजार में, समाज में सीखना होगा। और दूसरे चारों तरफ से अपने-अपने पक्षपात उस पर थोपने को उत्सुक रहते हैं।
एक छोटे से बच्चे से किसी ने पूछा कि तेरा नाम क्या है? उसने कहा कि बताना बहुत मुश्किल है। उसने पूछाः हद हो गई, तुझे अपना नाम भी नहीं मालूम?
उसने कहाः नाम अब मैं क्या बताऊं! स्कूल में मास्टर मुझको नालायक कहते हैं। मेरे पिताजी मुझे हरामजादा कहते हैं। मेरी मां मुझे उल्लू का पट्ठा कहती है। मेरे चाचा मुझे बदतमीज कहते हैं। अब मैं क्या समझूं कि मेरा नाम क्या है? जो देखो उसी ने अलग-अलग नाम रख छोड़े हैं और मुझे पता ही नहीं कि मेरा नाम क्या है। सो जो जो कहता है, उसी में मैं बोलता हूं कि जी हां।
तुम्हें चारों तरफ से लोग पक्षपात डाल रहे हैं। सबके पक्षपात तुम्हारे भीतर इकट्ठे हो जाते हैं। फिर तुम उन्हीं की आड़ से मुझे सुनोगे तो मुश्किल होगी।
बच्चे ने पूछाः मां, नरक में स्कूल होता है क्या?
मां ने कहाः नहीं, नरक में स्कूल नहीं होता। लेकिन बेटा, यह तू क्यों पूछ रहा है?
बच्चे ने कहाः फिर मां, लोग नरक जाने से डरते क्यों हैं?
बच्चे की अपनी समझ, कि दुनिया में स्कूल से ज्यादा डरने वाली और चीज क्या है! अब मुझे तो स्कूल को छोड़े बरसों हो गए। प्राइमरी स्कूल में जब पढ़ता था, उसको तो चालीस साल से ऊपर हो गए। मगर अब भी जब कभी सुबह घंटा बजता है तो मुझे स्कूल की याद आ जाती है। मैं भी हैरान होता हूं कि हद हो गई। वह स्कूल भूलता ही नहीं! खास कर बरसात के दिनों में स्कूल जाना इतना कष्टपूर्ण कार्य था कि स्कूल के वक्त या तो मैं पाखाने में घुस जाऊं... । अब लोग ठोक रहे हैं दरवाजा कि निकलो, स्कूल का वक्त हो गया। मैं निकलूं कैसे, पहले सब साफ-सफाई तो हो जाए! निकलूं तो स्कूल की तरफ, पहुंच जाऊं कहीं- कहीं।
सो एक चपरासी, मुन्नालाल उसका नाम था, वह मुझे नहीं भूलता। अगर कहीं
भी कोई नरक है तो मुन्नालाल जरूर वहां होगा। बड़ा पहुंचा हुआ चपरासी था। वह रोज सुबह घर के सामने आकर खड़ा हो जाता था--कि चलो निकलो! आगे मुझे कर लेता, पीछे चलता खुद। उसको धोखा देना बड़ा मुश्किल था। उससे कहो कि लघुशंका करनी है। वह कहेः अच्छा करो, हम पीछे खड़े हैं। वह पीछे ही खड़ा रहे डंडा लिए। और अगर बहुत देर हो जाए तो वह कहे कि यह कैसी लघुशंका है--लघुशंका का मतलब, जल्दी खत्म करना चाहिए। लघुशंका को इतना लंबाए जा रहे हो?

जब मुन्नालाल मरा तो मुझे जो आनंद हुआ था, फिर वैसा आनंद कभी नहीं हुआ। असल में मृत्यु उत्सव है, यह मुन्नालाल की मृत्यु से ही समझा। मैं नाचता-गाता ही गया उसकी मृत्यु में, हालांकि मोहल्ले के लोगों ने कहा कि यह बात ठीक नहीं। मैंने कहाः ठीक हो कि गलत, अरे, अब मर ही गया है, अब क्या है? अब क्या कर लेगा?
मगर वह बड़ा दुष्ट था। वह पुराने जमाने का, ब्रिटिश जमाने का चपरासी था। पैरों पर बिल्कुल सिपाहियों जैसी पट्टी बांधे और खाकी ड्रेस पहने और साफा बांधे और डंडा रखे बड़ा! जैसे ही पता चल जाए मुन्नालाल आ रहा है, मोहल्ले भर के बच्चे एकदम निकल कर बस्ते लेकर स्कूल की तरफ चले! सबको खदेड़ कर स्कूल में कर दे वह। और स्कूल के बाहर बैठा रहे। एक ही दरवाजा, निकलना मतलब मुन्नालाल का सामना करना। बहुत कठिन काम था मुन्नालाल के सामने से निकलना।
मगर तरकीबें तो हम निकाल लेते थे उससे निकलने की भी। किसी को कह जाते
कि तुम जरा चले आना और मुन्नालाल से कहना कि तेरी पत्नी बहुत बीमार है। ठीक दो बजे कहना।
पहले तो मुन्नालाल कहेः रहने दो बीमार! फिर सोच-विचार में पड़े कि कहीं
सच में ही बीमार न हो! तो जाए पत्नी को देखने, तब तक नदारद! लौट कर आकर कहे कि यह किसकी शरारत है, किसने हरकत की? मेरी पत्नी तो भली-चंगी है। कुछ छोकरे भाग गए मालूम होता है।
वह गिनती करे स्कूल में जाकर।
तो बच्चों की अपनी दुनिया होती है। चपरासी वहां एकदम नारकीय मालूम होता है। और मास्टर भी क्या-क्या सजाएं बच्चों को देते हैं! तो यह बच्चा बेचारा ठीक ही कह रहा था। इससे मैं बिल्कुल राजी हूं कि फिर मां, लोग नरक जाने से क्यों डरते हैं? अगर नरक में स्कूल नहीं होता तो मैं भी जाने से डरता नहीं फिर। जाने को तैयार हूं। मगर अगर स्कूल हो और मुन्नालाल उसका चपरासी हो, तो मुझे नहीं जाना। फिर स्वर्ग ही चले जाएंगे। फिर कोई बात नहीं। जो होगा भोग लेंगे स्वर्ग में ही।
नरोत्तमदास, अगर तुम्हारी कोई धारणाएं हैं, सुनिश्चित, तो तुम मुझे समझने में असमर्थता पाओगे। मेरे पास आओ तो धारणाओं को अलग रख कर सुनने की कला सीखनी ही होगी। नहीं तो मैं कुछ कहूंगा, तुम कुछ समझोगे।
और यह भूल-चूक महंगी पड़ सकती है, क्योंकि यह अवसर कहीं ऐसा न हो कि हाथ
से चूक जाए। क्योंकि ऐसा अवसर मुश्किल से, बहुत मुश्किल से हाथ में आता है। नहीं तो इस जगत में है ही क्या समझने योग्य? यहां समझने योग्य घटना कभी-कभी घटती है--कभी किसी बुद्ध की मौजूदगी में कुछ समझने योग्य होता है। नहीं तो सब तो नासमझी से ही चल जाता है, समझने की जरूरत क्या है? समझने से अड़चन ही आती है। नासमझी ही ठीक। सिर्फ बुद्धों के पास समझ चाहिए। वहां नासमझी काम नहीं करती।
अपने ज्ञान को हटाओ। अपने मन को हटाओ। थोड़ा ध्यान में उतरो। ध्यान के अतिरिक्त मुझे समझने का कोई उपाय नहीं।

तीसरा प्रश्नः ओशो,
अब्र का एहसास उठा है, घटा छाई है
फिर तेरी याद दबे पांव चली आई है
आज एहसास ने फिर घूंघट उलटा
आज फिर ओंठों ने रंगीन गजल गाई है
अब भला हालते दिल कैसे छिपाऊं?
दासतां चेहरे पे मोहब्बत की उभर आई है।

आनंद मोहम्मद! इसको ही मैं समझ कहता हूं--"अब्र का एहसास उठा है।" बादल
छा गया है--अमृत का!
अब्र का एहसास उठा है, घटा छाई है
फिर तेरी याद दबे पांव चली आई है

और जब आकाश बादलों से घिरता है और घटाएं घुमड़ने लगती हैं तो कितने तौबे नहीं टूट जाते! लोग कसमें खाते हैं--अब नहीं पीएंगे। लेकिन फिर घटा यूं छा जाती है, ऐसी घुमड़ कर, कि नहीं रहा जाता बिना पीए। कुछ तो घटा का घुमड़ कर छाना और फिर कुछ कमबख्त जी का भी ललचा जाना--बहुत मुश्किल हो जाता है। फिर आदमी सोचता है, एक दफा तौबा तोड़ ही दी तो क्या है! फिर तौबा कर लेंगे। फिर कसम खा लेंगे। अरे, यूं तो कई दफा तोड़ चुके, कई दफा बना चुके। तौबा तो अपने हाथ की बात है। फिर कल घटा छाई न छाई! और कल यह कमबख्त जी ललचाया न ललचाया!
और जैसी शराबी को घटा छाई देख कर, मोर को नाचते देख कर पीने का एहसास
उठ आता है--वैसे ही संन्यासी को भी उठता है। हालांकि उसकी शराब और। हालांकि उसका मयखाना और। हालांकि उसका साकी और।
कहते हो तुमः
"अब्र का एहसास उठा है, घटा छाई है
फिर तेरी याद दबे पांव चली आई है
आज एहसास ने फिर घूंघट उलटा
आज फिर ओंठों ने रंगीन गजल गाई है
अब भला हालते दिल कैसे छिपाऊं?
दासतां चेहरे पे मोहब्बत की उभर आई है।"
नहीं, ये बातें छिपाए नहीं छिपतीं। लाख छिपाओ, प्रकट हो जाती हैं। ये राज राज नहीं रहते। मस्ती यूं घनी होती है! आंखें ऐसी लबालब हो जाती हैं! गागर के ऊपर से बहने लगता है सागर। कैसे छिपाओगे? ये अजस्र झरने जब फूटते हैं तो नहीं रुकते।
आनंद मोहम्मद, शुभ हो रहा है। इसको ही मैं समझ कहता हूं, समाधि कहता हूं। गजलें उठेंगी, बहुत गजलें उठेंगी! गीत झरेंगे, बहुत गीत झरेंगे।
दिल में तेरा ख्याल अभी ला रहा हूं मैं।
तू यह न समझ कोई गजल गा रहा हूं मैं।
खुद के खिलाफ खुद से गुजरता हूं रात-दिन
तन्हा की तरह खुद में उतरता हूं रात-दिन
छोड़ा था कहां खुद को, कहां पा रहा हूं मैं!!

राहें किसी की, शहर किसी का, किसी का घर
बन कर सवाल मुझसे लिपटती है हर नजर
किस-किस से कहूं क्या कहूं कहां जा रहा हूं मैं!!

ख्वाबों का एक जहान था, उम्मीद का महल
इतने हसीन गीत का पहलू गया बदल
आईना अपने आपको दिखा रहा हूं मैं!!

नजरों से अमां होते हुए राज की तरह
धड़कन में कहीं सोते हुए साज की तरह
किस-किस तरह करीब तेरे आ रहा हूं मैं!!
आनंद मोहम्मद, आ रहे हो करीब। रोज-रोज आ रहे हो। प्रतिपल आ रहे हो। गजलें उठेंगी, नई-नई गजलें उठेंगी। और डरो मत, गाओ! और छिपाओ मत, यह मोहब्बत प्रकट होने दो! इसे ओंठों पर गजल बनने दो। इसे ओंठों पर मुस्कुराहट बनने दो! इसे आंखों में मदहोशी बनने दो। इसे पैरों में नृत्य बनने दो। इसे प्रकट होने दो हजार-हजार रूपों में।
कानों में कुछ ऐसा
बोल गया कोई
नैनों के आंगन में
नये-नये
सपनों के फूल
धूपिया बदन खनका
महक गए

यादों के बबूल
सहमे मन पंखों को
खोल गया कोई
बार-बार छलके हैं
बिना बात
ओंठ से हंसी,
आंचल आकाश हुआ
धड़कन में बांसुरी बजी
सांसों में कस्तूरी
घोल गया कोई।
आ गई घड़ी करीब, जिसकी प्रतीक्षा करते हैं। सबकी आनी है। और अगर देर है
तो तुम्हारे कारण।
मगर लोग बड़े अजीब हैं! लोग कहते हैंः परमात्मा के जगत में देर है, अंधेर नहीं। मैं तुमसे कहता हूंः न वहां देर है, न अंधेर है। देर है तुम्हारे कारण, अंधेर है तुम्हारे कारण। जिम्मेवार तुम हो। जिस दिन अपनी जिम्मेवारी समझोगे--न अंधेर है, न देर है।
सांसों में कस्तूरी
घोल गया कोई
कानों में कुछ ऐसा
बोल गया कोई
नैनों के आंगन में
नये-नये
सपनों के फूल
धूपिया बदन खनका
महक गए
याद के बबूल
सहमे मन पंखों को
खोल गया कोई
सांसों में कस्तूरी
घोल गया कोई।
बार-बार छलके हैं
बिना बात
ओंठ से हंसी,
आंचल आकाश हुआ
धड़कन में बांसुरी बजी,
सांसों में कस्तूरी
घोल गया कोई।
कानों में कुछ ऐसा
बोल गया कोई।
तैयार है परमात्मा तुम्हारे कानों में बोलने को। मगर तुम्हारे कानों में इतना कचरा भरा है, इस कारण अड़चन है। इतना ज्ञान ठोस-ठोस कर तुमने भर लिया है, इसलिए अज्ञानी हो। पंडित हो, इसलिए पापी हो। पांडित्य से छुटकारा, ज्ञान से छुटकारा, उधार कचरे से छुटकारा--और श्वास-श्वास गजल हो जाएगी। और ओंठों पर बांसुरी आएगी ही आएगी। गीत गूंजेंगे। नृत्य जगेगा। और जब जीवन में गीत उठता है, तभी तो परमात्मा का प्रमाण मिलता है। और ऐसा गीत-- जिसका कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता, अकारण! और ऐसा आनंद--जिसकी कोई वजह नहीं है, बेवजह है! बस भीतर ही भीतर। स्वस्फूर्त।

दिन ब दिन बढ़ती गई उस हुस्न की रानाइयां
पहले गुल, फिर गुलबदन, फिर गुलबदामां हो गए
रफ्ता-रफ्ता वो मेरी हस्ती का सामां हो गए
आप तो नजदीक से नजदीकतर आते गए
पहले दिल, फिर दिलरुबा फिर दिल के मेहमां हो गए

रफ्ता-रफ्ता वो मेरी हस्ती के सामां हो गए
पहले जां, फिर जाने-जां, फिर जाने-जाना हो गए।
दिन ब दिन बढ़ती गई उस हुस्न की रानाइयां
पहले गुल, फिर गुलबदन, फिर गुलबदामां हो गए।

रोज बढ़ता जाता है यह रस, यह प्रेम, यह प्रीति। चल पड़े आनंद मोहम्मद। और महावीर का एक बहुत प्रसिद्ध सूत्र हैः कि जो चल पड़ा वह आधा पहुंच गया।

चौथा प्रश्नः ओशो, ये श्री अहमक अहमदाबादी कौन हैं?

स्वामी सरदार गुरुदयाल सिंह! तुम न भी पूछो गुरुदयाल, तो भी उन्हें पहचान लोगे। आधे सरदार हैं वे भी। फिफ्टी-फिफ्टी! और आधा सरदार पूरे सरदार से भी खतरनाक होता है। अलग ही दिखाई पड़ता है। पूरा सरदार तो छिप भी जाए, आधा सरदार छिपना ही मुश्किल है।
सरदार होने के लिए पांच ककार चाहिए--केश, कंघा, कच्छा, कड़ा, कृपाण। अहमक अहमदाबादी आधे सरदार हैं। केश तो नहीं है, कंघा है। कंघा है, यह कहना भी ठीक नहीं--था। एक दिन सुबह-सुबह बड़े उदास बैठे थे, तो मैंने पूछाः क्या हुआ?
कहने लगेः कंघे का एक दांता टूट गया।
अरे, मैंने कहाः एक दांता टूट गया तो टूट जाने दो। एक दांते टूटने से क्या बिगड़ता है? कंघा अभी भी काम देगा।
बोलेः आप समझे नहीं। यह आखिरी दांता था।
ऐसे सिद्ध पुरुष हैं। नमो सिद्धाणम्! आखिरी दांते से क्या कर रहे थे
इस कंघे से? मगर बाल हैं भी नहीं। इसलिए मैं समझा कि चलो कंघा होना चाहिए, इसलिए था।
कच्छा है, मगर उसमें इतने छेद हैं कि न होता तो अच्छा था। न होता तो अहमक अहमदाबादी कम नंगे होते। उसमें इतने छेद हैं, मतलब उनको कई तरह से नंगा देख सकते हो, जगह-जगह से नंगा देख सकते हो। इधर से देखो, उधर से देखो। पहलू पर पहलू हैं।
कृपाण तो है, मगर उसमें धार नहीं। सब्जी भी नहीं कटती। मगर नाम तो कृपाण ही है। असली चीज तो नाम है। संत पुरुष कह ही गए हैं कि नाम से ही भवसागर पार हो जाता है। सो नाम में भरोसा करते हैं वे, अभी भी उसको कृपाण कहते हैं। जंग खा गई है, न सब्जी कटती है, न किसी काम की है--मगर लटकाए फिरते हैं। तुम्हें मिल जाएंगे। गुरुदयाल, चिंता न करो।
कड़ा भी है, लेकिन कड़ा कहना ठीक नहीं--कड़ी कहना चाहिए। जब पत्नी मर गई
तो उसकी चूड़ी उन्होंने पहन ली। कहने लगे कि स्त्रियां, जब पति मर जाता है, तो चूड़ियां फोड़ देती हैं। मैं कोई स्त्री थोड़े ही हूं, मैं पुरुष हूं, जवां मर्द हूं। स्त्री तो मर गई, मैं अब चूड़ी पहनूंगा। अरे, जो स्त्रियां करती हैं, उससे उलटा करूंगा, तभी तो जवां मर्द!
अहमक इसीलिए उनको मैं कहता हूं--पहुंचे हुए हैं। और अहमदाबादी हैं। पहुंचे हुए--और अहमदाबादी! अब तुम सोच लो--सरदार और गुजराती! गजब हो गया! कबीरदास जी देख लेते तो कहते--एक अचंभा मैंने देखा, नदिया लग गई आग! ढब्बूजी एक दिन पूछ रहे थे अहमक अहमदाबादी से कि भाई कल रात तुमने भाषण में ऐसी कौन सी बात कह दी थी कि करीबन आधा घंटे तक तालियां बजती रहीं! अहमक अहमदाबादी बोलेः अरे, कुछ नहीं यार, मैंने तो बस इतना ही कहा था
कि अगर आप लोग तालियां बजाना बंद नहीं करेंगे तो मैं अपना भाषण यहीं समाप्त कर दूंगा।
अहमक अहमदाबादी एक गीत अक्सर गाते हैं। एक रात गा रहे थेः दुखी मन मेरा, सुनो मेरा कहना; जहां नहीं चैना, वहां नहीं रहना।
उनकी पत्नी बोलीः बंद करो यह बकवास, तुम्हारा यह गाना सुन-सुन कर मेरे तीन नौकर भाग चुके हैं--दुखी मन मेरा, सुनो मेरा कहना; जहां नहीं चैना, वहां नहीं रहना। खुद तो नहीं भागे, मगर तीन नौकर भाग चुके हैं!

अहमक अहमदाबादी अपनी पत्नी के साथ शापिंग के लिए निकले। पत्नी बोलीः कितनी अजीब बात है कि मेरे पास बार्डर है पर साड़ी नहीं। इत्र की शीशी है, पर इत्र नहीं। सेट की अंगूठी है पर बुंदे और हार नहीं।
अहमक अहमदाबादी बोलेः मेरा भी यही हाल है प्यारी, जेब है परंतु पैसे नहीं!
अहमक अहमदाबादी पुलिस दफ्तर गए। पुलिस आफिसर ने पूछाः तुम्हारे पास क्या सबूत है कि तुम्हारी बीबी पागल हो गई है? कोई डाक्टर की रिपोर्ट या... ।
अहमक अहमदाबादी ने बीच में ही बात काटते हुए कहाः यह सब मैं कुछ नहीं जानता साहब, किंतु जो मैं कह रहा हूं वह सच है। आज शाम जब मैं घर आफिस से वापस लौटा तो उसने मुस्कुरा कर मेरा स्वागत किया, आलिंगन किया, बड़े प्यार से चाय की प्याली पेश की--हालांकि आज पहली तारीख नहीं है।
अहमक अहमदाबादी अपनी पत्नी से बोलेः प्यारी, अपने पड़ोसी बड़े कंजूस हैं। ऐसे कंजूस मैंने जीवन में नहीं देखे।
पत्नी चौंकी। अहमक अहमदाबादी और ऐसी बात कहें! बोलीः क्यों?
अहमक अहमदाबादी बोलेः उनके बेटे टीकू ने कल चवन्नी निगल ली थी तो उसको निकलवाने के लिए हरामजादों ने दो-दो डाक्टरों को बुलवाया! अरे कंजूसी की भी हद होती है! अब अपने ही सुपुत्र छुन्नु ने चवन्नी निगल ली थी, आज तीन साल हो गए, मैंने तो तुम्हें बताया भी नहीं कि नाहक डाक्टर को बुलाना पड़े। और फिर वैसे भी चवन्नी की अभी अपने को जरूरत नहीं, जब जरूरत होगी निकलवा लेंगे। कोई डाक्टर मरे थोड़े ही जा रहे हैं!
पहुंचे हुए पुरुष हैं। गुरुदयाल, थोड़ी खोज-बीन करोगे तो मिल जाएंगे। यही हैं। और मुझसे मत पूछो कि मैं सीधा-सीधा बताऊं कि कौन हैं, क्योंकि नाहक मेरे वैसे ही बहुत दुश्मन हैं, अब और अहमक अहमदाबादी को क्यों दुश्मन बनाना? और अच्छे आदमी हैं, इधर रहते हैं तो थोड़ा रस रहता है।
खाना खाने के बाद अहमक अहमदाबादी मैनेजर से बोलेः माफ करिए, मेरे पास
इस समय तो पैसे नहीं हैं कि मैं आपका बिल चुका सकूं, फिर कभी आकर आपके पैसे दे जाऊंगा।
मैनेजर भी था अहमदाबादी--सेर का सवा सेर। बोलाः कोई बात नहीं भाई साहब, हम आपका नाम दीवाल पर लिख देंगे। जब आप अगली बार आएं तो दे दीजिएगा। मुझे यह बात पसंद नहीं आई--अहमक अहमदाबादी बोले--सभी लोग मेरा नाम पढ़ेंगे, यह तो बड़ी बेइज्जती की बात है।
नहीं-नहीं--मैनेजर ने कहा--ऐसा नहीं होगा श्रीमान। नाम के ऊपर आपका कोट टंगा रहेगा। कोट के होते नाम के दिखने का सवाल ही नहीं उठता। अहमदाबादी तो होते ही विशिष्ट तरह के प्राणी हैं। इस जगत में तरह-तरह
के जीव-जंतु हैं। अहमदाबाद में भी अपने ढंग के जीव-जंतु पैदा होते हैं। और इसलिए तो जगत में इतना वैविध्य है, नहीं तो भगवान क्यों अहमदाबाद बनाए? आखिर अहमदाबाद बनाया तो कोई प्रयोजन रहा होगा। सृष्टि रची तो कोई अर्थ रहा होगा। और कुछ बना सकता था, अहमदाबाद ही बनाया! उसके पीछे राज है। वहां अहमक ज्यादा पैदा होते हैं।
मेरे नाम से मेरे चाचा ने वसीयत में इतनी लंबी रकम छोड़ी थी। इसी कारण लगता है कि तूने मुझसे विवाह किया है। यह बात सच है न? अहमक अहमदाबादी की पत्नी एकदम भन्ना कर बोली।
अहमक अहमदाबादी बोलेः गलत, बिल्कुल गलत, जी बिल्कुल गलत! सौ प्रतिशत गलत। अन्य कोई भी तुम्हारे नाम से ऐसी वसीयत करता तो भी मैं तुमसे ही विवाह करता। इससे क्या फर्क पड़ता है कि तुम्हारे चाचा ने वसीयत की कि पिता ने वसीयत की--वसीयत होनी चाहिए। मेरा प्रेम अखंड है!

आखिरी सवालः ओशो, "चलो भागो यहां से; यह स्वर्ग है, कोई पेशाबघर नहीं"-- ऐसा कह कर सेंट पीटर ने उस जैन साध्वी को हिंदुस्तान क्यों भेज दिया? क्या हिंदुस्तान को वे लोग मूत्रालय समझते हैं?

संत महाराज! इसमें समझने का सवाल ही कहां उठता है? हिंदुस्तान मूत्रालय है। यह तो जग-जाहिर बात है। सनातन तथ्य है। इसमें समझने-वमझने की बात ही नहीं उठती। सेंट पीटर जब ऊपर से दृष्टिपात करते होंगे तो उन्हें हिंदुस्तान में क्या दिखता होगा? लोग खड़े हैं जगह-जगह--सड़कों के किनारे, मकानों की दीवालों पर--जीवन-जल की वर्षा कर रहे हैं। कोई पेड़ों के तनो को सींच रहा है, कोई नदी-नालों के तट पर बैठा कान में जनेऊ लपेट रहा है। सच तो यह है कि स्वर्ग के रहने वाले भारत को पहचानते ही इस विधि से हैं, क्योंकि जमीन पर कोई रेखाएं तो खिंची नहीं हैं, नक्शों के रंगों के समान रंग तो भरे नहीं हैं कि यह भारत रहा, यह अमरीका रहा, यह रहा जापान। जहां हर जगह लोग पेशाब करते दिखते हैं, समझ लेते हैं कि यही है पुण्यभूमि भारत, जहां देवता पैदा होने को तरसते हैं! ऋषि-मुनियों का देश है, अहा, धन्य है! कैसा जीवन-जल छिड़कते फिरते हैं!
मगर अभी कुछ वर्षों से, जब से भारतीयों ने बाहर जाना शुरू कर दिया है, समुद्र को लांघ कर, तब से जरूर भारत को पहचानने में थोड़ी अड़चन सेंट पीटर को होने लगी है; क्योंकि भारतीय जहां भी जाएं, अपने पूर्वजों की परंपरा कभी नहीं छोड़ते।
मैंने सुना है कि रूस के प्रधानमंत्री ख्रुश्चेव जब भारत आए और शाम
के समय पंडित जवाहरलाल नेहरू के साथ बगीचे में टहल रहे थे तो यह देख कर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ कि एक भला मानुष फव्वारे के बगल में बैठा लघुशंका कर रहा है। उनसे रहा न गया। बोलेः हद हो गई! आप तो कहते हैं मिस्टर नेहरू कि आपके राष्ट्र के लोग बड़े सभ्य, धार्मिक और सुसंस्कृत हैं। यह मैं क्या देख रहा हूं? क्या आपकी सरकार इसके लिए सार्वजनिक पेशाबघर नहीं बनवा सकती? बेचारे पंडितजी क्या जवाब देते, सिर झुका कर रह गए। कुछ वर्षों बाद नेहरूजी जब रूस गए और सांझ के समय प्रधानमंत्री भवन के पार्क में ख्रुश्चेव के साथ घूम रहे थे, तो संयोगवशात अचानक उन्हें एक आदमी दिखा जो शाम के अंधेरे में एक वृक्ष की ओट में बैठा मूत्र-त्याग कर रहा था। जो बात चल रही थी, उसे बीच में ही तोड़ कर पंडितजी बोलेः देखिए-देखिए, आप हमारे देश की बदनामी करते थे। यह आदमी यहां बैठा-बैठा क्या कर रहा है?
आव देखा न ताव, ख्रुश्चेव ने जोर से सीटी बजाई। चार सिपाही दौड़े आए। उन्होंने उस आदमी को पकड़ लिया और फौरन हवालात ले गए। ख्रुश्चेव को बहुत आश्चर्य हुआ कि यह कौन आदमी है जो प्रधानमंत्री के बंगले में घुस कर ऐसी हरकत कर रहा था! क्योंकि इस भवन के अंदर तो केवल बड़े-बड़े नेताओं, अफसरों और गणमान्य व्यक्तियों को ही प्रवेश मिलता है! ख्रुश्चेव का आश्चर्य तो दूसरे दिन मिटा, जब पुलिस के दफ्तर से फोन आया कि जिस आदमी को हमने रात हवालात में बंद कर रखा है, उसे छोड़ दें या सजा दें? आप बताइए, क्योंकि वह और कोई नहीं भारतीय राजदूत है।

आज इतना ही।